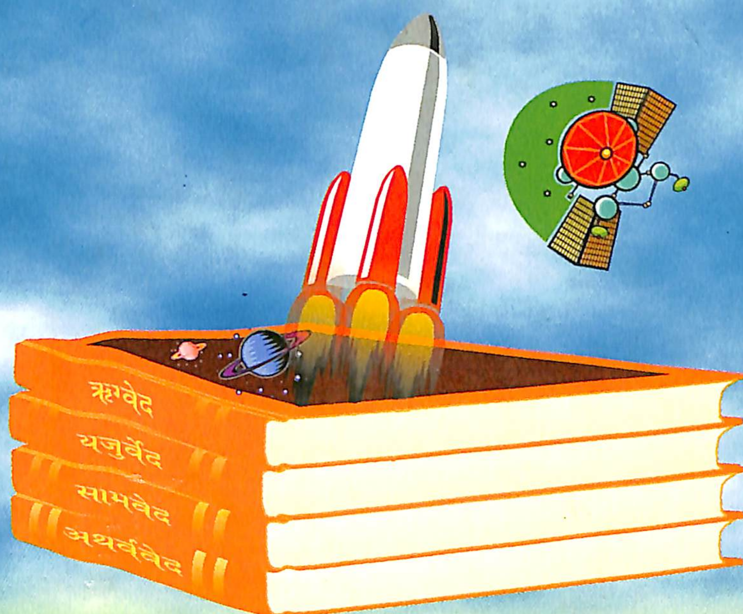
वेदों में विज्ञान

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी



विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

ज्ञानपुर (भदोही)

वेदों में विज्ञान

लेखक

पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

ज्ञानपुर (भदोही)



वेदों में विज्ञान

(POSITIVE SCIENCES IN THE VEDAS)

(वेदामृतम् , भाग २१ से २५)

लेखक

पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

निदेशक

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

ज्ञानपुर (भदोही)

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

ज्ञानपुर (भदोही)

VEDOṄ MEṄ VIJÑĀNA

(POSITIVE SCIENCES IN THE VEDAS)

(Vedāmṛtam : Vol. XXI - XXV)

By

Dr. K. D. DVIVEDI

द्वितीय संस्करण : २००४ ई०

मूल्य : पेपरबैक रुपये २५०-००

सजिल्द रुपये ३००-००

ISBN : 81-85246-41-6

प्रकाशक

विश्वभारती अनुसंधान परिषद्

ज्ञानपुर (भदोही) उ०प्र०

पिन कोड - 221304

प्राक्कथन

वेद आर्यजाति के प्राण हैं । ये मानवमात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ और शक्ति के स्रोत हैं । विश्व को संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है । वेद ही विश्वबन्धुत्व, विश्व-कल्याण और विश्वशान्ति के प्रथम उद्घोषक हैं । वेद ही मानवमात्र के लिए विकास का मार्ग प्रशस्त करते हुए सुख और शान्ति की स्थापना कर सकते हैं ।

वेदों के विषय में मनु का यह कथन सारगर्भित है कि-**'सर्वज्ञानमयो हि सः'** (मनु० २.७) अर्थात् वेदों में सभी विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं । वेदों में जहाँ धर्म, आचारशिक्षा, नीतिशिक्षा, सामाजिक जीवन, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद आदि से संबद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, वहीं विज्ञान के विविध अंगों से संबद्ध सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । वेदों में भौतिकी, रसायन-विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, जन्तुविज्ञान, प्रौद्योगिकी, कृषि, गणितशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, वृष्टिविज्ञान, पर्यावरण एवं भूगर्भविज्ञान से संबद्ध सामग्री बहुलता से प्राप्य है । प्रस्तुत ग्रन्थ में इन विषयों से संबद्ध सामग्री का ही आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

वेदों में विज्ञान-संबन्धी सामग्री कुछ विशेष सूक्तों में ही प्राप्य नहीं है, अपितु बहुत अधिक बिखरी हुई है । उनका विषयानुसार संकलन अतिक्लिष्ट कार्य है । मैंने प्रयत्न किया है कि उसको विषयानुसार संगृहीत किया जाय । सन्दर्भों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण उनमें से विशेष महत्त्वपूर्ण सन्दर्भों को ही ग्रन्थ में लिया गया है । प्रयत्न किया गया है कि कोई विशेष महत्त्वपूर्ण तथ्य छूटने न पावे ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मैंने आयुर्वेद-विषयक सामग्री का संकलन नहीं किया है, क्योंकि इस विषय पर मेरा एक स्वतंत्र ग्रन्थ 'वेदों में आयुर्वेद' (१९९३) (वेदामृतम्, भाग १३ से १६) तीन सौ पृष्ठों का प्रकाशित हो चुका है । उसमें आयुर्वेद विषय का सर्वांगीण विवेचन प्रस्तुत किया गया है । साथ ही वेदों में वर्णित २८६ ओषधियों का विस्तृत विवरण भी दिया गया है ।

मैंने मन्त्रार्थ के विषय में महर्षि पतंजलि के वैज्ञानिक मन्तव्य को अपनाया है कि **'यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्'** (महाभाष्य, आह्निक १) अर्थात् जो शब्द कहता है, वह हमारे लिए प्रमाण है । मन्त्र के पाठ से जो अर्थ स्वयं प्रस्फुटित होता है, उस अर्थ को अपनाया गया है । पूर्वाग्रह के आधार पर अर्थ नहीं किया गया है । कुछ स्थानों पर पारिभाषिक शब्दों को स्पष्ट करने के लिए इंग्लिश् के वैज्ञानिक शब्दों को अपनाया गया है ।

पाश्चात्त्य विद्वानों ने अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, मरुत् , अश्विनी आदि शब्दों का केवल देवता-विशेष अर्थ माना है । ये पारिभाषिक शब्द हैं और विभिन्न अर्थों के द्योतक हैं । इनका विभिन्न शास्त्रों के अनुसार विभिन्न अर्थ होते हैं । यहाँ पर इनका विज्ञान-संमत अर्थ लिया गया है और विज्ञान की दृष्टि से इनकी व्याख्या की गयी है ।

आचार्य यास्क का यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि **'न ह्येषु प्रत्यक्षमस्ति अनृषेरतपसो वा'** (निरुक्त १३.१२) अर्थात् जो ऋषि या तपस्वी नहीं है, उसको मंत्रों के अर्थ का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है । इसका अभिप्राय यह है कि मंत्रों में कुछ गूढ और रहस्यात्मक बातें रखी गयी हैं । जो कठोर परिश्रम करेगा, वही उस रहस्य को समझ सकता है । मैंने कुछ मंत्रों के वैज्ञानिक अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । अग्नि, मित्र, वरुण, मरुत् , सोम आदि कुछ ऐसे शब्द हैं, जिन पर जितना चिन्तन किया जाता है, उतना ही रहस्यात्मक अर्थ स्पष्ट होता जाता है । इस दृष्टि से मेरा यह प्रयत्न केवल दिशानिर्देश ही समझना चाहिए ।

वेदों के बहुत से पारिभाषिक शब्द दुर्बोध हैं । कुछ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । वर्तमान प्रचलित वैज्ञानिक शब्दावली से उनका संबन्ध बैठाना अति कठिन कार्य है । यह कार्य किसी एक व्यक्ति के द्वारा किया जाना संभव नहीं है । इसके लिए सामूहिक प्रयत्न अपेक्षित है ।

ग्रन्थ की सामग्री के संकलन एवं प्रूफ-रीडिंग आदि कार्यों में मेरे सुपुत्रों डा० भारतेन्दु, धर्मेन्दु, ज्ञानेन्दु, डा० विश्वेन्दु एवं डा० आर्येन्दु तथा पुत्रवधुओं डा० सविता, जयश्री, सुनीता, अपर्णा एवं रीना ने जो सहयोग दिया है, तदर्थ वे आशीर्वाद के पात्र हैं ।

मैंने प्रयत्न किया है कि विषय को सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाय । आशा है वेदप्रेमी पाठकों को यह ग्रन्थ रुचिकर होगा । ग्रन्थ के विषय में आवश्यक संशोधन आदि के परामर्श सधन्यवाद स्वीकार किए जाएँगे ।

ज्ञानपुर (भदोही) **— डॉ० कपिलदेव द्विवेदी**

१४.१.२०००ई०

(मकर संक्रान्ति, २०५६ वि०)

विषय-सूची

(सूचना - अंक पृष्ठबोधक हैं ।)

अध्याय - १

भौतिकी (Physics) १-३६

अध्याय - ५

अध्याय - ८

ज्योतिष (Astronomy) २०६-२२६



संकेत-सूची

अ०	-	अध्याय
अग्नि०	-	अग्निपुराण
अ०, अथर्व०	-	अथर्ववेद संहिता
अष्टा०	-	अष्टाध्यायी, पाणिनि
आर्च०	-	आर्च ज्योतिष
उत्तर०	-	उत्तरभाग
उप०	-	उपनिषद्
ऋग्०	-	ऋग्वेद संहिता
ऐत०ब्रा०	-	ऐतरेय ब्राह्मण
कठ०	-	कठ संहिता
काठक०	-	काठक संहिता
कौ०अर्थ०	-	कौटिलीय अर्थशास्त्र
कौषी०ब्रा०	-	कौषीतकि ब्राह्मण
गोपथ०	-	गोपथ ब्राह्मण
चरक०	-	चरकसंहिता
चि०,चिकित्सा०	-	चिकित्सास्थान
छान्दो०उप०	-	छान्दोग्य उपनिषद्
ज्यो०	-	ज्योतिष
तैत्ति०	-	तैत्तिरीय संहिता
तैत्ति०ब्रा०	-	तैत्तिरीय ब्राह्मण
पाणिनि०	-	पाणिनिकालीन भारतवर्ष
पु०	-	पुराण
पूर्व०	-	पूर्वभाग
पृ०	-	पृष्ठ
बृह०उप०	-	बृहदारण्यक उपनिषद्
बृहत्०	-	बृहत्संहिता
ब्रा०	-	ब्राह्मण
भाग०	-	भागवत पुराण
मनु०	-	मनुस्मृति
महा०	-	महाभाष्य, पतंजलि
महा०	-	महाभारत
मैत्रा०	-	मैत्रायणी संहिता
यजु०	-	यजुर्वेद संहिता (शुक्ल)
विष्णु०	-	विष्णु स्मृति
वेदांग०	-	वेदांग-ज्योतिष
शत०	-	शतपथ ब्राह्मण
शांखा०	-	शांखायन श्रौतसूत्र
शान्ति०	-	शान्तिपर्व
शारीर०	-	शारीरस्थान
श्रौत०	-	श्रौतसूत्र
श्लो०	-	श्लोक
सं०	-	संहिता
समरा०	-	समरांगण-सूत्रधार
साम०	-	सामवेद संहिता
सुश्रुत०	-	सुश्रुत संहिता
सूत्र०	-	सूत्रस्थान

सन्दर्भ ग्रन्थ

वैदिक वाङ्मय एवं संस्कृत साहित्य

१. ऋग्वेद संहिता, सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी
२. यजुर्वेद संहिता, सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी
३. सामवेद संहिता, सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी
४. अथर्ववेद संहिता, सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी
५. तैत्तिरीय संहिता, सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी
६. मैत्रायणी संहिता, सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी
७. काठक संहिता, सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी
८. १०८ उपनिषदें, व्यास प्रकाशन, वाराणसी, १९८३
९. अग्निपुराण
१०. अष्टाध्यायी
११. ऐतरेय ब्राह्मण
१२. कौषीतकि ब्राह्मण
१३. गोपथ ब्राह्मण
१४. तैत्तिरीय ब्राह्मण
१५. शतपथ ब्राह्मण
१६. चरकसंहिता
१७. सुश्रुत संहिता
१८. महाभाष्य (पतंजलि)
१९. महाभारत
२०. भागवत पुराण
२१. मनुस्मृति
२२. आर्यभटीय, आर्यभट
२३. कौटिलीय अर्थशास्त्र, गैरोला संस्करण, चौखंबा, वाराणसी, १९७७
२४. पंचसिद्धान्तिका, वराहमिहिर, चौखंबा, वाराणसी, १९९७
२५. बृहत्संहिता, वराहमिहिर, चौखंबा, वाराणसी १९८३
२६. लीलावती, भास्कराचार्य, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, १९९३
२७. समरांगणसूत्रधार, डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, नई दिल्ली, १९६५
२८. सिद्धान्तशिरोमणि, भास्कराचार्य, चौखम्बा, वाराणसी, १९८९
२९. सूर्यसिद्धान्त, चौखम्बा, वाराणसी, १९९५
३०. वेदांग-ज्योतिष (लगध), नई दिल्ली, १९८५
३१. शुक्रनीति-सार, स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, बहालगढ़, १९८३
३२. वैदिक-कोश, भगवद्दत्त, हंसराज, लाहौर, १९२६
३३. निरुक्त, यास्क, सं० लक्ष्मणसरूप, लाहौर, १९२७

हिन्दी ग्रन्थ

१. अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, डा० कपिलदेव द्विवेदी, १९८८ ई०
२. प्राचीन भारतीय गणित, डा० ब०ल० उपाध्याय, नई दिल्ली, १९७१
३. भारतीय स्थापत्य, डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, हिन्दी समिति उ०प्र०, १९६८
४. संसार के महान् गणितज्ञ, गुणाकर मुले, राजकमल, दिल्ली, १९९२
५. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, १९९४
६. वेदरश्मि, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पारडी, १९६४
७. वेदविद्या, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा
८. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, वाराणसी, १९५६
९. वेद व विज्ञान, स्वा० प्रत्यगात्मानन्द, वि०वि० प्रकाशन, वाराणसी, १९९२
१०. वेद-विज्ञान, कर्पूरचन्द्र कुलिश, राज० सं० अकादमी, जयपुर, १९८७
११. वेदों की वैज्ञानिक अवधारणा, शिवनारायण उपाध्याय, कोटा, १९९४
१२. वेदों में आयुर्वेद, डा० कपिलदेव द्विवेदी, ज्ञानपुर १९९३
१३. वेदों में विज्ञान, डा० बलराज शर्मा, दिल्ली, १९९१
१४. वैदिश कोश, डा० सूर्यकान्त, बनारस यूनि०, १९६३
१५. वैदिक वाङ्मय में विज्ञान, डा० रामेश्वरदयाल गुप्त उज्जैन, १९९७
१६. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, गिरिधर शर्मा, पटना, १९७२
१७. वैदिक सम्पदा, वीरसेन वेदश्रमी, दिल्ली, १९७३
१८. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, डा० सत्यप्रकाश, पटना, १९५४

ENGLISH BOOKS

1. Cosmogony in the Vedas, Ram Murti Sharma, 1995
2. Founders of Sciences in Ancient India, Dr. Satya Prakash, 1995
3. The Essence of the Vedas, Dr. K.D. Dvivedi, 1990
4. Mathematics as known to Vedic Samhitas, M.D. Pandit, 1993
5. Mathematics in Ancient & M. India, A.K. Bag, 1979
6. Non-Conventional Sources of Energy in Vedas, M. Ashtikar, 1995
7. Scientific knowledge in Vedas, P.V. Vartak, 1995
8. Science and Technology in Vedas, Krishnaji, 1995
9. Science in the Vedas, V.N. Shastri, Delhi, 1970
10. The Sulba Sutras, Dr. Satya Prakash, 1979
11. Vedanga Jyotisa of Lagadha, T.S.K. Sastry, New Delhi, 1985
12. Vedic Mathematics, Swami Bharati Krishna Tirtha, 1981
13. Weather Science in Ancient Inida, A.S. Ramanathan, Jaipur, 1993

अध्याय - १

भौतिकी (Physics)

अग्निविज्ञान (Energy)

अग्नि-विद्या : चारों वेदों में अग्निविद्या या अग्निविज्ञान से संबद्ध सैकड़ों मंत्र हैं । इनमें अग्नि के गुण, धर्म, कर्तृत्व, व्यापकता आदि का विस्तृत विवेचन हुआ है ।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार भौतिकी में इन विषयों पर विचार होता है – Force (शक्ति), Motion (गति), Energy (ऊर्जा), Power (सामर्थ्य), Heat (ताप), Sound (ध्वनि), Light (प्रकाश), Magnetism (चुम्बकत्व), Electricity (विद्युत्), Nuclear Energy (नाभिकीय ऊर्जा) आदि । इनमें से अधिकांश का संबन्ध अग्निविज्ञान से है ।

ऊर्जा के विषय में नियम है कि - Energy can neither be created nor destroyed. It can be transformed from one form to another form. अर्थात् ऊर्जा न उत्पन्न की जा सकती है और न नष्ट होती है । इसका केवल रूपान्तरण होता है ।

वेदों में ऊर्जा का प्रतिनिधि अग्नि को माना गया है । अग्नितत्त्व की मीमांसा ऊर्जा का विवेचन है ।

ऊर्जा अविनाशी एवं अमर है : यजुर्वेद का कथन है कि अग्नि (Energy) अक्षय और अमर है । यह नश्वर जगत् में अमर (Indestructible) है । इसका कारण बताया गया है कि ऊर्जा में वयस् (Potential Energy) है । वेदों में Potential Energy के लिए वयस् शब्द है ।

मर्तेषु- अग्निरमृतो नि धायि । यजु० १२.२४
अग्निरमृतो अभवद् वयोभिः । यजु० १२.२५

ऊर्जा का रूपान्तरण (Transformation of Energy) : वेदों के अनेक मंत्रों में ऊर्जा के विषय में कहा गया है कि अग्नि (ऊर्जा, Energy) एक ही है । उसका रूपान्तरण होता है, अतः उसके अनेक नाम हो जाते हैं । उसमें सभी कार्यों को करने की क्षमता है, अतः उसे विश्वकर्मा कहते हैं । वह महाशक्तिशाली है । वह अनेक रूप धारण करता है, अतः उसे 'पुरुरूप' (अनेक रूप धारण करने वाला) कहा गया है । ऊर्जा सभी रूपों (शब्द, रूप, प्रकाश, गति आदि) को धारण करती है, अतः उसे 'विश्वरूप' कहा गया है । ऊर्जा समूह के रूप में चलती है, अतः उसे संहत् (समूह, पुंजीभूत) कहा गया है ।

(क) **यो देवानां नामधा एक एव ।** ऋग्० १०.८२.३
(ख) **अग्ने .. त्मना शतिनं पुरुरूपम् ।** ऋग्० २.२.९
(ग) **स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा: ।** ऋग्० ३.१.७

ऊर्जा पुंजीभूत है : ऊर्जा की संख्या सहस्रों और हजारों अश्वशक्ति (Horse-power) के रूप में होती है, अत: उसे शतिन् (१०० अश्वशक्ति) और सहस्त्रिन् (हजार अश्वशक्ति) आदि कहा गया है । अग्नि को ऊर्जा का स्वामी (ऊर्जापति) और शक्ति का पुत्र (सहस: सूनु:) आदि नामों से संबोधित किया गया है ।

(क) **शतिनं पुरुरूपम् ।** ऋग्० २.२.९
(ख) **अग्ने बृहतो दा: सहस्त्रिण: ।** ऋग्० २.२.७
(ग) **सूनो सहस ऊर्जा पते ।** ऋग्० ८.१९.७

गविष्टि एवं अश्वमिष्टि : वेदों में गविष्टि और अश्वमिष्टि शब्दों का पारिभाषिक शब्दों के रूप में प्रयोग हुआ है । गविष्टि- गो+इष्टि, गो शब्द का अर्थ- सूर्य की किरणें है, अत: गविष्टि सूर्य-किरण-विज्ञान अर्थात् सूर्य की किरणों का विवेचन और विश्लेषण है । अश्वमिष्टि - अश्व + इष्टि शब्द का अर्थ है - अग्नि आदि की अश्वशक्ति या कार्य-परिमाण (Horse-power, H.P.) का विवेचन । आधुनिक विज्ञान के अनुसार अश्वशक्ति (H.P.) ७४५.७ Watts प्रति सेकेंड है । वेदों में इसको अश्वमिष्टि कहा गया है ।

मघवन् गविष्टये ... अश्वमिष्टये । ऋग्० ८.६१.७
अग्ने ... अश्वमिष्टे । ऋग्० २.६.२

वैश्वानर अग्नि (Universal Energy) : वेदों का मन्तव्य है कि विश्व के प्रत्येक कण (Molecule) में ऊर्जा (Energy) है । विश्वव्यापी ऊर्जा को वेदों में वैश्वानर अग्नि कहा गया है । इसे सृष्टि के प्रत्येक वस्तु का उत्पादक और सृष्टिकर्ता कहा गया है । इस वैश्वानर अग्नि को संसार का केन्द्र (Centre) कहा गया है । यह सारे संसार को अपने आकर्षण (Magnetism) से अपने वश में किए हुए है । इसकी ऊर्जा सैकड़ों प्रकार की गति वाली है (शतिनीभि:) । सूर्य की किरणों से लेकर मानवजगत् तक, वृक्ष-वनस्पतियों में, जल में, समुद्र में इसका साम्राज्य है ।

(क) **वैश्वानरो विश्वकृत् ।** अथर्व० ६.४७.१
(ख) **वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनाम् ।** ऋग्० १.५९.१
(ग) **वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टि: ।** ऋग्० १.५९.७
(घ) **आ सूर्ये .. ओषधीष्वप्सु-मानुषेषु-राजा ।** ऋग्० १.५९.३

अग्नि (Energy) का विराट् रूप (Universal Energy)

ऊर्जा के विभिन्न नाम : ऋग्वेद में ऊर्जा (अग्नि,Energy) के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ऊर्जा ही इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, धाता, मित्र,

वरुण, अर्यमा, त्वष्टा, रुद्र, मरुत्, पूषा आदि देव है । ऊर्जा देव ही नहीं, अपितु महान् देवियों के रूप में भी विद्यमान है । विभिन्न क्रियाकलापों के आधार पर ऊर्जा ही अदिति, इडा, सरस्वती और भारती है । प्रत्येक देव और देवी ऊर्जा के विभिन्न रूप हैं । जैसे- कर्तृत्व के रूप में ऊर्जा ब्रह्मा है, धर्ता या पालक के रूप में वह विष्णु है और संहारक के रूप में रुद्र है । (ऋग्० २.१.१ से ११ ; ५.३.१ से ५)

(क) **त्वमग्न इन्द्रः, त्वं विष्णुः, त्वं ब्रह्मा० ।** ऋग्० २.१.३
(ख) **त्वं वरुणः, त्वं मित्रः, त्वम् अर्यमा० ।** ऋग्० २.१.४
(ग) **त्वं रुद्रः, त्वं मारुतं, त्वं पूषा० ।** ऋग्० २.१.६
(घ) **त्वम् अदितिः, त्वं भारती, त्वम् इडा, त्वं सरस्वती ।** ऋग्० २.१.११

ऊर्जा व्यक्त और अव्यक्त, स्थूल और सूक्ष्म : ऊर्जा मूल रूप में गुप्त या अव्यक्त है । वह सूक्ष्म भी है, स्थूल भी । वह मूर्त भी है और अमूर्त भी । इसलिए अग्नि (ऊर्जा) को 'गुहा सन्तम्' या 'गह्वरेष्ठ' कहा गया है, क्योंकि वह सूक्ष्मरूप में अप्रकट है । कहीं वह वृक्ष आदि में अप्रकट रूप में विद्यमान है, कहीं भूगर्भ, समुद्र आदि में गुप्त रूप में विद्यमान है । वही घर्षण (Friction) आदि से प्रकट होती है ।

(क) **त्वं वनेभ्यः ... जायसे शुचिः ।** ऋग्० २.१.१
(ख) **त्वामग्ने .. गुहा सन्तम् ।** ऋग्० ५.८.३
(ग) **या ते अग्ने .. तनूः .. गह्वरेष्ठा ।** यजु० ५.८

ऊर्जा सर्वव्यापक है (Energy Omnipresent)

चारों वेदों में ऊर्जा को सर्वव्यापक बताया है । यह द्युलोक अन्तरिक्ष और भूमि के प्रत्येक कण में व्याप्त है । ऊर्जा के कारण ही गति, स्थिति और परिवर्तन होता है । अग्नि विश्व को चेतना देती है । वही विश्व की गति का केन्द्र है और द्यावापृथिवी में व्याप्त है ।

(क) **विश्वस्य केतुः, भुवनस्य गर्भः ,**
आ रोदसी अपृणात् । यजु० १२.२३
(ख) **आ रोदसी भानुना भात्यन्तः ।** ऋग्० १०.४५.४

अग्नि में संप्रेषण शक्ति (Power of transmission)

यजुर्वेद के दो मंत्रों में उल्लेख है कि अग्नि संसार का अमर दूत है । यह इधर का संदेश उधर और उधर का सन्देश इधर लाता है । अग्नि (Energy) में इस संप्रेषणशक्ति के लिए द्रुतगामिता का सूचक 'दुद्रवत्' शब्द का प्रयोग हुआ है । इसी धातु से संस्कृत का द्रुत (Quick, Swift, Speedy) शब्द बना है । दुद्रवत

का अर्थ है - दौड़कर जाता है । ऊर्जा की इसी संप्रेषण शक्ति के आधार पर रेडियो और टी०वी० की संरचना हुई है ।

विश्वस्य दूतममृतम् ।

स दुद्रवत् स्वाहुतः । यजु० १५.३३.३४

अग्नि में विद्युत्-तरंगें (Electric-waves)

ऋग्वेद में ऊर्जा (अग्नि) को अतितीव्रगामी अमर दूत कहा गया है । ऊर्जा की तरंगें समुद्र की लहरों के तुल्य अत्यन्त तीव्रता से जाती हैं ।

जीरं दूतम् अमर्त्यम् ।

सिन्धोरिव ..ऊर्मयः, अग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः । ऋग्० १.४४.११-१२

विद्युत् में श्रवण-शक्ति (Power of hearing)

ऋग्वेद में 'श्रुत्कर्ण' शब्द से यह भी संकेत दिया गया है कि विद्युत् के द्वारा ध्वनि-तंरगों का भी संप्रेषण होता है, जिससे दूरस्थ व्यक्ति परस्पर वार्तालाप कर सकते हैं । इसी आधार पर Telephone की प्रक्रिया काम करती है ।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः । ऋग्० १.४४.१३

इस मंत्र में वह्नि शब्द ऊर्जा में वहन करने की या ले जाने की शक्ति का द्योतक है । यजुर्वेद में अग्नि की विद्युत्-तरंगों में संवाद-संप्रेषण की क्षमता के लिए 'श्रवो वयः' शब्द का प्रयोग हुआ है । शतपथ ब्राह्मण में इस मंत्र की व्याख्या में कहा गया है कि इस विद्युत्-तरंग के द्वारा ही दूर देशान्तर में संवाद सुना जा सकता है । यही Radio और Wireless की संरचना का आधार है ।

(क) अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयः । यजु० १२.१०६

(ख) धूमो वा अग्नेः श्रवो वयः, स हि एनम्
अमुष्मिन् लोके श्रावयति । शत० ब्रा० ७.३.१.२९

अथर्वा ऋषि विश्व का प्रथम वैज्ञानिक

अथर्वा (अथर्वन्) द्वारा तीन आविष्कार

अथर्वा ऋषि : विश्व का प्रथम वैज्ञानिक होने का श्रेय अथर्वा ऋषि को है । अथर्वा ऋषि ने अग्नि-विषयक तीन आविष्कार किए हैं । इनका उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में है ।

अग्नि का महत्त्व : मानव-जीवन और विज्ञान की दृष्टि से अग्नि सबसे बहुमूल्य और आवश्यक पदार्थ है । अग्नि से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा (Energy) से संसार के सभी काम चलते हैं । अतः यजुर्वेद का कथन है कि विद्वानों ने अग्नि

को उपयोगिता की दृष्टि से सर्वप्रथम स्थान दिया है । ऋग्वेद ने अग्नि को ऊर्जा का सम्राट् कहा है ।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठः । यजु० ३.१५
त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजम्० - ऋग्० ३.१०.१

(१) वृक्ष आदि से अग्नि का आविष्कार : अथर्वा ऋषि ने सर्वप्रथम अरणि नामक वृक्ष की लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि का अविष्कार किया था । ऋग्वेद और यजुर्वेद में इसका विस्तृत उल्लेख है । यजुर्वेद का कथन है कि अथर्वा ऋषि ने मन्थन (घर्षण,Friction) के द्वारा अग्नि उत्पन्न की । यज्ञ में इस अग्नि का प्रयोग सर्वप्रथम अथर्वा के पुत्र दधीचि ऋषि ने किया ।

अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थद् अग्ने । यजु० ११.३२
तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । यजु० ११.३३

ऋग्वेद में अथर्वा ऋषि का उल्लेख १५ बार हुआ है । (ऋग्० १.८०.१६; १.८३.५ ; ९.११.२ आदि) । ऋग्वेद में अरणियों के घर्षण से अग्नि उत्पन्न करने का वर्णन है । ऋग्वेद में कहा है कि अरणिनामक वृक्ष की समिधाओं में अग्नि है । दो अरणियों के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है ।

अरण्योर्निहितो जातवेदाः । ऋग्० ३.२९.२
नवं जनिष्टारणी । ऋग्० ५.९.३
अग्निं मन्थाम पूर्वथा । ऋग्० ३.२९.१

ऋग्वेद में वर्णन है कि दो पत्थरों की रगड़ से भी अग्नि उत्पन्न होती है ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान । ऋग्० २.१२.३

(२) जल के मन्थन से अग्नि (Hydroelectric, Hydel) : अथर्वा ऋषि का द्वितीय अविष्कार है - जलीय विद्युत् । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख है कि अथर्वा ऋषि ने तालाब के जल से मन्थन (Friction) के द्वारा जलीय विद्युत् (Hydel) का आविष्कार किया था ।

त्वामग्ने पुष्करादधि-अथर्वा निरमन्थत ।
ऋग्० ६.१६.१३ । यजु० ११.३२ । साम० ९ । तैत्ति० ३.५.११.३

(३) भूगर्भीय अग्नि (पुरीष्य अग्नि,Oil and Natural Gas) : अथर्वा ऋषि का तृतीय अविष्कार है - भूगर्भीय अग्नि (Gas) का पता चलाना और उसे उत्खनन द्वारा निकालना । इसका विस्तृत वर्णन ऋग्वेद, यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में मिलता है । ऋग्वेद आदि में 'पुरीष्यासो अग्नयः ' शब्द का प्रयोग है । साथ ही इसे पृथ्वी एवं समुद्र से खोदकर निकालने का उल्लेख है । भूगर्भीय अग्नि

का बहुवचन में उल्लेख सिद्ध करता है कि पुरीष्य अग्नि शब्द के द्वारा भूगर्भीय प्रज्वलनशील सभी पदार्थों, पेट्रोल, गैस, किरोसिन तेल (मिट्टी का तेल) आदि का ग्रहण है। यजुर्वेद में मंत्रों (यजु० ११.२८ से ३२) में इसकी उच्च प्रज्वलनशीलता का विस्तृत वर्णन है। यजुर्वेद में 'पुरीष्योऽसि विश्वभरा' के द्वारा उल्लेख है कि भूगर्भीय पेट्रोल, गैस आदि विश्व के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं और ये संसार का पालन-पोषण करते हैं।

(क) पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने। यजु० ११.३२
(ख) पृथिव्याः सधस्थाद् अग्निं पुरीष्यम् .. खनामः। यजु० ११.२८
(ग) अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रम् अभितः पिन्वमानम्। यजु० ११.२९
(घ) अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तम् अजस्रमित्। यजु० ११.३१
(ङ) पुरीष्यासो अग्नयः। ऋग्० ३.२२.४, यजु० १२.५०, तैत्ति० ४.२.४.३

यजुर्वेद के मंत्र में 'योनिरग्नेः' से स्पष्ट किया गया है कि ये अग्नि के कारण अत्यन्त प्रज्वलनशील पदार्थ हैं। 'समुद्रम् अभितः' के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि ये अग्नियाँ (गैस, पेट्रोल आदि) समुद्रों के बहुत विस्तृत भाग में फैली हुई हैं।

खानों में अग्नि : अथर्ववेद में कोयले आदि की खानों का उल्लेख है। इनके अन्दर होने वाली अग्नि की भयंकरता का विस्तृत वर्णन भी किया गया है। खानों की अग्नि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह अत्यन्त घातक (म्रोक), दम घुटाने वाली (मनोहा), शरीर को झुलसाने वाली और गन्दा करने वाली, जला देने वाली (निर्दाह) और अत्यन्त भयंकर (घोर) है।

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः। अ० १६.१.३
घोरं तदेतत्। अ० १६.१.८

समुद्री अग्नि : अथर्ववेद में उल्लेख है कि समुद्र में भी अग्नि व्याप्त है। समुद्री अग्नि घोर और शान्त दोनों प्रकार की है।

(क) अपाम् अग्रम् असि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि। अ० १६.१.६
(ख) यो व आपोऽग्निराविवेश .. घोरं तदेत्। अ० १६.१.८
(ग) शिवान् अग्नीन् अप्सुसदः०। अ० १६.१.१३

१० प्रकार की अग्नियाँ : ऋग्वेद में उल्लेख है कि कि इन्द्र (Energy) की धुरा को दस वह्नियां (अग्नि) वहन करती हैं। ये अग्नियाँ दस प्रकार की हैं। जैसे - जलीय ऊर्जा, भूगर्भीय ऊर्जा, सौर ऊर्जा, वृक्ष आदि से उत्पन्न ऊर्जा आदि। इन दस अग्नियों का नाम कहीं नहीं गिनाया गया है। आधुनिक विज्ञान में भी ऊर्जा के अनेक प्रकार बताए हैं - जैसे मेकेनिक ऊर्जा, रासायनिक ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा, सौर ऊर्जा आदि।

दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः । ऋग्० ८.३.२३

आग्नेय ऊर्जा के अनन्त रूप : ऋग्वेद में इन्द्र के रथ में जुतने वाले अश्वों की संख्या २ से लेकर १०,२०,३०,४०,५०,६०,७०,८०,९० गिनाते हुए १०० तक गिनाई गई है। यह अश्व नहीं, अपितु ऊर्जा (Energy) की असंख्य-रूपता का वर्णन किया गया है। ऊर्जा की छोटी से छोटी इकाई भी होगी और बड़ी से बड़ी भी। इसका ही मंत्र में संकेत है।

आ द्वाभ्यां ... याहि शतेन हरिभिः । ऋग्० २.१८.४ से ६

यजुर्वेद में भी ऊर्जा के अनन्त रूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अग्नि (ऊर्जा) के सहस्रों रूप हैं। 'सहस्रियं वाजम्' सहस्र प्रकार की ऊर्जा को बताता है।

सहस्रियं वाजम् ... जातवेदः । यजु० १२.४७

अग्नि (ऊर्जा) के तीन रूप : यजुर्वेद में अग्नि के तीन रूपों का वर्णन है -सौर ऊर्जा, भौतिक अग्नि और समुद्री अग्नि (वाडवानल, Submarine Fire)।

दिवस्परि प्रथमं .. द्वितीयं जातवेदाः । तृतीयमप्सु० । यजु० १२.१८

यजुर्वेद के ही एक अन्य मंत्र में समुद्री अग्नि, जलीय ऊर्जा (Hydel), सौर ऊर्जा और पार्थिव ऊर्जा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह ऊर्जा सारे संसार में फैली हुई है।

समुद्रे त्वा .. अप्सु अन्तः, तृतीये रजसि० । यजु० १२.२०
रोदसी भानुना भाति-अन्तः । यजु० १२.२१

एक अन्य मंत्र में सौर ऊर्जा, आकाशीय ऊर्जा (Atmospheric Energy) और भौतिक ऊर्जा का उल्लेख है। इस मंत्र में पृथिवी के अन्दर ऊर्जा का केन्द्र बताया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि पृथिवी के अन्दर ऊर्जा (गैस आदि) का भंडार है।

दिवि ते जन्म, अन्तरिक्षे नाभिः, पृथिव्याम् अधि योनिरित् ।
यजु० ११.१२

अग्नि का जन्म जल से : यजुर्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि अग्नि जल का पित्त (ऊष्मा) है। इसका अभिप्राय यह है कि जल में अग्नि सदा विद्यमान है। जिस प्रकार घर्षण या मन्थन से दही से घी या दूध से मक्खन निकाला जाता है, उसी प्रकार मन्थन से जल से ऊष्मा या अग्नि (Hydel) प्रकट होती है।

अग्ने पित्तम् अपामसि । यजु० १७.६ । अथर्व० १८.३.५

अग्नि (ऊर्जा) के स्थान : अथर्ववेद के एक सूक्त के सात मंत्रों में अग्नि या ऊर्जा के स्थानों का विस्तृत विवरण दिया गया है । ये स्थान हैं - जल, पत्थर, ओषधियाँ और वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी और मनुष्य, सभी द्विपाद् (मनुष्य आदि) और सभी चतुष्पाद् (पशु, चौपाए), द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष, विद्युत् (Electricity) एवं वायु आदि । (अथर्व० ३.२१.१ से ७)

ऊर्जा विश्वव्यापी : अथर्ववेद का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है कि ऊर्जा (Energy) द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, विद्युत्, वायु आदि सभी में व्याप्त है । इसका अभिप्राय यह है कि विश्व का ऐसा कोई स्थान या कण नहीं है, जहाँ ऊर्जा प्रकट या गुप्त रूप से न हो । इसलिए जहाँ भी कोई घर्षण होता है, वहाँ विद्युत् (Electricity) अवश्य उत्पन्न होती है ।

दिवं पृथिवीमनु - अन्तरिक्षं ये विद्युतम् अनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यः० । अ० ३.२१.८

ऊर्जा-हेतु विविध यन्त्र : तैत्तिरीय संहिता में ऊर्जा हेतु प्रयुक्त कुछ यन्त्रों का उल्लेख है । ये हैं - **१. वात-यन्त्र :** यह वायु को उत्पन्न करने एवं वायु के दबाव को नापने के लिए प्रयुक्त होता था । **२. ऋतु-यन्त्र :** यह गर्मी-सर्दी आदि को नापने का यंत्र था । **३. दिशायंत्र :** यह दिशा-बोधक यंत्र था । **४. तेजस्-यन्त्र :** यह तेज अर्थात् प्रकाश आदि की उत्पत्ति के लिए प्रयुक्त यन्त्र था ।

वातानां यन्त्राय, ऋतूनां यन्त्राय, दिशां यन्त्राय,
तेजसे यन्त्राय । तैत्ति० सं० १.६.१.२

तैत्तिरीय संहिता में वाग्यन्त्र का उल्लेख है । यह संभवतः ध्वनितरंगों (Sound-waves) को नापने का यन्त्र था । यंत्र शब्द का प्रयोग नियंत्रण करने की शक्ति के लिए भी हुआ है (ऋग्० १.३४.१) । ऋग्वेद में आकर्षण शक्ति के लिए भी यन्त्र शब्द का प्रयोग हुआ है । सूर्य अपने यंत्रों अर्थात् आकर्षण शक्ति से पृथिवी को रोके हुए है ।

(क) वाचो यन्त्रम् अशीय । तैत्ति० सं० १.६.१.२
(ख) सविता यन्त्रैः पृथिवीम् अरम्णात् । ऋग्० १०.१४९.१

जल और अग्नि का चक्र (Circle of water and fire) : यजुर्वेद में एक महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि सृष्टि में जल और अग्नि का चक्र चल रहा है । दोनों एक दूसरे के पूरक और आधार हैं । जल से अग्नि, अग्नि से जल और फिर जल से अग्नि । जल > अग्नि > जल > अग्नि, यह चक्र विश्व का आधार है । अग्नि को अपनी स्थिति के लिए जल चाहिए ।

अग्नि सोम को जलाता है। उसे जलाने से ऊष्मा तैयार होती है। उस ऊष्मा से पुन: जल की उत्पत्ति होती है। इसका ही वर्णन यजुर्वेद में किया है कि अग्नि के कारण जल वर्षा के रूप में पृथिवी पर आता है और फिर पृथिवी से वह जल सूर्य की किरणों से भाप और गैस बनकर ऊपर जाता है और वहाँ से वर्षा के रूप में पुन: पृथिवी पर आता है।

(क) **प्रसद्य भस्मना योनिम् अपश्च पृथिवीमग्ने।**
संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरा सद:।
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने। यजु० १२.३८,३९

(ख) **अप्सु-अग्ने सधिष्टव।** यजु० १२.३६

अग्नि (ऊर्जा) विश्व का आधार : यजुर्वेद का कथन है कि अग्नि सृष्टि में ऊर्जा और चेतना देता है। वही सृष्टि का आधार है। वह द्युलोक और पृथिवी में सर्वत्र व्याप्त है। वही वृक्ष और वनस्पतियों का गर्भ (आधार) है।

(क) **विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ:, आ रोदसी अपृणात्०।** यजु० १२.१३
(ख) **गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्।**
गर्भो विश्वस्य भूतस्य। यजु० १२.३७

ताप (Heat)

अग्नि में विस्तारण की क्षमता (Power of expansion) : यजुर्वेद का कथन है कि अग्नि में ताप के द्वारा विस्तार करने की शक्ति है, इसी आधार पर लोकों का विस्तार होता है। अग्नि के द्वारा ही भू, अन्तरिक्ष आदि का विस्तार हुआ। मंत्र में उच्च ताप के लिए 'त्वेष' शब्द है।

अग्ने .. येनान्तरिक्षम् उर्वाततन्थ त्वेष: स०। यजु० १२.४८

अग्नि (ताप, Heat) से पत्थर तोड़ना : यजुर्वेद में वर्णन है कि कठोर से कठोर पत्थर या पहाड़ को भी अग्नि (ताप) से तोड़ा जा सकता है। अग्नि ने बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ दिया।

वीडुं चिदद्रिम् अभिनत्०। यजु० १२.२३

वज्र (Dynamite, डाइनामाइट) से चट्टानों को तोड़ना : ऋग्वेद में वर्णन है कि इन्द्र ने पर्वतों की चट्टानों को वज्र (डाइनामाइट) से काटकर नदियों के लिए मार्ग बनाया। यही ताप का सिद्धान्त सर्वत्र काम देता है। अग्नि (ताप) के द्वारा पदार्थ फैल जाता है, अत: वह सरलता से टूट जाता है। लोहा आदि भी इसी प्रकार मोड़ा, तोड़ा या काटा जाता है। पहाड़ों को तोड़कर टनल (सुरंग) बनाने के लिए अतएव डाइनामाइट का प्रयोग किया जाता है।

वज्रेण खानि - अतृणन्-नदीनाम् । ऋग्० २.१५.३

अग्नि (Heat) परमाणुओं में गति देता है : ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि में उल्लेख है कि अग्नि ही परमाणुओं में गति देता है । यह अग्नि की ऊर्जा ही है, जिससे प्रत्येक परमाणु गतिशील है । इसीलिए अग्नि को द्युलोक और पृथिवी का स्वामी कहा गया है । यही ऊर्जा सर्वत्र काम कर रही है, जिससे संसार के प्रत्येक कण में गति, प्रगति, विस्तार और नित-नूतनता विद्यमान है । यहाँ Molecules के लिए रेतस् शब्द का प्रयोग है ।

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपां रेतांसि जिन्वति । ऋग्० ८.४४.१६, यजु० ३.१२

प्रत्येक परमाणु में अग्नि है : ऋग्वेद का कथन है कि प्रत्येक रजस् (परमाणु, Molecule) में अग्नि विद्यमान है । इस अग्नि के कारण ही ताप (Heat) है ।

विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् । ऋग्० १.१४९.४

अग्नि के तीन रूप (तनू, शरीर) : यजुर्वेद में अग्नि के तीन शरीरों (रूपों) का वर्णन है । ये हैं -

१. अयःशया तनू (Terrestrial Energy) : अयस् का अर्थ है - धातुमात्र, लोहा और तांबा, अतः अयःशया का अर्थ है - धातुओं में विद्यमान अग्नि । प्रत्येक धातु (Metal) में अग्नि (ऊर्जा) विद्यमान है, अतः लोहा, सोना आदि धातुओं को गलाने पर उसका आग्नेय रूप प्रकट होता है । पृथिवी के अन्दर विद्यमान अग्नि के कारण ही सभी धातुओं का निर्माण होता है ।

२. रजःशया तनू (Atmospheric Energy) : रजस् शब्द के अर्थ अन्तरिक्ष, धूल, कण और आकाश हैं । यहाँ आकाशीय कणों (Molecules) का अर्थ अभिप्रेत है । आकाशीय कणों में ऊर्जा विद्यमान है, अतएव विद्युत् (Electricity), आँधी, तूफान आदि की उत्पत्ति होती है ।

३. हरिशया तनू (Solar Energy) : हरि शब्द सूर्य और सूर्य की किरणों के लिए है । सूर्य में और सूर्य की किरणों में जो ऊष्मा विद्यमान है, वह अग्नि (ऊर्जा) का ही रूप है ।

इस प्रकार मंत्र में पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश में विद्यमान ऊर्जा (Energy) अग्नि के तीन शरीर बताए गए हैं ।

या ते अग्नेऽयःशया तनूः० । या ते अग्ने रजःशया तनूः० ।
या ते अग्ने हरिशया तनूः ०। यजु० ५.८

अग्नि के विविध स्रोत (Sources of Energy)

वेदों में अग्नि के विविध स्रोतों का उल्लेख मिलता है । इनका विस्तृत विवरण भी मंत्रों में प्राप्य है ।

१. एक अग्नि के अनेक रूप : ऋग्वेद का कथन है कि अग्नि एक ही है । उसे अनेक प्रकार से प्राप्त करते हैं । उसको निकालने के अलग-अलग अनेक उपाय हैं ।

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः । ऋग्० ८.५८.२

२. अग्नि जल से, पत्थर से, वनस्पतियों से और विभिन्न प्रकार की ओषधियों से प्राप्त होती है ।

त्वमग्ने .. अद्भ्यः , अश्मनः, वनेभ्यः, ओषधीभ्यः । ऋग्० २.१.१

३. भूगर्भीय अग्नि अत्यन्त शक्तिशाली होती है ।

पुरीष्यासो अग्नयः० । ऋग्० ३.२२.४

४. जल में अग्नि का निवास है ।

या अग्निं दधिरे .. आपः । अथर्व० १.३३.१

५. अग्नि सूर्य से, समुद्र से और जल से प्राप्त होती है ।

त्रीणि .. समुद्र एकं दिवि- एकम् अप्सु । ऋग्० १.९५.३

६. अग्नि नदियों के जल से, समुद्र से और बहते हुए जल से प्राप्त होती है ।

यो अग्निः - श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु । ऋग्० ८.३९.८

७. नदियों में जो भँवर (Whirl-pools) दिखाई देते हैं, उनमें बहुत बिजली होती है ।

अपां नपादा ह्यस्थात् -- विद्युतं वसानः । ऋग्० २.३५.९

८. ओषधियों और वनस्पतियों में अग्नि है । घर्षण के द्वारा इनसे अग्नि प्राप्त होती है ।

त्वम् ओषधीभ्यः जायसे शुचिः । ऋग्० २.१.१

९. नदियों के संगम ऊर्जा के महत्त्वपूर्ण स्थल हैं ।

ये नदीनां संस्रवन्ति उत्सासः सदमक्षिताः । अ० १.१५.३

१०. सूर्य, समुद्र और वायु ऊर्जा के स्रोत हैं ।

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतः ।

सूर्यस्य, समुद्रस्य, वातस्येव प्रजवः ०। ऋग्० ७.३३.७-८

११. वृक्ष-वनस्पतियों से, नदी और समुद्र से तथा सूर्य से ऊर्जा की प्राप्ति होती है ।

समग्नयः - ओषधीः, सिन्धून्., दिव्यातपन्ति । अ० १२.३.५०

१२. खान से, भूगर्भ से, जल से ऊर्जा की प्राप्ति ।

योऽप्सु-अग्निः, खनो निर्दाहः ० । अथर्व० १६.१.३.८

१३. पत्थर, जल, पर्वत, ओषधि और वनस्पति ऊर्जा के स्रोत ।

अश्मन् ऊर्जं पर्वते - अद्भ्य ओषधीभ्यः ० । यजु० १७.१

१४. सूर्य, जल और समुद्र ऊर्जा के स्रोत हैं ।

त्रीणि- दिवि, अप्सु, समुद्रे० । यजु० २९.१५

विद्युत् (Electricity) : वेदों में विद्युत् का अनेक मंत्रों में उल्लेख है । आकाशीय विद्युत् को उर्वशी कहा गया है । (ऋग्० १.३८.८ ; १.६४.९; १.१६४.२९; ६.३.८; ९.७६.३; ९.८७.८; १०.९५.१०) । आकाशीय विद्युत् को उर्वशी कहते हुए उसे दीर्घायु का साधन बताया है ।

विद्युत् न या .. प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः । ऋग्० १०.९५.१०

विद्युत् द्यावापृथिवी की शक्ति को बढ़ाती है ।

प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी । ऋग्० ९.७६.३

मरुत् देवता (Electro-magnetic waves) : मरुत् देवता विद्युत् की तरह चलते हैं ।

विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु । ऋग्० १.६४.९

विद्युत् के कारण वर्षा होती है ।

विद्युन्मिमाति, वृष्टिरसर्जि । ऋग्० १.३८.८

सूर्य (Solar Energy)

वेदों में सूर्य और सौर ऊर्जा के विषय में विस्तृत सामग्री प्राप्त होती है । इसमें सूर्य का महत्त्व, सूर्य अनेक, सूर्य की शक्ति का आधार, सूर्य और चराचर का संबन्ध, सौर ऊर्जा के विविध चमत्कार आदि का वर्णन मिलता है । यहाँ कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातों का ही उल्लेख किया जा रहा है ।

सूर्य संसार की आत्मा (Soul) : सूर्य सौरमंडल के ग्रह उपग्रहों आदि का पूर्णतया नियन्ता है । वही सौर मंडल को ऊर्जा देता है । वही अपने आकर्षण से सब पृथ्वी आदि ग्रहों को रोके हुए है । सूर्य की ऊर्जा से ही संसार के चराचर में गति, प्रगति, विकास और विलास है । सूर्य के द्वारा ही संसार को जीवनी शक्ति मिलती है, अतः सूर्य को आत्मा कहा गया है ।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

ऋग्० १.११५.१ । यजु० ७.४२ । अथर्व० १३.२.३५

सूर्य अनेक हैं : ऋग्वेद के एक मंत्र में उल्लेख है कि 'नानासूर्याः' और 'सप्त आदित्याः' अर्थात् सूर्य अनेक हैं । सात सूर्य से अभिप्राय ज्ञात होता है कि सात सौरमंडल हैं ।

सप्त दिशो नानासूर्याः । देवा आदित्या ये सप्त । ऋग्० ९.११४.३

अथर्ववेद का कथन है कि केन्द्रीय सूर्य कश्यप है । ये सात सूर्य उसके अंग हैं । तैत्तिरीय आरण्यक (१.७.१) में इन सात सूर्यों के नाम दिए हैं - आरोग, भ्राज, पटर, पतंग, स्वर्णर, जयोतिषीमान् और विभास ।

कश्यप .... यस्मिन् आर्पिताः सप्त साकम् । अ० १३.३.१०

सूर्य में सोम (Hydrogen, H_2 & Helium, He) : अथर्ववेद में वर्णन है कि सूर्य की ऊर्जा का आधार सोम अर्थात् हाइड्रोजन है । सोम से सूर्य को शक्ति मिलती है ।

सोमेन - आदित्या बलिनः । अथर्व० १४.१.२

यजुर्वेद में इसको दूसरे रूप में प्रस्तुत किया गया है । मंत्र का कथन है कि - सूर्य में ये दो तत्त्व मिलते हैं -- १. 'अपां रसम्' जल का सार भाग, जो ऊर्जा के रूप में है । 'उद्वयस्' शब्द ऊर्जारूप या गैसरूप अर्थ का बोधक है । जल का यह सार भाग हाइड्रोजन (Hydrogen) है । हाइड्रोजन के लिए 'अपां रसः' इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया गया है । २.'अपां रसस्य यो रसः' का अर्थ है - जल के सारभाग का सारभाग । जल का सारभाग हाइड्रोजन है और उसका सारभाग हीलियम (Helium) है । मंत्र में हीलियम के लिए 'अपां रसस्य यो रसः ' पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया गया है । मंत्र में 'सूर्ये सन्तं समाहितम्' के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि ये दोनों तत्त्व सूर्य में विद्यमान हैं ।

अंपां रसम् उद्वयसं , सूर्ये सन्तं समाहितम् ।
अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तमम् ।। यजु० ९.३

आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य में ९० प्रतिशत हाइड्रोजन है, ८ प्रतिशत हीलियम और २ प्रतिशत अन्य द्रव्य । सूर्य की सतह का तापमान ६ हजार डिग्री सेन्टिग्रेड है और अन्दर के हिस्से का तापमान लगभग १ करोड़ ३० लाख डिग्री सेन्टिग्रेड है । इस आन्तरिक ताप के कारण हाइड्रोजन हीलियम के रूप में परिवर्तित हो जाता है, इसे Thermo-nuclear Reactions कहा जाता है । गैसों के इन रूपान्तरणों के कारण सूर्य को निरन्तर विशाल ऊर्जा प्राप्त होती रहती है । सूर्य को अपनी इस ऊर्जा के लिए प्रति सेकन्ड ५० लाख टन द्रव्यमान की आवश्यकता होती है ।

सूर्य के चारों ओर विशाल गैस : ऋग्वेद में दीर्घतमस् ऋषि का कथन है कि मैंने योग-दृष्टि से देखा है कि सूर्य के चारों ओर दूर-दूर तक शक्तिशाली गैस (धूम) फैली हुई है। शक्तिशाली गैस के लिए 'शकमयं धूमम्' अर्थात् महाशक्तियुक्त धूम शब्द का प्रयोग है।

शकमयं धूमम् आराद् अपश्यम्,
विषूवता पर एनावरेण। ऋग्० १.१६४.४३

सूर्य में धब्बे : (Spots) ऋग्वेद में वर्णन है कि सूर्यमंडल में धब्बे हैं। मंत्र का कथन है कि सूर्य की चक्षु (मंडल, घेरा) रजस् (धूल, धब्बे, Spots) से युक्त होकर विचरण करता है।

सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतम्। ऋग्० १.१६४.१४

सूर्य की परिधि (Circumference) का दर्शन करना : ऋग्वेद में वर्णन है कि इन्द्र ने सूर्य की परिधि को चारों ओर से देखा। इसका अभिप्राय यह है कि उसने सूर्य को चारों ओर से देखा। यह एक वैज्ञानिक चमत्कार है। योगदृष्टि से ही ऐसा देखना संभव हो सका है, अन्यथा यह असंभव कार्य है।

इन्द्रः -- परि सूर्यस्य परिधीन् अपश्यत्। ऋग्० १०.१३९.४

सात महासूर्य (7 Solar systems) : अथर्ववेद में वर्णन है कि ब्रह्म में सात सूर्य एक साथ रहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सात सौर-मंडल हैं।

यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम्। अथर्व० १३.३.१०

सूर्य की सात रंग की किरणें (7 Sun-rays) : सूर्य की सात रंग की किरणें हैं। किरणों को सूर्य के सात घोड़े कहा गया है। साथ में यह भी वर्णन है कि इन किरणों के कारण ही वर्षा होती है।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः।
आपः समुद्रिया धाराः। अथर्व० ७.१०७.१

सूर्य की किरणें अतितीव्रगामी : अथर्ववेद में वर्णन है कि सूर्य की किरणें बहुत तीव्र गति से चलती हैं। तीव्र गति के लिए आशुमत् (तीव्र गति वाला) और रघुष्यद् (तीव्र प्रवाह वाला) शब्दों का प्रयोग हुआ है।

सूर्यस्य रश्मयः परापतन्ति - आशुमत्। अथर्व० ६.१०५.३
शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदः। अथर्व० १३.३.१६

सूर्य की किरणों से विद्युत्-प्रवाह (Electro-magnetic Radiation) : ऋग्वेद में वर्णन है कि सूर्य की किरणों के साथ मित्र और वरुण एक ही रथ पर बैठकर चलते हैं। मित्र शब्द धनात्मक आवेश (Positive Charge)

और वरुण ऋणात्मक आवेश (Negative Charge) के लिए हैं। ये दोनों मिलकर Electro-magnetic Radiation करते हैं। इनसे ही Electro-magnetic waves विद्युत् चुम्बकीय तरंगें प्रवाहित होती हैं। इन तरंगों के द्वारा प्रवाहित शक्ति के लिए दूत शब्द का प्रयोग हुआ है। इस दूत को अतितीव्रगामी कहा गया है। अजिर शब्द बहुत सक्रिय अर्थ को बताता है और मदेरघु शब्द अतितीव्रता को बताता है। इस ऊर्जा में चुम्बकत्व के लिए अयःशीर्षा (चुम्बकत्व शक्ति से संपन्न) शब्द मंत्र में आया है।

(क) मित्रावरुणा ... रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः। ऋग्० ८.१०१.१-२
(ख) यो वां मित्रावरुणाऽजिरो दूतो अद्रवत्।
अयःशीर्षा मदेरघुः। ऋग्० ८.१०१.३

सूर्य की किरणें पदार्थों को वर्ण (रंग, Colour) देती हैं : अथर्ववेद में वर्णन है कि सूर्य की किरणें ही संसार के सभी पदार्थों को रूप देती हैं। सूर्य की ७ रंग की किरणें ७ रंगों को देती हैं। ये ही तीन रूपों में हैं - उच्च (गहरा), मध्य (मध्यम) और निम्न (हल्का)। इस प्रकार ये किरणें ७ × ३ = २१ प्रकार की हो जाती हैं। वेद में इसको 'त्रिषप्ताः' (३ × ७ = २१) कहा गया है। इन रंगों के मिश्रण से अन्य बहुत से रंग बन जाते हैं। इस प्रकार संसार की सभी वस्तुओं को रूप-रंग देने वाला सूर्य है।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। अ० १.१.१
विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः। अ० १३.१.११

सूर्य में प्राण (Oxygen) और अपान (Hydrogen) शक्तियाँ : यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य में प्राण और अपान दोनों शक्तियाँ हैं। सूर्य हाइड्रोजन को जलाता है और उससे आक्सीजन (प्राण वायु) को देता है। सूर्य की रोचना (ऊष्मा) का रहस्य है - प्राण और अपान का निरन्तर परिवर्तन, अर्थात् प्राण से अपान, अपान से प्राण और प्राण से अपान का क्रम। सूर्य संसार को प्राण शक्ति अर्थात् आक्सीजन (Oxygen) देता है और अपान अर्थात् प्रदूषण, कार्बन डाइआक्साइड (Carbon dioxide) को समाप्त करता है।

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। यजु० ३.७

सूर्य प्रदूषण-नाशक : अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य प्रदूषण-नाशक है। वह दृष्ट (दिखाई देने वाले) और अदृष्ट (न दिखाई देने वाले) सभी प्रकार के कृमियों (प्रदूषणकारक कृमियों, Germs) को नष्ट करता है।

उत पुरस्तात् सूर्य एति, दृष्टान् च घ्नन् अदृष्टान् च,
सर्वान् च प्रमृणन् कृमीन्। अ० ५.२३.६

सूर्य वायु-मंडल का शोधक : यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य अपनी सूक्ष्म और पवित्र किरणों से सारे वायुमंडल को शुद्ध करता है।

सविता पुनातु -अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । यजु० ४.४

सूर्य जीवन-रक्षक : अथर्ववेद का कथन है कि अदिति के पुत्र सूर्य और चन्द्रमा मानवमात्र के जीवन के रक्षक हैं।

आदित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभौ । अ० ८.२.१५

सूर्य चन्द्रमा को प्रकाश देता है : यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य की सुषुम्ण नामक किरणें चन्द्रमा को प्रकाश देती हैं। चन्द्रमा में प्रकाश नहीं है, वह सूर्य की किरणों से ही प्रकाशित होता है। यही बात आचार्य यास्क ने निरुक्त में कही है कि सूर्य की किरणें चन्द्रमा को प्रकाशित करती हैं।

सुषुम्णः सूर्यरश्मिः चन्द्रमा गन्धर्व : यजु० १८.४०

अस्यैको रश्मिः चन्द्रमसं प्रति दीप्यते ।

आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति । निरुक्त २.६

सूर्य संसार का धारक और पालक : सामवेद का कथन है कि सूर्य द्युलोक को धारण करने वाला और संसार का पालक है।

धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः । साम० १८४५

सूर्य की किरणें पदार्थों को फैलाती हैं : ऋग्वेद और सामवेद में वर्णन है कि सूर्य की किरणों का गुण है - पदार्थों को फैलाना (Expansion) और उन्हें नरम बनाना या द्रवित करना (Liquefaction). ।

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवः । ऋग्० ९.६९.६ । साम० १३७०

सूर्य और पृथिवी घूमते हैं (Rotate) : यजुर्वेद का कथन है कि पृथिवी, सूर्य और उषा सदा चक्कर काटते हैं, घूमते हैं। पृथिवी सूर्य का चक्कर काटती है तो सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है। इसी प्रकार यह सारा संसार गतिशील है और घूमता है। ऋग्वेद का कथन है कि सूर्य रथ के पहिये की तरह निरन्तर घूमता है।

समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः ।

समु विश्वमिदं जगत् । यजु० २०.२३

स सूर्यः ... ववृत्याद् रथ्येव चक्रा । ऋग्० १०.८९.२

सूर्य वर्षा का कारण है : वेदों के अनेक मंत्रों में वर्णन है कि सूर्य की किरणें समुद्र से जल को भाप के रूप में ऊपर ले जाती हैं और भूमि पर वर्षा करती हैं।

(क) हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवम् उत्पतन्ति । अ० १३.३.९

(ख) अव दिवस्तारयन्ति,सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।

आपः समुद्रिया धाराः । अ० ७.१०७.१

सौर ऊर्जा (Solar Energy)

वेदों में सौर ऊर्जा से संबद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है ।

सूर्य से ऊर्जा का दोहन : ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णन है कि सूर्य से ऊर्जा का दोहन त्रित ने किया । इस त्रित में तीन देवता हैं - इन्द्र, गन्धर्व और वसु । इन्द्र ने ऊर्जा का सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त किया, गन्धर्वों ने इसका परीक्षण किया और वसुओं ने इसको मूर्तरूप दिया । वसु वे विद्वान् हैं, जो भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञ हैं । एक ने इसका ज्ञान प्राप्त किया, दूसरे ने परीक्षण द्वारा इसकी सत्यता प्रमाणित की और तीसरे वसुओं ने इसको मूर्तरूप देकर इसका प्रयोग किया । इस प्रकार सौर ऊर्जा के सफल आविष्कार का श्रेय त्रित (तीन की जोड़ी) को है - इन्द्र, गन्धर्व और वसु ।

त्रित एनम् आयुनक् , इन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्
गन्धर्वो अस्य रशनाम् अगृह्णात्, सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ।।

ऋग्० १.१६३.२ । यजु० २९.१३

अर्थ - सूरात् - सूर्य से, **अश्वम्** - अश्वशक्ति, सौर ऊर्जा को, **वसवः** - भौतिकी के विशेषज्ञों ने, **निरतष्ट** - निकाला ।

सूर्य ऊर्जा का स्रोत है : अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य समस्त ऊर्जा (Energy) का स्रोत है । वही ऊर्जा का स्वामी है । इसका अभिप्राय यह है कि हमें किसी प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता है तो सूर्य ही उसका अन्तिम आश्रय है ।

सविता प्रसवानाम् अधिपतिः । अ० ५.२४.१

अथर्ववेद में ही एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि विराट् ब्रह्म ऊर्जा के रूप में है । सबसे पहले यह ऊर्जा सूर्य को प्राप्त हुई । देवों ने उस ऊर्जा का दोहन करके सौर ऊर्जा प्राप्त की ।

तां देवः सविताधोक् , ताम् ऊर्जाम् एवाधोक् । अ० ८.१० (५).३

सूर्य से सात प्रकार की ऊर्जा प्राप्त करना : ऋग्वेद के एक मंत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सूर्य की सात प्रकार की किरणों से सात प्रकार की (सप्तपदी) ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है । इस ऊर्जा से अन्न (इष्) और शक्ति (ऊर्ज्) दोनों प्राप्त हो सकती है । इस मंत्र से स्पष्ट है कि सौर ऊर्जा का उपयोग कृषि और उद्योग दोनों के लिए हो सकता है । यदि सौर ऊर्जा से कृषि होने लगे तो देश की बहुत बड़ी समस्या हल हो जाएगी और उद्योगों में सौर ऊर्जा के प्रयोग से अद्भुत क्रान्ति हो सकेगी ।

अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः ।
सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः। ऋग्० ८.७२.१६

सौर ऊर्जा के आविष्कारक वसिष्ठ और भरद्वाज ऋषि :

ऋग्वेद का कथन है कि परमात्मा ने सूर्य में ऊर्जा का खजाना रखा है । एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि ऋषियों ने सूर्य से उस ऊर्जा (घर्म, ऊष्मा) को निकाला । सौर ऊर्जा को निकालने का श्रेय वसिष्ठ, वसिष्ठ-पुत्रों एवं भरद्वाज ऋषि के वंशजों को है । ये इन मंत्रों के ऋषि हैं । (ऋग्० १०.१८१.१ से ३)

स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति । ऋग्० २.१३.६
आ सूर्याद् अभरन् घर्ममेते । ऋग्० १०.१८१.३

सूर्य में अक्षय धन : ऋग्वेद में कहा गया है कि सूर्य और जल (नदी एवं समुद्र) में अक्षय धन विद्यमान है । सूर्य सारे संसार को भोजन देता है अर्थात् सूर्य की ऊर्जा से ही उत्तम कृषि और अन्न होता है ।

अप्सु सूर्ये महद् धनम् । ऋग्० ८.६८.९
अधारयद् हरितोर्भूरि भोजनम् ,
ययोरन्तर्हरिश्चरत् । ऋग्० ३.४४.३

सूर्य की घातक किरणें : ऋग्वेद में सूर्य की घातक किरणों (Ultra-violet Rays) से होने वाले भय का संकेत है । ये किरणें पुरुषों आदि को खा जाती हैं, अतः ये 'पुरुषाद्' हैं । इन भयंकर किरणों से सारा संसार भयभीत रहता है । इन किरणों से रक्षा की प्रार्थना की गई है । अथर्ववेद में इन किरणों को कृषि का नाशक बताया गया है ।

(क) **वयः प्र पतान् पूरुषादः ।**
अथेदं विश्वं भुवनं भयाते । ऋग्० १०.२७.२२
(ख) **अवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।** ऋग्० १०.२७.२१
(ग) **न घ्रन् तताप, न हिमो जघान ।** अथर्व० ७.१८.२

सूर्य की ७ रंग की किरणें

ऋग्वेद और अथर्ववेद में सूर्य की सात किरणों का उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्व,सप्तसप्ति आदि शब्दों से किया गया है । (ऋग्० ३.३५.२ । ४.५०.४ । ५.४५.९ । अथर्व० ६.१०५.३ । ७.१०७.१ । ८.७२.१६ । १३.३.१६) । इन सात रंग की किरणों का वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है । प्रत्येक किरण का अलग-अलग प्रभाव है । इनसे ही संसार के सभी पदार्थों को रूप-रंग प्राप्त होता है । ये ही अनेक प्रकार से विभिन्न रोगों को दूर करती हैं और इनके प्रभाव से ही कृषि की उपज घटती-बढ़ती है ।

इन सात किरणों को अंग्रेजी और हिन्दी में ये नाम दिए गए हैं। इनकी तरंग दैर्घ्य (wave-length) और आवृत्ति (Frequency) भी अलग-अलग हैं। इसकी संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है। सूत्र - V I B G Y O R, बै नी आ ह पी ना ला।

नाम	संकेत	नाम	संकेत	प्रभाव
Violet	V	बैंगनी	बै	शीतल, लाल कणों का वर्धक, क्षय रोगनाशक
Indigo	I	नीली	नी	शीतल, पित्तज रोगों का नाशक, पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	आ	शीतल, पित्तज रोगों का नाशक , ज्वरनाशक
Green	G	हरी	ह	समशीतोष्ण, वातज रोगों का नाशक रक्तशोधक
Yellow	Y	पीली	पी	उष्ण, कफज रोगों का नाशक, हृदय एवं उदररोग नाशक
Orange	O	नारंगी	ना	उष्ण, कफज रोगों का नाशक, मानसिक - शक्तिवर्धक
Red	R	लाल	ला	अति उष्ण, कफज रोगों का नाशक, उत्तेजक, केवल मालिश हेतु

मूल रंग तीन हैं : लाल, पीला, नीला। शेष रंग मिश्रण हैं। लाल और नीला से बैंगनी, नीला और सफेद से आसमानी, नीला और पीला से हरा, लाल और पीला से नांरगी।

सूर्य की सात रंग की किरणों के तीन परिवार किए जाते हैं - १. लाल, पीला, नारंगी। २. हरा । ३. नीला, आसमानी और बैंगनी।[१]

विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें (Electro-magnetic waves) :

Maxwell ने प्रकाश तरंगों को स्वरूपत: विद्युत् चुम्बकीय (Electro-magnetic) माना है। ये तरंगें बिना किसी सहारे के आकाश में विचरण कर सकती हैं। प्रकाश तरंगें एक ही हैं, परन्तु उनकी आवृत्ति (Frequency) और तरंग-दैर्घ्य (Wave-length) के आधार पर उनमें अन्तर आ जाता है। Wave-length के लिए तरंग-दैर्घ्य और Frequency के लिए आवृत्ति शब्दों का प्रयोग होता है।

---

१. सूर्यकिरण-चिकित्सा के विवरण के लिए देखें
डा० कपिलदेव द्विवेदी- कृत "वेदों में आयुर्वेद" (पृष्ठ १३९ से १४४)

विद्युत्-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम का क्रम यह है : -

(Electro-magnetic spectrum)

कॉस्मिक किरणें (Cosmic rays) - ये ब्रह्मांडीय अतिसूक्ष्म किरणें हैं ।
गामा किरणें (Gamma rays) - ये रेडियम से प्राप्त होती हैं ।
एक्सरे (X-rays) - ये धातुओं को भी पार कर जाती हैं ।
पराबैंगनी किरणें (Ultra-violet rays) - ये अदृश्य किरणें हैं ।

दृश्य किरणें (Visible Light)

बैंगनी (Violet) नीली (Indigo) आसमानी (Blue) हरी (Green) पीली (Yellow) नारंगी (Orange) रक्त, लाल (Red)	(क) (ख)	दृश्य किरणों का तरंग दैर्ध्य (Wave-length) $१०^{६}$ से $१०^{७}$ मीटर है अर्थात् प्रति सेकेण्ड १/१ लाख से १/१० लाख मीटर । इनकी आवृत्ति (Frequency) है -$१०^{११}$ से $१०^{१३}$ किलोहर्ट्स (Kilohertz) है अर्थात् प्रति सेकेण्ड १० अरब से १० खरब हर्ट्स । एक हर्ट्स = एक चक्र (Circle) ।

अवरक्त किरणें (Infra-red radiation) - ये अदृश्य हैं ।
सूक्ष्म तरंगे (Micro- waves) - ये अदृश्य हैं ।
रेडियो तरंगे (Radio- waves) - ये अदृश्य हैं ।

दृश्य किरणों से ऊपर और नीचे वाली किरणें अदृश्य हैं । तरंग दैर्घ्य और आवृत्ति की दृष्टि से नीचे से ऊपर वाली किरणें क्रमश: अधिक प्रभाव वाली हैं । कॉस्मिक किरणों का अभी तक पूरा पता नहीं लगा है । अत: उनका विश्लेषण भी पूरा नहीं हो सका है ।

विद्युत् और अशनि : आचार्य वराहमिहिर (४७६ ई०) ने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता में विद्युत् और अशनि में अन्तर स्पष्ट किया है । **(क) विद्युत् या बिजली गिरना :** जो तर-तर (तट-तट) शब्द करती हुई, कुटिल और विशाल शरीर वाली, प्राणियों या काष्ठ-समूह पर प्रज्वलित होकर शीघ्र गिरती है, उसे विद्युत् कहते हैं । **(ख) अशनि या वज्रपात :** जो अधिक शब्द करती हुई, चक्र की तरह घूमती हुई, पशु-पक्षी वृक्ष और गृह आदि पर गिरती है तथा भूमि को फाड़ती हुई नीचे चली जाती है, उसे अशनि कहते हैं ।

(क) **विद्युत् .. तटतटस्वना सहसा ।**
कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ।।

(ख) **अशनिः स्वनेन महता०**
निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना ।।

बृहत्संहिता, अध्याय ३३, श्लोक ४ और ५

इन्द्रधनुष का निर्माण : आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में इन्द्रधनुष के निर्माण की प्रक्रिया दी है कि किस प्रकार सूर्य की सात रंग की किरणें इन्द्रधनुष बनाती हैं । वराहमिहिर का कथन है कि -सूर्य की विविध रंग वाली किरणें जब मेघयुक्त आकाश में वायु से टकराकर छिटकती हैं, तब धनुष का रूप धारण करती हैं । इसे इन्द्रधनुष कहते हैं ।

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे ।
वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ।।

बृहत्संहिता, अध्याय ३५ श्लोक १

सूर्य, चन्द्र का परिवेष (घेरा) बनना : सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर मंडलाकार जो घेरा बनता है, उसे परिवेष कहते हैं । यह कैसे बनता है, इसकी प्रक्रिया बताई है कि सूर्य और चन्द्रमा की किरणें हलके मेघयुक्त आकाश में वायु के प्रवेश के कारण छिटककर मंडलाकार (गोल घेरें के रूप में) और नाना वर्ण (रंगबिरंगी) दिखाई पड़ती हैं, इसी को परिवेष कहते हैं ।

संमूर्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः ।
नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ।।

बृहत्संहिता, अध्याय ३४ श्लोक १

प्रकाश की गति (Velocity of Light)

सूर्य-विषयक ऋग्वेद में एक मंत्र 'तरणिर्विश्वदर्शतः०' (ऋग्० १.५०.४) की व्याख्या में आचार्य सायण ने एक प्राचीन आचार्य का वचन उद्धृत किया है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । सायण ने लिखा है :-

तथा च स्मर्यते -
योजनानां सहस्रे द्वे, द्वे शते द्वे च योजने ।
एकेन निमिषार्धेन , क्रममाण नमोऽस्तु ते ।।

सायण, ऋग्वेद १.५०.४ मंत्र की व्याख्या

अर्थात् हे सूर्य, तुम्हारी गति आधे निमेष (पलक मारना) में दो हजार दो सौ दो (२२०२) योजन है । सूर्य की किरणों कि गति कितनी तीव्र है, निमेष क्या है,

तथा योजन से क्या अभिप्राय है, इसके स्पष्टीकरण के लिए महाभारत से कुछ सहायता मिलती है। काल के ज्ञान के लिए महाभारत का निम्नलिखित श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण है।

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव,
त्रिंशत् तु काष्ठा गणयेत् कलां ताम्।
त्रिंशत् कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तो
भागः कलाया दशमश्च यः स्यात्।
त्रिंशन्मुहूर्तं तु भवेदहश्च।

महा० शान्तिपर्व अध्याय २३१ श्लोक १२ और १३

अर्थात् कालविभाग इस प्रकार है - १५ निमेष की १ काष्ठा, ३० काष्ठा की १ कला, ३० कला और ३ काष्ठा का १ मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्त का एक दिन-रात होता है।

गणना -

(क)	१ दिन-रात	-	२४ घंटे
	२४ घंटे	-	३० मुहूर्त
(ख)	१ मुहूर्त	-	४० मिनट
	१ मुहूर्त	-	३० १/३० कला
(ग)	१ कला	-	लगभग सवा मिनट (१.३३ मिनट या ८० सेकेण्ड)
	१ कला	-	३० काष्ठा
(घ)	१ काष्ठा	-	लगभग २.७ सेकेण्ड
	१ काष्ठा	-	१५ निमेष
(ङ)	१ निमेष	-	लगभग २ सेकेण्ड से कुछ कम या सेकेण्ड का पाचवाँ भाग
	आधा निमेष	-	८/७५ (या सेकेण्ड का दसवाँ भाग)

भारत सरकार के एक प्रकाशन के अनुसार १ योजन = ९ मील ११० गज या ९ १/१६ मील या ९.०६२५ मील। योजन का यह नाप मानने पर प्रकाश की गति १,८७,०८४.१ अर्थात् लगभग १ लाख, ८७ हजार मील प्रति सेकेण्ड होती है। माइकेलसन (Michelson) ने प्रकाश की गति प्रति सेकेण्ड १,८७,३७२.५ मील मानी है।

सर मोनियर विलियम (Sir Monier Williams) ने अपनी संस्कृत-इंग्लिश् डिक्शनरी में तथा वी०एस० आप्टे ने अपने संस्कृत-इंग्लिश् कोष में योजन

का नाप ९ मील माना है । इसके अनुसार गणना करने पर प्रकाश की गति १,८६,४१३.२२ मील प्रति सेकेण्ड अर्थात् एक लाख छियासी हजार मील से कुछ अधिक आती है ।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश की गति प्रति सेकेण्ड १,८६,२८१ मील मानी जाती है । इसको प्रचलित ढंग से प्रति सेकेण्ड एक लाख छियासी हजार मील ही कहा जाता है । सायण का समय १५वीं शताब्दी ई० है । उसने भी प्राचीन आचार्य का वचन उद्धृत किया है । इससे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि भारतीय आचार्यों को प्रकाश की गति का स्पष्ट ज्ञान १५वीं शताब्दी से बहुत पहले से था । प्राचीन ऋषियों का इस प्रकार ज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है । पाश्चात्य विद्वानों ने २०वीं शती में प्रकाश की गति का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त किया है । प्राचीन आचार्यों की गणना और वर्तमान वैज्ञानिकों की गणना में प्राय: पूरा साम्य है ।

पृथ्वी से सूर्य की दूरी लगभग ९ करोड़ १४ लाख ६ हजार मील या १४ करोड़ ९६ लाख किलोमीटर है । अत: सूर्य की किरणें लगभग ८ मिनट १० सेकेण्ड में पृथिवी पर आती हैं ।

गणना :

सूर्य की किरणें

१ सेकेण्ड में	-	१लाख ८६ हजार मील
१ मिनट में	-	१ करोड़ ११ लाख ६० हजार मील
८ मिनट में	-	८ करोड़ ९२ लाख ८० हजार मील
शेष १० सेकेण्ड में	-	२२ लाख मील

इस प्रकार ८ मिनट १० सेकेण्ड में सूर्य की किरणें पृथिवी पर आती हैं ।

सूर्य न उदय होता है, न अस्त होता है : ब्राह्मण ग्रन्थों में सूर्य के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं । ऐतरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में वर्णन किया गया है कि सूर्य न कभी उदय होता है और न कभी अस्त होता है । सूर्य अपने स्थान पर रुका हुआ है, पृथिवी उसका चक्कर काटती है, इसी आधार पर दिन के अन्त को सूर्यास्त और रात्रि के अन्त को सूर्योदय कहा जाता है । व्यावहारिक दृष्टिकोण से ऐसा कहा जाता है, शास्त्रीय दृष्टि से नहीं ।

(क) **स वा एष (आदित्य:) न कदाचनास्तमेति, नोदेति ।** ऐत० ३.४४

(ख) **स वा एष (आदित्य:) न: कदाचनास्तमयति नोदयति ।**

गो० उत्तर० ४.१०

सूर्य सात हैं : तांड्य ब्राह्मण में उल्लेख है कि आदित्य (सूर्य) सात हैं । यह संभवत: सात महासूर्यों का उल्लेख है । ये महान् सात सौरमंडल ज्ञात होते हैं ।

सप्त-आदित्या: । तां० २३.१५.३

सूर्य रश्मियाँ हजारों हैं : ब्राह्मण ग्रन्थों में सूर्य की किरणों का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि सूर्य की किरणें १००,३६० या १ सहस्र हैं । यह सूर्य की किरणों का सूक्ष्म विश्लेषण है । शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि सूर्य एक सौ प्रकार का है, अत: उसकी किरणें १०० प्रकार की हैं । शतपथ में अन्यत्र ३६० सूर्यकिरणों का उल्लेख है । जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में सूर्य की किरणों की संख्या एक हजार दी है । ऋग्वेद में भी ऐसा ही वर्णन है ।

(क) स एष (आदित्य:) एकशतविध:, तस्य रश्मय: शतं विधा: ।
शतपथ ब्रा० १०.२.४.३

(ख) षष्टिश्च ह वै त्रीणि शतानि - आदित्यस्य रश्मय: ।
शतपथ ब्रा० १०.५.४.४

(ग) सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मय: । जै० उप० १.४४.५

(घ) हरय: शता दश । ऋग्० ६.४७.१८

सूर्य-ग्रहण : ऋग्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में सूर्य-ग्रहण का कई स्थानों पर वर्णन है । ऋग्वेद का कथन है कि स्वर्भानु (राहु) सूर्य को अपने अन्धकार से ढक लेता है । पृथ्वी और सूर्य के बीच में चन्द्रमा के आ जाने के कारण यह सूर्यग्रहण होता है ।

(क) यत् त्वा सूर्य स्वर्भानु: तमसाविध्यदासुर: । ऋग्० ५.४०.५

(ख) स्वर्भानुर्वा आसुरि: सूर्यं तमसाविध्यत् । गोपथ उ० ३.१९

यही भाव ऋग्वेद (५.४०.६ और ९) में भी दिया गया है कि पृथ्वी और सूर्य के बीच में चन्द्रमा के आ जाने से सूर्यग्रहण होता है ।

आकर्षण-शक्ति (Magnetism)

वेदों में सूर्य की आकर्षण शक्ति का अनेक मंत्रों में उल्लेख है ।

सूर्य द्युलोक का धारक : ऋग्वेद में वर्णन है कि सूर्य ने अवलंबन- रहित स्थान में द्युलोक को अपने आकर्षण (Magnetic Power) से रोका हुआ है । सूर्य के आकर्षण के कारण ही द्युलोक रुका हुआ है । आकाश में कहीं कोई अवलंबन नहीं है । द्युलोक के सभी नक्षत्र आदि सूर्य की आकर्षण शक्ति से रुके हुए हैं ।

(क) सूर्येण उत्तभिता द्यौ: । ऋग्० १०.८५.१

(ख) अस्कम्भने सविता द्याम् अदृंहत् । ऋग्० १०.१४९.१

सूर्य पृथिवी को रोके हुए है : ऋग्वेद में वर्णन है कि सूर्य ने अपनी आकर्षण शक्ति सें पृथिवी को रोका हुआ है । अतएव पृथिवी गिरने नहीं पाती । मंत्र में आकर्षण शक्ति के लिए 'यन्त्र' शब्द है । यन्त्र शब्द का अर्थ है - नियंत्रण करने वाली शक्ति ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीम् - अरम्णात् । ऋग्० १०.१४९.१

यजुर्वेद में इसी बात को और स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि सूर्य ने अपनी किरणों से, अर्थात् अपनी किरणों की आकर्षण शक्ति से, पृथिवी को चारों ओर से रोका हुआ है । इतना ही नहीं, अपितु पूरे द्यावापृथिवी को उसने अपनी आकर्षण शक्ति से रोका हुआ है ।

व्यस्कम्ना रोदसी विष्णवेते,
दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः । यजु० ५.१६

ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में भी उल्लेख है कि सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से भूमि को रोके हुए है ।

चकृषे भूमिम् । ऋग्० १.५२.१२

आकर्षण शक्ति से नक्षत्र आदि रुके हैं : ऋग्वेद के एक मंत्र में स्पष्ट संकेत है कि सभी नक्षत्रों आदि में अपनी-अपनी आकर्षण शक्ति है । अतएव कहा गया है कि देवों ने द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और नक्षत्रों आदि को आकर्षण शक्ति से रोका हुआ है । मंत्र में आकर्षण शक्ति के लिए ओजस् (तेज, Magnetic Power) शब्द दिया गया है ।

स्वर्णरम् अन्तरिक्षाणि रोचना,
द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा । ऋग्० १०.६५.४

परमाणुओं में आकर्षण शक्ति है : प्रत्येक परमाणु में आकर्षण शक्ति है, अतः प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणु को अपनी ओर आकृष्ट करता है । ऋग्वेद में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि परमाणुओं में आकर्षण शक्ति है, अतः प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणु को सदा आकृष्ट करता है ।

एको अन्यत् - चकृषे विश्वम् आनुषक् । ऋग्० १.५२.१४

शब्दार्थ : एकः - प्रत्येक परमाणु, **अन्यत् विश्वम्** - अन्य सभी परमाणुओं को, **आनुषक्** - निरन्तर, **चकृषे** - अपनी ओर खींचता है ।

विविध

द्रव्य और ऊर्जा का रूपान्तरण (Conservation of Mass and Energy) : प्रो० आइनस्टाइन (Einstein) ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है

कि द्रव्य (Mass) और ऊर्जा (Energy) में से कोई भी चीज न नष्ट की जा सकती है और न उत्पन्न की जा सकती है । केवल इनका रूपान्तरण होता है । ऊर्जा द्रव्य में परिवर्तित होती है और द्रव्य ऊर्जा में । इसके लिए उन्होंने सूत्र दिया है --

$$E = mc^2$$

इसमें E ऊर्जा (Energy) के लिए है, M - Mass या द्रव्य के लिए है । C - Speed of light .अर्थात् प्रकाश की गति के लिए है ।

ऋग्वेद के एक मंत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि अदिति (अनश्वर प्रकृति, द्रव्य, Mass, Matter) से दक्ष (ऊर्जा, Energy) उत्पन्न होती है तथा दक्ष (ऊर्जा, Energy) से अदिति (Mass, Matter) । इसका अभिप्राय यह है कि ऊर्जा और द्रव्य परस्पर रूपान्तरित हो सकते हैं, अर्थात् ऊर्जा से द्रव्य और द्रव्य से ऊर्जा ।

अदितेर्दक्षो अजायत, दक्षाद् उ - अदितिः परि । ऋग्० १०.७२.४

सोम (Hydrogen) का महत्त्व : ऋग्वेद और यजुर्वेद में सोम (Hydrogen) का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है । सोम ही सर्वत्र जीवन शक्ति का काम करता है ।

सूर्य की शक्ति का आधार सोम (Hydrogen) : ऋग्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि सूर्य की शक्ति का आधार सोम है । सोम से ही सूर्य में शक्ति है । यजुर्वेद में सोम शब्द के स्थान पर 'अपां रसः' (जल का सारभाग) का प्रयोग है ।

सोमेन - आदित्या बलिनः । ऋग्० १०.८५.२ । अ० १४.१.२

अपां रसम् उद्वयसं सूर्ये सन्तं समाहितम् । यजु० ९.३

नक्षत्रों का आधार सोम (Hydrogen) : अथर्ववेद का कथन है कि नक्षत्रों के सोम विद्यमान है । उसके कारण ही नक्षत्रों में प्रकाश विद्यमान है । इसका अभिप्राय यह है कि प्रकाश या ज्योति के लिए सोम आवश्यक है । सोम के प्रज्वलन से अग्नि या ज्योति उत्पन्न होती है ।

अथो नक्षत्राणाम् एषाम् उपस्थे सोम आहितः । अ० १४.१.२

पृथिवी की शक्ति का स्रोत सोम : अथर्ववेद में ही वर्णन है कि पृथिवी के विस्तार और ऊर्जा का श्रेय सोम (जलीय तत्त्व, Hydrogen) को है । वृक्ष-वनस्पतियों एवं मनुष्य के जीवन का स्रोत सोम या जलीय तत्त्व है ।

सोमेन पृथिवी मही । अ० १४.१.२

द्युलोक में सोम की महिमा : सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रों आदि की स्थिति का आधार सोम (Hydrogen) है । ऋग्वेद और अथर्ववेद का कथन है कि कि पूरे द्युलोक में सोम व्याप्त है ।

दिवि सोमो अधिश्रितः । ऋग्० १०.८५.१ । अ० १४.१.१

अग्नि और सोम से विश्व की रचना : वेदों और उपनिषदों में अग्नि + सोम= जगत् , इस प्रक्रिया को स्वीकार किया गया है । प्रत्येक परमाणु (Atom) में ३ तत्त्व होते हैं । १. धनात्मक (Positive) , २. ऋणात्मक (Negative) ३. उदासीन (Neutral) । इन्हें हम वैज्ञानिक भाषा में Proton (प्रोटॉन), Electron (इलेक्ट्रॉन) और Neutron (न्यूट्रॉन) कहते हैं । बृहत् जाबाल उपनिषद् में अग्नीषोम का विस्तृत विवरण दिया गया है । धनात्मक अग्नितत्त्व प्रेरक, संचालक और गतिदाता है । यह ऊर्जा देकर प्रेरणा देता है । सोम ऋणात्मक तत्त्व है, अतएव Electron में गतिशीलता है । अग्नि या ऊर्जा के प्रभाव से सोम में सक्रियता आती है । इसी से सृष्टि-प्रक्रिया प्रारम्भ होती है । Neutron या Neutral स्थिति-स्थापक या आधार का काम करता है । सोमतत्त्व के बिना सृष्टि-प्रक्रिया का प्रारम्भ होना असंभव है । उपनिषद् का कथन है कि सूर्य और अग्नि धनात्मक (Positive) हैं तथा सोम और वायु ऋणात्मक (Negative) हैं । धनात्मक को तेज और ऋणात्मक को रस नाम भी दिया गया है । इस प्रकार तेज और रस के मेल से यह संसार बनता है ।

अग्नीषोमात्मकं विश्वम् । बृ०जा०उप० २.१
अग्नीषोमात्मकं जगत् । बृ०जा० २.४
तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतत् चराचरम् । बृ०जा० २.३

पृथिवी

वेदों में पृथिवी के संबन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य दिए गए हैं । उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है ।

पृथिवी का केन्द्र-बिन्दु सूर्य (आकाश) : अथर्ववेद में वर्णन है कि पृथ्वी का केन्द्र-बिन्दु (हृदय) आकाश में है , अर्थात् आकाशस्थ सूर्य पृथिवी का केन्द्र है, जिससे वह ऊर्जा प्राप्त करती है ।

यस्या हृदयं परमे व्योमन् । अ० १२.१.८

पृथिवी की उत्पत्ति सूर्य से : अथर्ववेद के ११ मंत्रों में उल्लेख है कि पृथिवी बाहुच्युता है अर्थात् हाथ से दी गई वस्तु के तुल्य सूर्य के हाथ से दी गई वस्तु है और अपनी सुरक्षा के लिए ऊपर विद्यमान द्युलोक (सूर्य) का आश्रय लेती है ।

बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । अथर्व० १८.३.२५. से ३५

ऋग्वेद के एक मंत्र में भी यही भाव दिया गया है कि वरुण ने सूर्य से पृथिवी को बनाया ।

वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण । ऋग्० ५.८५.५

पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है : चारों वेदों में एक मंत्र आया है, जिसमें संकेत है कि पृथिवी परिक्रमा करती है । मंत्र का कथन है कि यह पृथिवी घूमती है । अपनी माता (अन्तरिक्ष) के सामने रहते हुए सूर्यरूपी पिता की परिक्रमा करती है । ऋग्वेद के एक मंत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि पृथिवी (क्ष) सूर्य (शुष्ण) की प्रदक्षिणा करती है ।

(क) आयं गौः पृश्निरक्रमीद् , असदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन् स्वः ।
ऋग्० १०.१८९.१। यजु० ३.६१ अथर्व० । ६.३१.१ । साम० ६३०

(ख) क्षाः .... शुष्णं परि प्रदक्षिणित् । ऋग्० १०.२२.१४

सूर्य के आकर्षण से पृथिवी रुकी है : ऋग्वेद का कथन है कि सूर्य ने अपनी आकर्षण शक्ति (यन्त्र) से पृथिवी को रोका हुआ है ।

दाधर्थ पृथिवीम् अभितो मयूखैः । ऋग्० ७.९९.३
सविता यन्त्रैः पृथिवीम् अरम्णात् । ऋग्० १०.१४९.१

पृथिवी काँपते हुए चलती है : अथर्ववेद में वर्णन है कि पृथिवी काँपते हुए चलती है । इसका अभिप्राय यह है कि यह लट्टू की तरह काँपते हुए परिक्रमा करती है । इससे सूर्य की परिक्रमा करने का संकेत है ।

याऽप सर्पं विजमाना विमृग्वरी । अ० १२.१.३७

मंत्र में विजमाना का अर्थ है - काँपते हुए । अप सर्पम् का अर्थ है - सर्प (साँप) की तरह रेंगते हुए चलना ।

पृथिवी पहले जलमग्न थी : अथर्ववेद में उल्लेख है कि पृथिवी पहले समुद्र में डूबी हुई थी और धीरे-धीरे जल से बाहर हुई । आधुनिक वैज्ञानिकों का भी मत है कि पहले पूरा यूरोप और एशिया जलमग्न था, धीरे-धीरे समुद्र हटता गया और पृथिवी ऊपर आई ।

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीत् । अ० १२.१.८

पृथिवी रत्नगर्भा : अथर्ववेद का कथन है कि पृथिवी में मणि, सुवर्ण और अक्षय धन है । पृथिवी के गर्भ में खजाना है ।

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
अथर्व० १२.१.४४

पृथिवी की गति पश्चिम से पूर्व की ओर : ऋग्वेद के एक मंत्र में संकेत है कि पृथिवी पश्चिम से पूर्व की ओर जाती है । सूर्य के लिए कहा गया है कि वह पृथिवी की पूर्व दिशा को पकड़ता है, अर्थात् पृथिवी की गति पश्चिम से पूर्व की ओर

है, अत: सूर्य पहले पृथिवी के पूर्व भाग को पकड़ता है ।

दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः । ऋग्० ७.९९.२

गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त (Law of Gravitation)

आधारशक्ति : बृहत् जाबाल उपनिषद् में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त को 'आधारशक्ति नाम से कहा गया है । इसके दो भाग किए गए हैं - **१. ऊर्ध्वशक्ति या ऊर्ध्वग :** ऊपर की ओर खिंचकर जाना, जैसे - अग्नि का ऊपर की ओर जाना । **२. अध:शक्ति या निम्नग :** नीचे की ओर खिंचकर जाना , जैसे - जल का नीचे की ओर जाना या पत्थर आदि का नीचे आना । उपनिषद् का कथन है कि यह सारा संसार अग्नि और सोम का समन्वय है । अग्नि की ऊर्ध्वगति है और सोम की अधो:शक्ति । इन दोनों शक्तियों के आकर्षण से ही यह संसार रुका हुआ है ।

(क) अग्नीषोमात्मकं जगत् । बृ०जा०उप० २.४

(ख) आधारशक्त्यावधृतः, कालाग्निरयम् ऊर्ध्वगः ।
तथैव निम्नगः सोमः । बृ०जा०उप० २.८

महर्षि पतंजलि (१५० ई०पूर्व) ने व्याकरण महाभाष्य में इस गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए पृथिवी की आकर्षण शक्ति का वर्णन किया है कि - यदि मिट्टी का ढेला ऊपर फेंका जाता है तो वह बाहुवेग को पूरा करने पर, न टेढ़ा जाता है और न ऊपर चढ़ता है । वह पृथिवी का विकार है, इसलिए पृथिवी पर ही आ जाता है ।

लोष्ठः क्षिप्तो बाहुवेगं गत्वा नैव तिर्यग् गच्छति,
नोर्ध्वमारोहति । पृथिवीविकारः पृथिवीमेव गच्छति, आन्तर्यतः ।

महाभाष्य (स्थानेऽन्तरतमः, १.१.४९ सूत्र पर)

आकृष्टिशक्ति : भास्कराचार्य द्वितीय (१११४ ई०) ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में गुरुत्वाकर्षण के लिए आकृष्टिशक्ति शब्द का प्रयोग किया है । भास्कराचार्य का कथन है कि पृथिवी में आकर्षण शक्ति है, अत: वह ऊपर की भारी वस्तु को अपनी ओर खींच लेती है । वह वस्तु पृथिवी पर गिरती हुई सी लगती है । पृथिवी स्वयं सूर्य आदि के आकर्षण से रुकी हुई है, अत: वह निराधार आकाश में स्थित है तथा अपने स्थान से नहीं हटती और न गिरती है । वह अपनी कीली पर घूमती है ।

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्
खस्थं गुरुं स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।
आकृष्यते तत् पततीव भाति
समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे ।। सिद्धान्त० भुवन० १६

वराहमिहिर (४७६ ई०) ने अपने ग्रन्थ पंचसिद्धान्तिका और श्रीपति (१०३९ ई०) ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशेखर में यही भाव प्रकट किया है कि तारासमूहरूपी पंजर में गोल पृथिवी इसी प्रकार रुकी हुई है, जैसे दो बड़े चुम्बकों के बीच में लोहा।

पंचमहाभूतमयस्तारा - गण-पंजरे महीगोलः ।
खेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः ।। पंच० पृ० ३१

आचार्य श्रीपति का कहना है कि पृथिवी की अन्तरिक्ष में स्थिति उसी प्रकार स्वाभाविक है, जैसे सूर्य में गर्मी, चन्द्र में शीतलता और वायु में गतिशीलता। दो बड़े चुम्बकों के बीच में जैसे लोहे का गोला स्थिर रहता है, उसी प्रकार पृथिवी भी अपनी धुरी पर रुकी हुई है।

(क) **उष्णत्वमर्कशिखिनोः शिशिरत्वमिन्दौ, ..**
निर्हेतुरेवमवनेः स्थितिरन्तरिक्षे ।। सिद्धान्त० १५.२१

(ख) **नभस्ययस्कान्तमहामणीनां मध्ये स्थितो लोहगुणो यथास्ते ।**
आधारशून्योऽपि तथैव सर्वाधारो धरित्र्या ध्रुवमेव गोलः ।।
सिद्धान्त० १५.२२

पिप्पलाद ऋषि (लगभग ४००० वर्ष ई०पूर्व) ने प्रश्न-उपनिषद् में पृथिवी में आकर्षण शक्ति का उल्लेख किया है। अतएव अपान वायु के द्वारा मल-मूत्र शरीर से नीचे की ओर जाता है। आचार्य शंकर (७००-८०० ई०) ने प्रश्नोपनिषद् के भाष्य में कहा है कि पृथिवी की आकर्षण शक्ति के द्वारा ही अपान वायु मनुष्य को रोके हुए है, अन्यथा वह आकाश में उड़ जाता।

(क) **पायूपस्थे - अपानम् ।** प्रश्न उप० ३.५
(ख) **पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्य० ।** प्रश्न० ३.८
(ग) **तथा पृथिव्याम् अभिमानिनी या देवता .. सैषा पुरुषस्य अपान-वृत्तिम् आकृष्य .. अपकर्षणेन अनुग्रहं कुर्वती वर्तते । अन्यथा हि शरीरं गुरुत्वात् पतेत् सावकाशे वा उद्गच्छेत् ।**
शांकर भाष्य, प्रश्न० ३.८

इससे स्पष्ट है कि पृथिवी के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त भारतीयों को हजारों वर्ष पूर्व से ज्ञात था।

ज्वार-भाटा (Flood-tide and ebb-tide)

ऋग्वेद में उल्लेख है कि चन्द्रमा के आकर्षण के कारण समुद्र में ज्वार आता है। समुद्री जल के चढ़ाव को ज्वार (Tide) और उतार को भाटा (Ebb) कहते हैं। ज्वार-भाटा का मूल कारण गुरुत्वाकर्षण है। संसार का प्रत्येक पदार्थ दूसरे

पदार्थ को अपनी ओर आकृष्ट करता है । प्रत्येक परमाणु (Atom) में आकर्षण शक्ति है, अत: वह दूसरे परमाणु को अपनी ओर आकृष्ट करता है । इसी नियम के अनुसार पृथिवी, सूर्य और चन्द्रमा तीनों एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते हैं । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ऋग्वेद में किया गया कि संसार में प्रत्येक पदार्थ सदा एक-दूसरे को आकृष्ट करता रहता है ।

एको अन्यत्-चकृषे विश्वम् आनुषक् । ऋग्० १.५२.१४

इसी नियम के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा दोनों पृथिवी को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं । जल तरल है, अत: वह अधिक प्रभावित होता है । अतएव विशेषरूप से पूर्णिमा के दिन समुद्र का जल अधिक ऊपर की ओर चढ़ता है । इसे ज्वार कहते हैं । कुछ समय बाद वह उतरने लगता है । उसे भाटा कहते हैं ।

ऋग्वेद में वर्णन है कि सूर्य समुद्र की लहरों के ऊपर की ओर प्रेरित करता है । **नभोजाः वेनः** - आकाशस्थ सूर्य, **समुद्राद्** - समुद्र से , **ऊर्मिम्** - लहरों को, **उद् इयर्ति** - ऊपर की ओर ले जाता है, ऊपर जाने के लिए प्रेरित करता है ।

समुद्रादूर्मिम् उदियर्ति वेनो नभोजाः । ऋग्० १०.१२३.२

ऋग्वेद में सोम (चन्द्र) देवता वाले एक मंत्र में समुद्र की लहरों के ऊपर उठने का वर्णन है । विद्वान् परमात्मा की ओर उसी प्रकार भक्तिभाव से उठते हैं, जैसे चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र की लहरें ।

प्र सोमासो विपश्चितो - अपां न यन्ति - ऊर्मयः । ऋग्० ९.३३.१

वायु (Atmosphere)

हमारी पृथिवी के चारों ओर जो गैस-युक्त वायुमंडल व्याप्त है, उसे वातावरण (Atmosphere) कहते हैं । वायुमंडल में निम्नलिखित गैसें विद्यमान हैं : -

नाइट्रोजन (Nitrogen)	:	७८.०८ प्रतिशत
आक्सीजन (Oxygen)	:	२०.९५ प्रतिशत
आर्गन (Argon)	:	०.९३ प्रतिशत
कार्बन डाई आक्साइड (Carbon di-Oxide)	:	०.०३ प्रतिशत
नीयन (Neon)	:	०.००१८ प्रतिशत
हीलियम (Helium)	:	०.०००५ प्रतिशत
क्रिप्टन (Krypton)	:	०.०००१ प्रतिशत
ज़ीनन (Xenon)	:	०.००००१ प्रतिशत

इसके अतिरिक्त वायुमंडल में भाप के कण, धूल के कण आदि विद्यमान रहते हैं । उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वायु में मुख्यरूप से नाइट्रोजन और आक्सीजन गैसें विद्यमान हैं ।

वायु में प्राणशक्ति (Oxygen) : ऋग्वेद में वायु देवता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसमें प्राणशक्ति है, अमृत का खजाना है । वायु में प्राणशक्ति **(Oxygen)** है, 'अत: वह ओषधि का काम करता है । हृदय के रोगों को दूर करता है, दीर्घायु प्रदान करता है । प्राणशक्ति के कारण ही वह हमारा पिता, भाई और मित्र है । वह जीवन शक्ति प्रदान करता है । (ऋग्० १०.१८६.१-३) ।

यददो वात ते गृहे - अमृतस्य निधिर्हितः ।
ततो नो देहि जीवसे ।। ऋग्० १०.१८६.३

वायु में नियुत् शक्ति (Nitrogen) : ऋग्वेद और यजुर्वेद में नाइट्रोजन (Nitrogen) का वर्णन् नियुत् शब्द के द्वारा किया गया है । अतएव वायु को अनेक मंत्रों 'नियुत्वान्' कहा गया है । नाइट्रोजन गैस को वायु के वाहक नियुत्-शक्ति (अश्व) के रूप में वर्णन किया गया है । नाइट्रोजन को नियुत् इसलिए कहा गया है कि वह नि-निश्चित रूप से, युत् -वायु के साथ रहता है । तैत्तिरीय संहिता में स्पष्ट रूप से नियुत्वत् शब्द से वायु का ही उल्लेख है । वायु में नाइट्रोजन मुख्य रूप से है, अत: उसे नियुत्वान् कहते हैं । वायु में नाइट्रोजन मुख्य रूप से है, अत: नियुत् शक्ति को सैकड़ों और हजारों शक्ति से युक्त कहा गया है । (ऋग्० १.१३५.१ से ८ । यजु० २७.२८ से ३४)

(क) **नियुत्वान् वायो- आ गहि ।** यजु० २७.२९
(ख) **आ नो नियुद्‌भिः शतिनीभिः ..सहस्त्रिणीभिः ।** यजु० २७.२८
(ग) **नियुत्वत्या यजति (नियुत्वद्‌देवताकः वायुः)** तैत्ति०सं० २.६.२.३
(घ) **सहस्रेण नियुता नियुत्वते०।** ऋग्० १.१३५.१

मरुत्-गण (Electro-magnetic Waves)

वेदों में मरुत् देवों का बहुत अधिक महत्त्व वर्णन किया गया है । इन्हें वर्षा का कारण, बादलों का स्वामी, अन्न-जल का दाता तथा संसार का नियामक तक बताया गया है । (अथर्व० ४.२७. १ से ७)

मरुतों में चुम्बकीय शक्ति (Magnetic Power) : ऋग्वेद में वर्णन है कि मरुतों में चुम्बकीय शक्ति है और उनसे शक्ति का विकिरण (Radiation) होता है । चुम्बकीय शक्ति के लिए मरुतों को 'अयोदंष्ट्र' कहा गया है, अर्थात् उनके अन्दर अयस् (चुम्बक शक्ति) है । विकिरण के लिए 'विधावतः' कहा गया है , अर्थात् उनकी शक्ति चारों ओर दौड़ती या फैलती है ।

मरुतः .. अयोदंष्ट्रान् विधावतः ० । ऋग्० १.८८.५

मरुत् विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करते हैं : (Electro-magnetic field) : ऋग्वेद में वर्णन है कि मरुत्-देवगण के पास विद्युत् (Electricity) है। ये पक्षी की तरह अन्तरिक्ष में विचरण करते हैं। इनमें बहुत शक्ति है (सुमाया:)। इनमें चुम्बकीय शक्ति है (तविषी)। ये अपनी शक्ति से चलते हैं अर्थात् इनके लिए कोई आधार नहीं चाहिए (स्वसृत्)। मरुत्-गण युवकों की तरह शक्तिशाली हैं। इनकी गति बहुत तीव्र है। ये विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करते हैं।

(क) **आ विद्युन्मद्भिर् - मरुतः स्वर्काः।**
वयो न पप्तता सुमायाः। ऋग्० १.८८.१

(ख) **स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणः।**
अया ईशानस्तविषीभिरावृतः। ऋग्० १.८७.४

आधुनिक विज्ञान के अनुसार विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण (Electro-magnetic radiation) में विद्युत् और चुम्बकीय शक्ति का समन्वय होता है। इस विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण के लिए आधाररूप में कोई माध्यम नहीं चाहिए। यह निराधार आकाश में निर्विघ्न गति करती है। इसकी गति १ लाख ८६ हजार २८२ मील प्रति सेकेण्ड है। इसी विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के माध्यम से प्रकाश-तरंगें, रेडियो तरंगें आदि गति करती हैं। वेदों के अनुसार विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र तैयार करने का काम मरुत्-देवों का है।

विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र ईशान-कोण : ऋग्वेद के एक मंत्र में 'ईशानकृतः' शब्द से संकेत है कि मरुतों द्वारा उत्पादित विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा ईशान कोण (पूर्व और उत्तर के मध्य की दिशा) है। पूर्व और उत्तर दिशा ऊर्जा की धनात्मक (Positive) दिशा मानी जाती है तथा पश्चिम और दक्षिण दिशा ऋणात्मक (Nagative) दिशा मानी जाती है। एक मंत्र में मरुतों की शक्ति का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मरुत् सूर्य की तरह तेजोमय और शक्तिशाली हैं। ये ऊर्जा के कण फैलाते हैं। ये द्रप्स अर्थात् वीर्य या ऊर्जा के कण देते हैं।

(क) **ईशानकृतो धुनयो रिशादसः।** ऋग्० १.६४.५

(ख) **पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनः।** ऋग्० १.६४.२

मरुत् सूर्य और पृथिवी के नियामक एवं आधार : मरुत् देवगण (Electro-magnetic radiation) का इतना अधिक महत्त्व है कि इन्हें सूर्य, पृथिवी और वर्षा का नियामक और आधार बताया गया है। ये अपनी ऊर्जा के विकिरण के द्वारा पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य सभी को अपने नियन्त्रण में रखते हैं। इनकी शक्ति के द्वारा ही वज्र के पर्वों में शक्ति है। ये संधान (जोड़ने) का काम करते हैं। इनकी शक्ति से द्युलोक और पृथिवी जुड़े हुए हैं।

समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं वज्रं पर्वशो दधुः । ऋग्० ८.७.२२

मरुतों का जन्म विद्युत् (Electricity) से : ऋग्वेद का कथन है कि मरुतों का जन्म तेजोमय विद्युत् से हुआ है ।

हस्कराद् विद्युतस्परि - अतो जाता अवन्तु नः । मरुतः० ।
ऋग्० १.२३.१२

मरुत् सदा गण (Group) के रूप में चलते हैं : विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण सदा समूह के रूप में होता है , अतः Electro-magnetic radiation सदा झुंड के रूप में होता है । इसमें ऊर्जा की किरणों का समूह चलता है । तांड्य ब्राह्मण ने स्पष्ट किया है कि मरुत् रश्मि (किरण, Radiation) हैं और गण (झुंड) के रूप में चलते हैं । तैत्तिरीय ब्राह्मण ने मरुतों को समूहरूप में रहने के कारण गणपति कहा है ।

(क) **मरुतो रश्मयः ।** तां० ब्रा० १४.१२.९
(ख) **गणशो हि मरुतः ।** तां० ब्रा० १९.१४.२
(ग) **मरुतो गणानां पतयः ।** तैत्ति० ब्रा० ३.११.४.२

मरुतों की संख्या : मरुतों के बड़े गण (Group) सात माने गए हैं । ऋग्वेद और यजुर्वेद के अनुसार इन सातों के सात उपभेद हैं, अतः मरुत् ७ × ७ = ४९ हो जाते हैं । ऋग्वेद का कथन है कि इनमें से एक एक में सौगुनी शक्ति है । यजुर्वेद में इन ४९ मरुतों के कार्य के अनुसार शुक्रज्योति, चित्रज्योति, सत्यज्योति, ज्येतिष्मान् , उग्र, भीम, ध्वान्त, धुनि, विक्षिप् आदि नाम दिए गए हैं ।

(क) **सप्त हि मारुतो गणः ।** शत०ब्रा० २.५ १.१३
(ख) **सप्त-सप्त हि मारुता गणाः।** शत० ब्रा० ९.३.१.२५
(ग) **सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।** ऋग्० ५.५२.१७
(घ) **शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च० ।** यजु० १७.८० से ८५
(ङ) **उग्रश्च भीश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।** यजु० ३९.७

मरुत् देवों को शक्ति देते हैं : ब्राह्मणग्रन्थों में मरुतों को देवों का विश् (वैश्य,प्रजा) कहा गया है । इसका अभिप्राय यह है कि मरुत् देवगण ही ऊर्जा के स्रोत हैं । ये व्यापारी की तरह देवों को शक्ति प्रदान करते हैं । यदि विद्युत्- चुम्बकीय विकिरण न हो तो सभी ऊर्जा के स्रोत समाप्त हो जायेंगे ।

मरुतो वै देवानां विशः । ऐत० ब्रा० १.९

मरुत् वृष्टि-कर्ता : ऋग्वेद आदि में वर्णन है कि मरुत् देवता ही बादलों को बनाते हैं और वृष्टि करते हैं । शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि मरुत् ही वर्षा के स्वामी हैं ।

(क) वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ।
ऋग्० ५.५३.६

(ख) मरुतो वै वर्षस्येशते । शत० ब्रा० ९.१.२.५

मरुतों की महान् शक्ति : मरुतों की शक्ति इतनी महान् है कि वे अपनी शब्दशक्ति (Sound-waves) से बड़े-बड़े चट्टानों और पर्वतों को तोड़ देते हैं ।

(क) अद्रिं भिन्दन्ति - ओजसा । ऋग्० ५.५२.९

(ख) अश्मानं चित् स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति । ऋग्० ५.५६.४

मरुत् (Cosmic Rays) में रेणु (धूलि) नहीं : ऋग्वेद के एक मंत्र में मरुतों (Cosmic Rays) का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मरुतों में धूलि नहीं है । ये अरेणवः अर्थात् धूलि-रहित हैं ।

अरेणवः ... मरुतः । ऋग्० १.१६८.४

आधुनिक विज्ञान का कथन है कि सूर्य के चारों ओर धूलि के कण नहीं हैं, क्योंकि सूर्य अपनी ऊष्मा के द्वारा सभी ठोस कणों को बाष्प (भाप) के रूप में परिणत कर देता है ।

' The space immediately near the sun is free from dust, since here the dust of the sun evaporates all solid particles. (Karl Kiepenhauer, The sun, P. 38).

एवया-मरुत् (Electro-magnetic waves) : विज्ञान की दृष्टि से ऋग्वेद का एक सूक्त 'एवया-मरुत्' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमें विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों का विस्तृत वर्णन है । मरुत्गण का वेदों में बहुत अधिक महत्त्व वर्णन किया गया है । एवया-मरुत् विशेष रूप से विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के लिए है । एवया-अतितीव्रगामी, मरुत्-विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें । इसी प्रकार वेदों में मरुत्गणों के लिए एवयावन् (अतितीव्रगामी) शब्द का प्रयोग हुआ है और विद्युत् (Electricity) के लिए 'एवयावरी' शब्द का ।

विज्ञान के अनुसार Electro-magnetic waves विद्युत्- चुम्बकीय तरंगों या विकिरण (Radiation) की प्रमुख विशेषताएँ ये मानी जाती हैं ।

१. इसमें विद्युत्-तरंगों का संबन्ध विद्युत्-क्षेत्र और चुम्बकीय क्षेत्र से होता है ।
२. इसके लिए विद्युत्-आवेश (Electric charge) आवश्यक होता है ।
३. इसके लिए किसी सहायक माध्यम की आवश्यकता नहीं होती ।
४. ये समकोण (Right angle) बनाती हुई चलती हैं ।
५. ये १ लाख ८६ हजार मील प्रति सेकेण्ड की गति से चलती हैं ।

ऋग्वेद के 'एवया-मरुत् सूक्त (ऋग्० ५.८७ सूक्त) का देवता 'मरुत् है और ऋषि एवया-मरुत् । इस सूक्त के ९ मंत्रों में Electro-magnetic waves (विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों) का विशेष रूप से वर्णन हुआ है । इन मंत्रों में ये मुख्य बातें की गई हैं :-

१. (मंत्र १) **एवया-मरुत् :** विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों की गति अतितीव्र होती है । **मरुत्वते** - इनमें विद्युत् का आवेश होता है । **तवसे** - ये बहुत शक्तिशाली होती हैं । **शवसे** - इनमें बहुत ऊर्जा होती है ।

२. (मंत्र २) **महिना जाताः** - बड़े महत्त्व वाली हैं । **स्वयं विद्मना जाताः** - ये अपनी शक्ति से उत्पन्न हैं । **शवः न आधृषे** - कोई इनकी शक्ति को रोक नहीं सकता ।

३. (मंत्र ३) **अग्नयः न स्वविद्युतः** - ये तरंगें अग्नि की लपट की तरह चलती हैं और ये आत्मनिर्भर हैं अर्थात् इनके लिए किसी सहारे या माध्यम की आवश्यकता नहीं है । **शुशुक्वानः** - इनमें बहुत ज्योति है ।

४. (मंत्र ५) **त्वेषः ययिः तवसः :** इसकी ऊर्जा का वेग बहुत प्रबल है । **स्वरोचिषः** - इसकी ऊर्जा के विकिरण के लिए किसी दूसरे का सहयोग नहीं चाहिए । **स्थारश्मानः** - इसके विकिरण में स्थिरता है । **इष्मिणः** - इनमें तीव्र गति है ।

५. (मंत्र ६) **अपारः वः महिमा :** इनकी महिमा अवर्णनीय है । **त्वेषं शवः**- इनमें उग्र बल है । **स्थातारः प्रसितौ** - ये बड़े नियम-बद्ध हैं । **शुशुक्वांसः न अग्नयः** - अग्नि के तुल्य शक्तिशाली हैं ।

६. (मंत्र ७) **रुद्रासः अग्नयः यथा :** ये अग्नि की तरह भयंकर हैं । **तुविद्युम्नाः** - ये अत्यन्त तेजोमय हैं । **दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म** - ये बहुत विशाल क्षेत्र का निर्माण करती हैं । **अज्मेषु शर्धांसि अद्भुता** - इनकी गति में अद्भुत शक्ति है ।

७. (मंत्र ८) **ज्येष्ठासः न पर्वतासः व्योमनि :** ये आकाश में पर्वत की तरह फैले हुए हैं । **प्रचेतसः** - ये अतितीव्र चेतनावाले (Sensitive) हैं ।

८. **एवया मरुतः** - मरुतों की गति बहुत तेज है । (ऋग्० ५.४१.१६)

९. **मरुतः एवयावृनः** - मरुत्गण बहुत तीव्र चलते हैं । ऋग्० २.३४.११

१०. **मरुतः विश्वकृष्टयः दिवः श्येनासः** - विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें आकाश में गरुड़ की तरह तीव्र गति से चलती हैं और सबको अपने आकर्षण में रखती हैं । ऋग्० १०.९२.६

११. **स्ववान् एवयामभिः दिवः सिषक्ति** : विद्युत् -चुम्बकीय तरंगें सर्वथा आत्मनिर्भर हैं अर्थात् उन्हें किसी सहारे की आवश्यकता नहीं है और वे द्युलोक को पुष्ट करती हैं । ऋग्० १०.९२.९

१२. **मरुत्-गण में अपनी ज्योति है** : इनकी शक्ति अक्षय एवं अमर है । विद्युत् (Electricity) की गति अत्यन्त तीव्र है । विद्युत् के कारण ही मरुतों में अक्षय शक्ति है । मंत्र में विद्युत् के लिए एवयावरी अतितीव्रगामी शब्द है । विद्युत् के कारण ही विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों में अक्षय शक्ति है ।

मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या सुम्नैः एवयावरी । ऋग्० ६.४८.१२

विद्युत्-तरंगों (मरुतों) में चुम्बकत्व : ऋग्वेद में मरुतों में चुम्बकीय शक्ति का उल्लेख है । इसमें मरुतों को अयोदंष्ट्र कहा गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि इनमें (इनकी दाढ़ में) चुम्बक शक्ति है ।

मरुतः .... अयोदंष्ट्रान् । ऋग्० १.८८.५

विद्युत्-तरंगें (मरुत्) आत्मनिर्भर : विद्युत्- चुम्बकीय तरंगों को अपनी गति के लिए किसी सहारे की आवश्यकता नहीं हैं । इसके लिए वेदों में ये शब्द आए हैं - **स्वसृत्** अर्थात् जो अपनी शक्ति से चलते हैं, सर्वथा आत्मनिर्भर हैं (ऋग्० १.८७.४) । **स्वतवसः** -अपनी शक्ति पर निर्भर हैं (ऋग्० १.१६८.२) । **स्वजाः** - अपनी शक्ति से उत्पन्न होने वाले, स्वयंभू । (ऋग्० १.१६८.२) । **स्वयतासः** - अपनी शक्ति से ही नियंत्रित होकर चलने वाले हैं । (ऋग्० १.१६६.४)

विद्युत्-तरंगों (मरुतों) की अतितीव्र गति : विद्युत् - तरंगों की गति अतितीव्र है । इसके लिए वेदों में ये शब्द आये हैं - **रघुष्यदः, रघुपत्वानः** - बहुत तीव्र गति से चलने वाले, तीव्र गति से उड़ते हुए जाने वाले (ऋग्० १.८५.६) । **मनोजुवः** मन के तुल्य तीव्र गति वाले (ऋग्० १.८५.४) ।

अध्याय - २

रसायन-विज्ञान (Chemistry)

रसायन-विज्ञान : वेदों में रसायन-विज्ञान से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र मिलते हैं। इनमें जल की उत्पत्ति, जल का महत्त्व, जल के गुण, जल के भेद, जल से सृष्टि, विविध धातुएँ, उनका मिश्रण, उनके विविध उपयोग, लवण, जल और रत्नों का ओषधि के रूप में उपयोग आदि का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ पर कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्रों का उल्लेख किया जा रहा है।

जल की उत्पत्ति : अथर्ववेद का कथन है कि जल में अग्नि (Oxygen) और सोम (Hydrogen) दोनों हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि वेदों में आक्सीजन के लिए अग्नि, मित्र, वैश्वानर अग्नि और मातरिश्वा आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। Hydrogen के लिए सोम, जल, आप: , सलिल, वरुण आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि जल में मातरिश्वा वायु (Oxygen) प्रविष्ट है। ऋग्वेद का कथन है कि जल में वैश्वानर अग्नि विद्यमान है।

(क) अग्नीषोमौ बिभ्रति-आप इत् ताः । अथर्व० ३.१३.५

(ख) अप्सु-आसीन्-मातरिश्वा प्रविष्टः । अथर्व० १०.८.४०

(ग) वैश्वानरो यासु-अग्निः प्रविष्टः, ता आपः । ऋग्० ७.४९.४

जल का सूत्र : ऋग्वेद के एक मंत्र में जल का सूत्र दिया गया है कि मित्र और वरुण के संयोग से जल प्राप्त होता है।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीं साधन्ता । ऋग्० १.२.७

मंत्र का अर्थ है : जल की प्राप्ति के लिए मैं पवित्र ऊर्जा (Energy) वाले मित्र (Oxygen) और दोषों को नष्ट करने वाले वरुण (Hydrogen) को ग्रहण करता हूँ। मंत्र में मित्र और वरुण शब्दों के द्वारा Oxygen और Hydrogen का निर्देश है, परन्तु इनकी मात्रा का स्पष्ट संकेत नहीं है। जल का सूत्र है - H_2O। विज्ञान के अनुसार हाइड्रोजन गैस के २ अणु (Molecule) और आक्सीजन का १ अणु (मोलिक्यूल) एक पात्र में रखकर उसमें विद्युत्-तरंग प्रवाहित करने पर जल प्राप्त होता है।

ऋग्वेद के चार मंत्रों (ऋग्० ७.३३.१० से १३) में इन विषय को स्पष्ट किया गया है। इन मंत्रों में कहा गया है कि एक कुंभ में मित्र वरुण का रेत वीर्य,

कण) उचित मात्रा में एक ही समय में डाला गया और उससे अगस्त्य और वसिष्ठ ऋषि का जन्म हुआ। इस कार्य के लिए विद्युत् का प्रवाह (विद्युतो ज्योतिः०) छोड़ा गया। अगस्त्य और वसिष्ठ उर्वशी (विद्युत्) के मन से उत्पन्न हुए हैं, अर्थात् ये दोनों उर्वशी के मानस पुत्र हैं।

मंत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मित्र और वरुण से जल (वसिष्ठ) की उत्पत्ति हुई। साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि जब तक विद्युत्-प्रवाह (Electric current) द्वारा उनमें चंचलता उत्पन्न नहीं की जाती है, तब तक जल नहीं बनेगा। मंत्रों में कुंभ और पुष्कर शब्द परख नली (Test -tube) का संकेत करते हैं। अतएव अगस्त्य को कुंभज या घड़े से उत्पन्न कहा जाता है। उर्वशी शब्द का अर्थ विद्युत् (Electricity) है, क्योंकि यह उरु (विशाल क्षेत्र में) अशी (व्याप्त) है। मंत्रों में मित्र (Oxygen) और वरुण (Hydrogen) के साथ उर्वशी एवं 'विद्युतो ज्योतिः' के द्वारा (Electric current) का स्पष्ट निर्देश है। मानसपुत्र कहने का भी अभिप्राय है कि उर्वशी के पेट से नहीं, अपितु उसके संपर्क में आने से मित्र वरुण का वीर्य निकल गया और वे जल के रूप में परिवर्तित हो गए। मंत्रों में अगस्त्य और वसिष्ठ नाम जल के लिए हैं।

(क) **विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।**
तत् ते जन्म-उतैकं वसिष्ठ, अगस्त्यो०।

(ख) **उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ, उर्वश्यां मनसोऽधि जातः।**

(ग) **अप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः। द्रप्सं स्कन्नं .. पुष्करे त्वाददन्त।**

(घ) **कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्।**
ततो जातमाहुर्वसिष्ठम्। ऋग्० ७.३३.१० से १३

मंत्रों में दो गैसों का एक स्थान पर रखना, विद्युत् का संचार करना, एक पात्र में परीक्षण करना, जल की उत्पत्ति और अगस्त्य ऋषि द्वारा इस सूत्र के प्रचार का भी स्पष्ट संकेत मिलता है। इसीलिए अगस्त्य को कुंभज (घड़े से उत्पन्न) और वसिष्ठ को मैत्रावरुण (मित्र-वरुण का पुत्र) कहा गया है।

मित्र-वरुण वृष्टिकर्ता : अन्तरिक्ष में जल की उत्पत्ति का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, इसी से वृष्टि होती है। यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार समुद्र आदि का जल भाप बनकर वायु के द्वारा ऊपर आकाश में जाता है। वहाँ मित्र (Oxygen) और वरुण (Hydrogen)का विद्युत् के साथ संपर्क होने पर बादल बनते हैं और उनसे वृष्टि होती है। मित्र और वरुण का संपर्क न हो तो न बादल बनेंगे और न वृष्टि होगी। यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण में बादलों को जल का सूक्ष्म रूप (भस्म) कहा गया है।

(क) **मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् ।** यजु० २.१६ । शत० १.८.३.१२

(ख) **मरुतां पृषतीर्गच्छ, वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ, ततो नो वृष्टिमावह ।** यजु० २.१६

(ग) **अभ्रं वा अपां भस्म ।** यजु० १३.५३ । शत० ७.५.२.४८

जल का महत्त्व एवं उसके गुण : जल सभी रोगों का इलाज है । यहाँ तक कि यह आनुवंशिक (Hereditary) रोगों को भी नष्ट करता है, (अथर्व० ३.७.५) । जल में सोम आदि रसों को मिलाकर सेवन करने से मनुष्य दीर्घायु होता है, (ऋग्० १.२३.२३) ।

जल के विविध गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हिमालय से निकलने वाली नदियों का जल विशेष लाभकारी है, हृदय के रोगों में भी इसका प्रयोग करना चाहिए (अथर्व० ६.२४.१) । बहता हुआ जल शुद्ध और गुणकारी होता है । यह मनुष्य को शक्ति और गति देता है । पौष्टिकता और कर्मठता के लिए शुद्ध जल का सेवन लाभकर है (अथर्व० ६.२३.३) । जल बलवर्धक है और शरीर को सुन्दरता प्रदान करता है (अथर्व० १.५.१) । जल मानवमात्र को जीवन प्रदान करता है । यह जीवन का आधार है । जल के बिना मानव का जीवित रहना संभव नहीं है (अ० १.५.४) ।

गहराई से निकाला हुआ जल अत्युत्तम होता है । चिकित्सा के लिए यह सर्वोत्तम है (अ० १९.२.३) । जल में संजीवनी शक्ति है । इसके ठीक उपयोग से मनुष्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर सकता है (अ० १९.६९.१) । जल में अग्नि और सोम दोनों तत्त्व हैं, अतः इसका प्रभाव तीव्र होता है । आग्नेय तत्त्व के द्वारा यह प्राणशक्ति देता है और सोमीय तत्त्व के द्वारा तेजस्विता देता है (अ० ३.१३.५) । **जल का गुण है** - पदार्थों को गीला करना और दोषों को निकालना (अ० ७.८९.३) । स्थान और आश्रय के भेद से जल के गुणों में भी भेद हो जाता है । वर्षा का जल सर्वोत्तम होता है (अ० ७.८९.१) । बहता हुआ जल निर्दोष और गुणकारी होता है (अ० ६.२३.१) । अतः रुका हुआ या दूषित जल अग्राह्य है ।

अथर्ववेद में शरीरविज्ञान की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि शरीर में आठ प्रकार का जल है अर्थात् शरीर की सात धातुएँ एवं गर्भ अर्थात् रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, वीर्य और गर्भ ये सभी जल के विभिन्न रूप हैं (अ० ११.८.२९ से ३२) ।

विशेष विवरण के लिए देखें - डा० कपिलदेव द्विवेदी - कृत 'वेदों में आयुर्वेद' पृष्ठ २६ एवं १४७ से १५२ ।

जल के भेद : वेदों में जल के अनेक आश्रय बताए गए हैं । इन प्राप्ति-स्थानों के आधार पर जल के अनेक भेदों का उल्लेख है । विविध जलों को ये नाम दिए हैं - **(१) धन्वन्य** -रेगिस्तान या रेतीले प्रदेश से प्राप्त जल । **(२) अनूप्य** - जलीय स्थान या गड्ढे वाले स्थानों से प्राप्त जल । **(३) खनित्रिम** - खोदे हुए कुएँ आदि का जल । **(४) वार्षिक या वर्ष्य** - वर्षा का जल । **(५) हैमवत** - हिमालय पर्वत से निकली नदियों का जल । **(६) उत्स्य** - स्रोतों या सोतों से निकलने वाला जल । **(७) सनिष्यद** - निरन्तर बहने वाला जल । (८) **सैन्धव** - नदियों से प्राप्त होने वाला जल । **(९) समुद्रिय** - समुद्र से प्राप्त होने वाला जल । (अथर्व० १.६.४; १९.२.१; १.४.३) । इनमें वर्षा के जल को अत्युत्तम और शतवृष्ण्य अर्थात् सौगुनी शक्ति वाला बताया गया है ।

पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् । अ० १.३.१

यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में जल के बहुत अधिक भेदों का उल्लेख है । जैसे - स्रुत्य, (छोटे गड्ढों का जल), पथ्य (तंग रास्तों में प्राप्य जल), काट्य (छोटी नहरों का जल), नीप्य (तराई की नदियों का जल), कुल्य (नहर का जल), सरस्य (तालाब का जल), नादेय (नदी का जल), वैशन्त (छोटे तालाब का बावड़ी का जल), कूप्य (कुएँ का जल), अवट्य (छोटे कुएँ का जल), ह्रद्य (बड़ी झील का जल), सूद्य (दलदल वाली भूमि का जल) आदि । (यजु० १६.३७. और ३८ । तैत्ति० ४.५.७.१.२ और ७.४.१३)

जल के विभिन्न भेदों के उल्लेख का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक जल की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं । उसी आधार पर उनका ओषधि आदि के रूप में प्रयोग किया जाता है । साथ ही जो दूषित या दलदल आदि का जल है, वह अग्राह्य है ।

जल में सभी देव (तत्त्व) : ऋग्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि जल में सभी देवों (तत्त्वों) का निवास है । अत: जल देवालय है । जल के आधार पर ही सारा रसायन-विज्ञान खड़ा है । जल में देवों को सदा तैयार (सुसंरब्ध) कहा गया है, इसका अभिप्राय यह है कि जल में जो जब चाहे, जहाँ चाहे परीक्षण कर सकता है ।

(क) यद् देवा अदः सलिले, सुसंरब्धा अतिष्ठत ।

ऋग्० १०.७२.६

(ख) प्रविष्टा देवाः सलिलानि-आसन् । अ० १०.८.४०

इससे यह भी ज्ञात होता है कि जल की प्रत्येक कणिका (Molecule) में छेद (पोल) है । अत: जल में शक्कर या नमक की कणिकाएँ प्रवेश करती हैं । जल यदि ठोस होता तो उसमें चीनी या नमक का प्रवेश नहीं हो पाता ।

जल अखंड नहीं है : 'प्रविष्टा देवा: सलिलानि०' से सिद्ध होता है कि जल में देवों के प्रवेश के लिए स्थान है। इससे ज्ञात होता है कि जल अखंड, अविभाज्य या अविभक्त वस्तु नहीं है। इसी प्रकार सोना भी अखंड या अविभाज्य नहीं है। तपाने पर सोने के रेणु (Molecule) काँपते हैं। जल और सुवर्ण आदि के भीतर भी खाली स्थान है, अत: उनको काँपने के लिए स्थान मिल जाता है। एटम (Atom) के अन्दर भी पोल है। इसीलिए इलेक्ट्रॉन (Electrons) उनमें गतिशील रहते हैं। ऋग्वेद में रेणुओं (Molecules) के इस कम्पन को रेणुओं का नृत्य करना कहा गया है। प्रत्येक इलेक्ट्रान एक प्रकार से नृत्य कर रहा है। जल या सुवर्ण आदि को तपाने पर यह नृत्य देखने को मिलता है।

अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत। ऋग्० १०.७२.६

लार्ड केल्विन (Lord Kelvin, Thomson William) ने कठिन परिश्रम के बाद ज्ञात किया है कि जल की १ बूंद में $१०^{२४}$ मोलिक्यूल हैं, अर्थात् १ पर २४ बिन्दु, अर्थात् परार्ध से भी अधिक कण हैं। इनमें से प्रत्येक कण या रेणु प्रतिक्षण अपना नृत्य कर रहा है। यह है ईश्वरीय लीला का एक छोटा सा नृत्य। इसी प्रकार प्रसिद्ध वैज्ञानिक क्लाउजियस (Clausius), मैक्सवेल (Maxwell) और स्टोनी (Stoney) आदि ने एक क्यूबिक मिलीमीटर गैस (जरा सी गैस) के मोलिक्यूल की गणना करके बताया है कि उनकी संख्या ४×१०^{१६} अर्थात् ४ पर १६ शून्य है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि चाहे जल हो या गैस, उसके छोटे से कण में भी असंख्य रेणु (Molecules) होते हैं। इसकी ओर ही ऋग्वेद के मंत्र में संकेत किया गया है।[१]

जल का विराट् रूप : यजुर्वेद के एक बहुत महत्त्वपूर्ण मंत्र में जल के विराट् रूप का वर्णन किया गया है। जल स्थूल और सूक्ष्म रूप में कहाँ-कहाँ विद्यमान है और किस रूप में इन तत्त्वों को प्रभावित करता है, इसका सूत्ररूप में निर्देश किया गया है।

अपां त्वेमन् सादयामि, अपां त्वोद्मन्०। यजु० १३.५३

मंत्र में इमन्, ओद्मन् आदि शब्दों से जल के स्थूल या सूक्ष्म आश्रयों का निर्देश है। शतपथ ब्राह्मण (७.५.२.४६ से ६०) में इन पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण दिया गया है। तदनुसार मंत्र की व्याख्या है -

१. वायु जल का आश्रय है। वायु के साथ जल इधर से उधर आकाश में जाता है (इमन्)। २. जल ओषधियों में है। जल के कारण ओषधियों में वृद्धि होती

---

१. देखो - "वेद व विज्ञान", स्वामी प्रत्यागात्मानन्द, पृ० ८४-८५

है (ओद्मन्) । ३. अभ्र या बादल जल के भस्म या साररूप हैं (भस्मन्) । ४. विद्युत् (बिजली) जल का प्रकाश है (ज्योतिष्) । जल से ही विद्युत् की उत्पत्ति है । ५. पृथिवी जल का आश्रय स्थान है (अयन) । ६. प्राण जल का सूक्ष्म रूप है (अर्णव) । ७. मन जलीय तत्त्वों (विचारों) का समुद्र है (समुद्र) । ८. वाक् या वाणी में सरसता और जीभ में आर्द्रता (गीलापन) जल के कारण है (सरिर) । ९. आँखों में तेज, दर्शन शक्ति और सरसता जल के कारण हैं (क्षय) । मछली की तरह आँख भी जल की प्रेमी है । इसलिए आँखों को जल का निवास स्थान (क्षय) कहा गया है । १०. कानों को जल का सहवासी बताया गया है (सधिष्) । कान में जल की सूक्ष्म मात्रा न होने पर बहरापन होता है । ११. द्युलोक जल का निवास स्थान है (सदन) । १२. अन्तरिक्ष में जल व्याप्त है (सधस्थ) । १३. समुद्र जल का आधार है । समुद्र से ही जल भाप बनकर वर्षा के रूप में पृथ्वी पर आता है (योनि) । १४. सिकता (रेत) जल का ही उच्छिष्ट भाग है । जल के कारण ही पत्थर रेत के रूप में परिवर्तित होते हैं (पुरीष) । १५. अन्न का आधार जल या वर्षा है । इसलिए जल को अन्न का कारण कहा गया है (पाथस्) । उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि जल पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक तीनों स्थानों पर व्याप्त है । यह तीनों लोकों की स्थिति का आधार है ।

अथर्ववेद के एक मंत्र में जल के ५ गुणों का वर्णन है । ये हैं - **१. तपस् -** गर्म होना, गर्मी देना, ताप और संताप । **२. हरस् -** दोष या मल को दूर करना, स्वच्छता प्रदान करना । **३. अर्चिस् -** तपाना, रगड़ से विद्युत् उत्पादन और उत्तेजना देना । **४. शोचिस् -** प्रकाश देना, दाहकत्व और शोधकत्व । **५. तेजस् -** तेज, कान्ति, सौन्दर्य, लावण्य और प्रसन्नता देना ।

आपो यद् वो तपः , हरः, अर्चिः, शोचिः, तेजः । अ० २.२३.१ से ५

ऋग्वेद के एक मंत्र में जल के तीन गुणों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है । ये गुण हैं - **१. मधुश्चुतः -** मधु या मधुरता देने वाले । जिनके द्वारा अर्क, आसव, सुरा, सोमरस आदि तैयार किए जाते हैं । **२. शुचयः -** दोषों या मल को निकालकर स्वच्छता प्रदान करने वाले । **३. पावकाः -** दोषों को जलाने, शुद्ध करने और पवित्रता प्रदान करने वाले ।

मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपः० । ऋग्० ७.४९.३

जल से सृष्टि की उत्पत्ति : ऋग्वेद (१०.८२.५) में प्रश्न किया गया है कि सर्वप्रथम सृष्टि का बीज किसमें पड़ा । अगले मंत्र में इसका उत्तर दिया गया है कि जल में सबसे पहले सृष्टि का बीज पड़ा । जल में सभी तत्त्वों (देवों) का समावेश है ।

सारे देवता जल में विद्यमान हैं। यजुर्वेद में भी यही भाव दिया गया है कि जल में सर्वप्रथम सृष्टि का बीज पड़ा और उससे अग्नि की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि जल सभी चर और अचर जगत् को जन्म देने वाला है। (ऋग्० १०.३०.१०)

(क) तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो
यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे। ऋग्० १०.८२.६

(ख) आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्
गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्। यजु० २७.२५

(ग) आपः .... विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः। ऋग्० ६.५०.७

जल से अग्नि (विद्युत्) की उत्पत्ति का आविष्कार : - ऋग्वेद और यजुर्वेद में जल से अग्नि की उत्पत्ति का वर्णन है। अग्नि को 'अपां नपात्' अर्थात् जल का पुत्र कहा गया है। यह भी कहा गया है कि यह वसुओं (पृथ्वी आदि) के साथ रहता है। जल को अग्नि की माता बताते हुए कहा गया है कि मातारूप जल ने अग्नि को जन्म दिया। अथर्ववेद में अग्नि को जल का पित्त (ऊष्मा) कहा गया है, अर्थात् जल के घर्षण से अग्नि (विद्युत्) का जन्म होता है।

(क) अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियः। ऋग्० १.१४३.१
(ख) तम् आपो अग्निं जनयन्त मातरः। ऋग्० १०.९१.७
(ग) अग्ने पित्तम् अपाम् असि। अ० १८.३.५

ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णन है कि घर्षण (Friction) या मन्थन (Churning) से अग्नि उत्पन्न होती है। अथर्वा पहले ऋषि थे, जिन्होंने तालाब के जल से मन्थन की विधि से अग्नि (Electricity) उत्पन्न करने की विधि का आविष्कार किया था।

(क) त्वामग्ने पुष्करादधि- अथर्वा निरमन्थत।
ऋग्० ६.१६.१३। यजु० ११.३२

(ख) अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने। यजु० ११.३२

सूर्य में जल (Hydrogen, H_2) : अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य की ऊर्जा का स्रोत सोम (Hydrogen) है। सोम से ही पृथिवी का विस्तार होता है। नक्षत्रों में भी सोम (Hydrogen) विद्यमान है।

सोमेनादित्या बलिनः, सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषाम् - उपस्थे सोम आहितः। अ० १४.१.२

यहाँ यह ध्यान रखना चहिए कि वेदों में Hydrogen के लिए सोम, अप्, सलिल आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

सूर्य में उच्च जल-तत्त्व (Helium, He) : यजुर्वेद में हाइड्रोजन और हीलियम गैस (Helium Gas, He) का संकेत है। मंत्र में हाइड्रोजन के लिए 'अपां रस:' जल का सार भाग या गैसीय रूप शब्द आया है और हीलियम के लिए 'अपां रसस्य यो रस:' शब्द है, अर्थात् हीलियम जल के सार भाग हाइड्रोजन का भी सारभाग या सूक्ष्म और उच्चतम रूप है। मंत्र में 'सूर्ये सन्तं समाहितम्' के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि ये दोनों गैसें सूर्य में विद्यमान हैं। 'उद्वयसम्' का अर्थ है- उद्भूतशक्तिम्, अर्थात् उच्चशक्ति से युक्त हाईड्रोजन, जो कि हीलियम के रूप में है, सूर्य में है।

अपां रसम् उद्वयसं सूर्ये सन्तं समाहितम् ।
अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तमम् ।। यजु० ९.३

विज्ञान के अनुसार सूर्य में लगभग ९० प्रतिशत हाइड्रोजन है और ८ प्रतिशत हीलियम तथा २ प्रतिशत अन्य भारी द्रव्य। सूर्य की सतह का तापमान छह हजार डिग्री सेन्टीग्रेड है और अन्दर का तापमान १ करोड़ ३० लाख डिग्री सेन्टीग्रेड है। इस आन्तरिक ताप से हाइड्रोजन हीलियम के रूप में परिवर्तित होता है, इसे Thermo-nuclear Reactions कहा जाता है। गैसों के इन रूपान्तरणों के कारण सूर्य को निरन्तर विशाल ऊर्जा प्राप्त होती रहती है। सूर्य को अपनी इस ऊर्जा के लिए प्रति सेकेण्ड ५० लाख टन द्रव्यमान की आवश्यकता होती है और इससे वह प्रति सेकेण्ड ३×१०^{२६} वाट ऊर्जा फेंकता है[४]। सूर्य की बाहरी सतह को Photosphere कहते हैं। इसके बाद अन्दर की परतों को क्रमश: Chromosphere और Solar Corona कहते हैं।

ऋग्वेद के एक मंत्र में वर्णन है कि सूर्य के चारों ओर दूर-दूर तक बहुत शक्तिशाली गैस (धूम) फैली हुई हैं। मंत्र में इस शक्तिशाली गैस के लिए 'शकमयं धूमम्' अर्थात् शक्तिशाली धूम शब्द का प्रयोग है। मंत्र में ऋषि का यह भी कथन है कि मैंने (अपने योगबल से) सूर्य के चारों ओर फैली विशाल गैस का साक्षात् दर्शन किया है।

शकमयं धूमम् आरादपश्यं
विषूवता पर एनावरेण । ऋग्० १.१६४.४३

जल से सूर्य का जन्म : ऋग्वेद के एक मंत्र में संकेत है कि आकाशीय समुद्र में व्याप्त जल (Hydrogen) से सूर्य का जन्म हुआ है। इसका अभिप्राय है कि सूर्य आकाश में विद्यमान Hydrogen के एकत्र होने से बना है।

अत्रा समुद्र आ गूढम्, आ सूर्यम् अजभर्तन । ऋग्० १०.७२.७

द्यावापृथिवी में सोम (Hydrogen) : ऋग्वेद का कथन है कि पृथिवी और आकाश में सर्वत्र सोम (Hydrogen) व्याप्त है । इसके कारण ही द्यावापृथिवी में वृद्धि, विस्तार और प्रकाश है । । सोम को द्यावापृथिवी गर्भस्थ बालक की तरह अपने अन्दर धारण किए हुए हैं ।

(क) यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा
गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया । ऋग्० ३.४६.५

(ख) घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते
घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा । ऋग्० ६.७०.४

रसायन विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ : आधुनिक विज्ञान के अनुसार रसायन विज्ञान की तीन प्रमुख शाखाएँ मानी जाती हैं । ये हैं -

१. Physical Chemistry (भौतिक रसायन), २. Inorganic Chemistry (अकार्बनिक रसायन), ३. Organic Chemistry (कार्बनिक रसायन) । वेदों में इस प्रकार का कोई विभाजन उपलब्ध नहीं है । तथापि इन विषयों का कुछ विवरण प्राप्त होता है ।

भौतिक रसायन (Physical Chemistry) :- इसमें संसार की उत्पत्ति विषय की चर्चा है । वेदों में नासदीय सूक्त (ऋग्० १०.१२९.१ से ७), पुरुषसूक्त (ऋग्० १०.९०.१ से १६ । यजु० ३०.१ से २२ । अथर्व० १९.६.१ से १६) और दाक्षायणी सूक्त (ऋग्० १०.७२.१ से ९) आदि में सृष्टि की उत्पत्ति का विवेचन है । ऋग्वेद में अदिति (प्रकृति) से दक्ष (ऊर्जा, Energy) की उत्पत्ति और उससे सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है । (ऋग्० १०.७२.४) । वैशेषिक दर्शन में इस विषय का विशेष विवेचन है । इसमें सृष्टि की रचना पृथिवी, जल, अग्नि और वायु के सूक्ष्मतम कण परमाणुओं से मानी गई है । अतिसूक्ष्म, इन्द्रियातीत, निरवयव और नित्य द्रव्य को परमाणु कहा गया है । ये परमाणु चार प्रकार के होते हैं - पार्थिव, जलीय, तैजस और वायवीय अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि और वायु के सूक्ष्मतम कण ।

इन परमाणुओं से सृष्टि का क्रम इस प्रकार माना गया है । दो परमाणुओं (Molecules) के संयोग से द्व्यणुक, तीन द्व्यणुकों के संयोग से त्र्यणुक (त्रसरेणु या त्रुटि), चार त्रसरेणुओं के संयोग से चतुरणुक । इसी क्रम से सृष्टि की उत्पत्ति होती है । द्व्यणुक दिखाई नहीं पड़ते हैं । त्रसरेणु दिखाई पड़ते हैं । परमाणु स्वभावत: शान्त और निष्पन्द होते हैं । इनमें जब स्पन्द (Movement) होता है, तब सृष्टि की प्रक्रिया शुरू होती है । इस सिद्धान्त को परमाणुवाद कहते हैं ।

यह सिद्धान्त ग्रीक दार्शनिक डिमाक्रिटस (Democritus, ४६० से ३७० B.C.) और एपिक्यूरस (Epicurus, ३४२ - २७० B.C.) के परमाणुवाद से

थोड़ा भिन्न है । ये परमाणुओं को स्वतः गमनशील और उत्पन्न करने वाला बताते हैं । ये आकाश में विचरण करते हुए पारस्परिक संघर्ष से स्वतः जगत् की सृष्टि करते हैं । वैशेषिक दर्शन परमाणु को निस्पन्द मानता है । ईश्वरेच्छा (अदृष्ट) से उनमें स्पन्द होता है और सृष्टि होती है ।

सांख्यदर्शन परमाणु से भी सूक्ष्म तत्त्वों को मानता है । तदनुसार पुरुष (ईश्वर) के ईक्षण से मूल प्रकृति में स्पन्दन होता है । उससे महत् तत्त्व (बुद्धि), उससे अहंकार (Ego) उत्पन्न होता है । अहंकार से सात्त्विक रूप में ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ और मन की उत्पत्ति होती है तथा तामस रूप में ५ तन्मात्रा (पंच तत्त्वों का सूक्ष्मरूप) और उनसे ५ महाभूतों (पृथिवी, जल आदि) की उत्पत्ति होती है ।

परमाणु-जन्य सृष्टि से पाँच तत्त्वों की बात समझाई जा सकती है, परन्तु मनोविकार ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध, लोभ, प्रेम, वात्सल्य, क्रोध, कामभावना आदि की उत्पत्ति का उत्तर नहीं मिलता है । सांख्य के अहंकार के द्वारा मनोभावों की उत्पत्ति का स्पष्ट उत्तर मिल जाता है ।

अकार्बनिक रसायन (Inorganic Chemistry) : वेदों में अकार्बनिक या धातुज रसायन से संबद्ध सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है । सोने चांदी और लोहे के आभूषण, शस्त्र और अन्य वस्तुओं का उल्लेख मिलता है । यजुर्वेद के ३०वें अध्याय में सुवर्ण लोहे आदि का काम करने वाले इन शिल्पियों का उल्लेख है : -

मणिकार (३०.७), हिरण्यकार (सुनार, ३०.१७), अयस्ताप (लोहार, ३०.१४), इषुकार (बाण बनाने वाला, ३०.७), अंजनीकारी (अंजन बनाने वाली, ३०.१४) ।

मणिकार का काम था - हीरा, पन्ना, नीलम आदि मणियों को काटना, तराशना और सुन्दर बनाना तथा आभूषणों में उनको लगाना । हिरण्यकार सोने के विभिन्न आभूषण बनाता था । अयस्ताप लोहे को तपाकर बाण तथा अन्य शस्त्र आदि बनाता था ।

वेदों में इन अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख मिलता है - संमोहन अस्त्र, तामस अस्त्र, आग्नेय अस्त्र, खड्ग, बाण, हेति, मेनि, परशु, कृपाण, धूमाक्षी, कवच, बिल्म (लोहे का टोप, Helmet) आदि ।[1]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में १६ प्रकार के चलयन्त्र (शतघ्नी आदि), ११ प्रकार के हलमुख अस्त्र, १० प्रकार के स्थितयन्त्र, ५ प्रकार के बाण, ६ प्रकार के कवच आदि का वर्णन किया है । (देखो कौ० अर्थशास्त्र, पृष्ठ २०९ से २१२) ।

---

१. विशेष विवरण के लिए देखें डा०कपिलदेव द्विवेदी - कृत 'वेदों में राजनीति-शास्त्र', पृ० ३२३ से ३४०) ।

यजुर्वेद (१८.१३) में हिरण्य (सोना), अयस् (लोहा या काँसा), श्याम (ताँबा), लोह (लोहा), सीस (सीसा) और त्रपु (टिन या वंग) का उल्लेख है ।

अथर्ववेद के एक मंत्र में हरित (सोना), रजत (चाँदी) और अयस् (लोहे) को तपाकर इनके तारों से यज्ञोपवीत बनाने का उल्लेख है । तीन धातुओं को मिलाकर कोई वस्तु तैयार करने को त्रिवृत् (तिहरा, तीन धातु वाला) कहा जाता था ।

हरिते त्रीणि, रजते त्रीणि, अयसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ।

अथर्व० ५.२८.१

इसी सूक्त के एक मंत्र में सोने को हरित (पीला या मनोहर रूप वाला), चाँदी को अर्जुन और लोहे को अयस् कहा गया है, (अथर्व० ५.२८.९) । रसायन विज्ञान में चाँदी को अर्जेन्टम (Argentum) कहते हैं । यह अर्जुन और रजत दोनों का ही विकृत रूप है ।

वेदों में एक धातु या तत्त्व के लिए एकवृत् शब्द है । दो के मिश्रण को द्वित या द्विवृत् कहते हैं । तीन धातुओं या द्रव्यों के मिश्रण को त्रिवृत् कहते हैं ।

त्रयः पोषाः त्रिवृति श्रयन्ताम् । अथर्व० ५.२८.३

धातुओं को शुद्ध करने की प्रक्रिया का पारिभाषिक नाम है - दक्ष । अतएव शुद्ध किए हुए सोने को 'दाक्षायण हिरण्य' कहा जाता है । यजुर्वेद और अथर्ववेद में दाक्षायण हिरण्य का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है । शुद्ध सोने की जंजीर या ताबीज बाँधने से दीर्घायु, वर्चस्विता और बलवृद्धि का वर्णन किया गया है । (यजु० ३४.५० से ५२ ; अथर्व० १.३५.१ से ३)

यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं
स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः । अ० १.३५.२

वेदों में सुवर्ण, लोहे आदि से बनी वस्तुओं का उल्लेख है । लोहे की बनी बांधने की जंजीर को 'अयस्मय बन्धपाश' और लोहे के बने द्रुपद (खंभा या खूंटे) को 'अयस्मय द्रुपद' कहा गया है ।

अयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् । अ० ६.६३.२
अयस्मये द्रुपदे० । अ० ६.६३.३

भाले या बरछे को ऋष्टि कहते थे । लोहे और सोने के बने भालों का उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद में है । इनको अयस्मय ऋष्टि और हिरण्ययी ऋष्टि या हिरण्यनिर्णिक् ऋष्टि कहा गया है ।

ऋष्टीरयस्मयीः । अ० ४.३७.८
ऋष्टीर्हिरण्ययीः । अ० ४.३७.९
हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः । ऋग्० १.१६७.३

अथर्ववेद में राँगे की भस्म (वंगभस्म या त्रपुभस्म) का उल्लेख है ।

त्रपु भस्म । अ० ११.३.८

अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त में सीस (सीसा धातु) का उल्लेख है । इसमें सीसे के बने छर्रे (Lead shots) या गोलियों का प्रयोग शत्रुओं को मारने के लिए करने का वर्णन है ।

तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा । अ० १.१६.२ से ४

लोहे की कील : अथर्ववेद के एक मंत्र में लोहे को ढाल कर उससे बनी कील को 'अयस्मय अंक' कहा गया है । इसके प्रयोग से शत्रु को भगाने का वर्णन है ।

अयस्मयेनांकेन द्विषते त्वा सजामसि । अ. ७.११५.१

धातुओं में टाँका लगाना : गोपथ ब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् में धातुओं को जोड़ने या टाँका लगाने की विधि दी गई है । गोपथ ब्राह्मण में बताया है कि लवण (क्षार) से सोने को सोने से, चाँदी को चाँदी से, लोहे को लोहे से और सीसा (Lead) को सीसे से जोड़ें । छान्दोग्य में थोड़ा अन्तर किया गया है । इनको दूसरी धातु से जोड़ने की भी विधि दी है । छान्दोग्य का कथन है कि लवण (क्षार) से सुवर्ण से सुवर्ण को जोड़ा जाता है । इसी प्रकार सोने से चाँदी को, चाँदी से त्रपु (रांगा, Tin) को, रांगा से सीसा को, सीसा से लोहे को, लोहे से लकड़ी को और लकड़ी से चमड़े को जोड़ा जाता है । । क्षार पदार्थ को मृदु बना देता है, अत: उससे धातुएँ एक-दूसरे से जुड़ जाती हैं ।

लवणेन सुवर्णं संदध्यात् सुवर्णेन, रजतं रजतेन, लोहं लोहेन,
सीसं सीसेन । गोपथ पू० १.१४ । जै०उ०ब्रा० ३.१७.३

लवणेन सुवर्णं संदध्यात्, सुवर्णेन रजतं, रजतेन त्रपु,
त्रपुणा सीसं, सीसेन लोहं, लोहेन दारु , दारुणा चर्म ।

छान्दोग्य उप० ४.१७.७

सूर्यकान्त मणि से अग्नि : आचार्य यास्क के ग्रन्थ निरुक्त में वर्णन है कि जब सूर्य ऊपर की ओर जाता है, तब हम यदि कंस (काँसा, Bronze) या सूर्यकान्त मणि (Jasper) को साफ करके सूर्य के सामने (Focus) में रखें तो उससे निकलने वाले ताप से पास में रखा हुआ सूखा गोबर जल जाता है । यदि रूई रखी होगी तो वह भी जल जाएगी ।

अथादित्यात् । उदीचि प्रथमसमावृत्त आदित्ये कंसं वा मणिं वा
परिमृज्य प्रतिस्वरे यत्र शुष्कगोमयम् अस्पर्शयन् धारयति तत् प्रदीप्यते ।

निरुक्त ७.२३

रत्नों की परीक्षा : कौटिलीय अर्थशास्त्र ने रत्नपरीक्षा अध्याय (कौ० अर्थ० २.११) में रत्नों के भेद, मोतियों के उत्पत्ति स्थान, मणियों के ११ प्रकार, मणियों की १८ प्रकार की उपजातियाँ, हीरा और मूंगा (प्रवाल) के भेद, उनकी उत्तम और निम्न कोटि आदि के विषय में बहुत उपयोगी सामग्री दी है। (पृष्ठ १५१ से १५६)

मोती १० प्रकार के होते हैं - ताम्रपर्णिक, पांड्य कवाटक, हैमवत आदि। इनके तीन उत्पत्ति स्थान हैं - शंख, शुक्ति (सीपी) और प्रकीर्ण (गजमुक्ता, सर्पमणि आदि)।

घटिया मोती १३ प्रकार के होते हैं : मसूरक, त्रिपुटक आदि। उत्तम मोती की पहचान है - वह स्थूल (मोटा), वृत्त (गोल), तल-रहित, चमकीला, सफेद, भारी (गुरु) और चिकना (स्निग्ध) होगा।

मणियों के तीन उत्पत्ति स्थान हैं - मणियों में पाँच प्रकार के माणिक्य होते हैं - पद्मराग आदि। वैदूर्य मणि आठ प्रकार की होती हैं - पुष्पराग (पुखराज), गोमेदक आदि। स्फटिक मणि चार प्रकार की होती है - शुद्ध स्फटिक, शीतवृष्टि (चन्द्रकान्त), सूर्यकान्त आदि। मणियाँ ११ प्रकार की होती हैं - षडश्र (छह कोने वाली), चतुरश्र (चौकोन), वृत्त (गोलाकार), स्निग्ध (चिकनी), गुरु (भारी), अर्चिष्मान् (चमकदार), अन्तर्गतप्रभ (चंचल कान्ति वाली) आदि। घटिया मणियों में सात दोष पाए जाते हैं :- मन्दरागप्रभः (हल्के रंग वाली), खुरदरी, कटी हुई, कई रेखाओं वाली आदि। मणियों की १८ उपजातियां हैं। हीरा (वज्र) ६ प्रकार का होता है। हीरा तीन स्थानों से मिलता है - खान, जलस्रोत और प्रकीर्ण। उत्तम हीरे की पहचान है - मोटा, वजनी, समकोण चमकदार होना आदि। घटिया हीरा के कोने तीक्ष्ण नहीं होते हैं, कोने भी छोटे-बड़े होते हैं।

मुक्ताभस्म आदि : आयुर्वेद में मोती आदि की भस्म बनाई जाती है। यहाँ उदाहरण के लिए मोती भस्म बनाने की एक विधि दी जा रही है :

शुद्ध किये हुए मोतियों को एक उत्तम खरल में डालकर गोदुग्ध के साथ अच्छी तरह घोटकर सुखा लें। अब इस चूर्ण को एक संपुट में बन्द करके कंडों (उपलों) की हलकी आंच में फूंक दें। इस तरह लघुपुट देने से मोती की सफेद भस्म तैयार हो जाती है। (रसतरंगिणी)। अन्य सभी भस्मों को तैयार करने की विधि के लिए देखें - आयुर्वेदसारसंग्रह (वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन) पृष्ठ १३२ से १५०।

पारद-भस्म (पारे की भस्म) की विधि : योगचिन्तामणि के अनुसार पारद-भस्म की विधि यह है : -

शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला लेकर खरल में घोटकर, इनकी अच्छी तरह कज्जली बनाकर, इसको बड़ के दूध के साथ घोटकर, एक मिट्टी के

चौड़े दृढ़ पात्र में (कुंडे में) डालकर चूल्हे पर चढ़ा दें और इसके नीचे मन्द-मन्द अग्नि दें । इसे बड़ की गीली लकड़ी के डंडे से धीरे-धीरे चलाते रहें । इस प्रकार एक दिन तक अत्यन्त मन्द-मन्द अग्नि देकर पकाने से पारद की भस्म तैयार हो जाती है ।

इसी प्रकार सोना, चांदी, तांबा सभी की भस्म तैयार की जाती है । विशेष विवरण के लिए देखो - आयुर्वेदसार संग्रह में शोधन- मारण प्रकरण, रसायन प्रकरण, रस-रसायन प्रकरण पृष्ठ ८२ से ४२८ तक । विस्तारभय से विविध भस्म, रसायन और रसों की विधि नहीं दी जा रही है ।

कार्बनिक रसायन (Organic Chemistry) : वेदों में सोम रस और सुरा का अनेक मंत्रों में वर्णन है । सोम का अर्क या आसव बनाना तथा सुरा के निर्माण का भी अनेक मंत्रों में वर्णन है । सुरा के कतिपय भेदों का भी उल्लेख मिलता है ।

आसव : यजुर्वेद में आसव का उल्लेख है । इसे देवों का पेय बताया गया है । आसव का अर्थ है - प्रेरक, उत्तेजक और स्फूर्तिदायक । सोम स्फूर्तिदायक है, अतः उसे देवों का पेय कहा गया है ।

आसवं देववीतये । यजु० २२.१३

सोम : यह देवों का पेय है । ऋग्वेद का पूरा नवम मंडल (११०८ मंत्र) सोम के विषय में ही है । द्राक्षासव (अंगूर का आसव, अर्क) के तुल्य ही सोम का भी आसव तैयार किया जाता था । सोम का अर्क निकालने की प्रक्रिया को सोम-सुति और सोमसुत्या कहते थे और इस प्रक्रिया से रस निकालने वाले को सोमसुत् और सोमसुत्वन् कहते थे । इसको पवित्र कार्य माना गया है ।

अश्नवत् सोमसुत्वा । ऋग्० १.११३.१८

सोम के मिश्रण से तीन प्रकार के पेय बनाये जाते थे । इन्हें आशिर् कहते थे । इन तीन मिश्रणों के नाम हैं - दध्याशिर् , यवाशिर् और गवाशिर् । दही के मिश्रण से बने पेय को दध्याशिर् , सत्तू आदि के मिश्रण से बने पेय को यवाशिर् और दूध आदि के मिश्रण से बने पेय को गवाशिर् कहते थे । तीनों का सामूहिक नाम है - त्र्याशिर् ।

सोमा इव त्र्याशिरः । ऋग्० ५.२७.५

मधु : - सोम के तुल्य ही मधु (शहद) का भी आसव और रसायन तैयार किया जाता था । ऋग्वेद में मधु के रसायन का उल्लेख है ।

मध्वो रसम् । ऋग्० ५.४३.४

रसायन बनाना : अथर्ववेद में वर्णन है कि वर्षा के जल में सोम आदि का आसव मिलाकर रसायन तैयार किया जाता था। इसके प्रयोग से मनुष्य दीर्घायु होता था।

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि । अ० ७.८९.१

सुरा : वेदों में अनेक स्थलों पर सुरा का उल्लेख है। यह मादक द्रव्य है, अतः इसे मांस भक्षण के तुल्य निन्दनीय बताया गया है। यजुर्वेद में सुरा बनाने वाले को सुराकार कहा गया है।

यथा मांसं यथा सुरा । अ० ६.७०.१

कीलालाय सुराकारम् । यजु० ३०.११

ऋग्वेद में सुरा बनाने वाले को सुरावत् कहा है (ऋग्० १.१९१.१०)। सुरा रखने के बर्तन को सुराधान, सुरा पीने के गिलास को सुराकंस कहते थे। सुरा पीने से होने वाली बीमारी को सुराम कहते थे। (ऋग्० १०.१३५.५)।

सुरा-निर्माण विधि : यजुर्वेद में सुरा बनाने की विधि का भी उल्लेख है। सुरा के कुछ भेदों का भी उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद अध्याय १९ के १ से २५ मंत्रों में सुरा के विभिन्न प्रकारों के निर्माण का वर्णन है। अंकुरित चावल, अंकुरित जौ और खील का चूरा, सोम रस में डालकर तीन रात तक रखने से सुरा तैयार होती है। महीधर ने मंत्र १ की व्याख्या में लिखा है कि उसमें ये चीजें भी डाली जाएँ - सर्ज की छाल, त्रिफला, सोंठ, पुनर्नवा, अश्वगंधा, धनिया, जीरा, हल्दी आदि २६ चीजें।

(क) शष्पाणि ... तोक्मानि ... सोमस्य लाजाः
सोमांशवो मधु । यजु० १९.१३

(ख) मासरं .. नग्नहुः । रूपमेतद् उपसदाम्
एतत् तिस्रो रात्रीः सुराऽऽसुता । यजु० १९.१४

(ग) सर्जत्वक् त्रिफला-सुण्ठी-पुनर्नवा० । यजु० १९.१ पर महीधर

मासर : यह सुरा चावल और सावाँ (श्यामाक) के भात तथा माँड को अंकुरित चावल, अंकुरित जौ और खील के चूरे में मिलाकर बनाई जाती थी। (यजु० १९.१४)

नग्नहु : यह सुरा अंकुरित चावल और भुने जौ के मोटे सत्तू को मन्थ में मिलाकर तीन रात रखने से तैयार होती थी। (यजु० १९.१४)। इसी नग्न शब्द से नान (Nan) शब्द बना है, जो रोटी या Bread के लिए प्रचलित है।

सुरा में प्रयुक्त खमीर के लिए किण्व (Yeast) शब्द है और खमीर उठाने (Fermentation) के लिए किण्वन शब्द है।

कौटिल्य : कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के सुराध्यक्ष अध्याय (अ० २.२५) में ६ प्रकार की शराब का उल्लेख किया है । ये हैं – मेदक, प्रसन्न, आसव, अरिष्ट, मैरेय और मधु । इन शराबों को किण्वों के द्वारा बनाने की विधि भी दी गई है । (कौ० अर्थ० पृष्ठ २४७ से २५०)

चरक संहिता : चरक ने मद्यवर्ग में १४ प्रकार की सुराओं का उल्लेख किया है । साथ ही इनसे होने वाले लाभ और हानि का भी वर्णन किया है । इनमें प्रमुख हैं - सुरा, मदिरा, अरिष्ट, शार्कर, गौड, माध्वीक, मधु आदि । इन सुराओं के सूक्ष्म भेद का भी वर्णन किया गया है । (चरक संहिता, भाग १ पृष्ठ ३९२ से ३९४)

सुश्रुत संहिता : सुश्रुत ने अध्याय ४५ के मद्यवर्ग में द्राक्षा (अंगूर), खजूर, जौ, बहेड़ा, गुड़, शक्कर, जामुन आदि से मद्य बनाने की विधि दी है । (सुश्रुत० पृष्ठ १८३ से १८५)

चरक और सुश्रुत ने इन लवणों का उल्लेख किया है - सैन्धव (सेंधा), सौवर्चल (सोंचर), बिड, उद्भिज्ज (रेह से बनाया हुआ), काल लवण (काला नमक),सामुद्रक (समुद्री), रोमक, गुटिकालवण, ऊषसूत, बालुकैल, शैलमूल (पर्वतों की जड़ से प्राप्त), आकरोद्भव (खानों से निकाला गया लवण) (चरक,पृष्ठ ४१२ से ४१३) । (सुश्रुत, पृष्ठ २०९) । नमक को रासायनिक भाषा में सोडियम क्लोराइड कहते हैं ।

सुश्रुत ने इन क्षारों का भी उल्लेख किया है -यवक्षार, स्वर्जिका क्षार (सज्जीखार), ऊषक्षार, पाकिम क्षार (शुद्ध शोरा या कलमी शोरा), टंकण क्षार (सुहागा, Borax) आदि । (सुश्रुत० पृष्ठ २०९)

लाक्षा : अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त (९ मंत्र) में लाक्षा (लाख) का उल्लेख है । इसके अन्य नाम दिए गए हैं - सिलाची, अरुन्धती, सरा, स्परणी, पतत्रिणी । यह वृक्ष का निस्यन्द (गोंद) न होकर सिलाची नामक स्त्रीकीट के पेट से प्राप्त होने वाला रस है । यह स्त्रीकीट पेड़ पर रेंगता है, अत: इसे सरा और स्परणी भी कहते हैं । इस कीट के शरीर पर रोएँ अधिक होते हैं, अत: इसे लोमशवक्षणा कहा गया है ।

यह लाख का कीट प्लक्ष (पिलखन), न्यग्रोध (बड़), भद्र (चीड़), अश्वत्थ (पीपल), खदिर (खैर) और धव के पेड़ पर होता है । यह टूटी हड्डी को जोड़ने, घाव, चोट आदि को ठीक करने में प्रयुक्त होती है । लाक्षारस, अलक्तक या महावर का प्रयोग प्राचीन काल में प्रसाधन के रूप में होता था । स्त्रियाँ इससे पैर के तलवे और ओष्ठ को रँगती थीं ।

केशवपद्धति (२८.४) में घाव, चोट, रक्तस्राव और हड्डी टूटने में लाक्षा के जल से सेचन का विधान है । घाव ठीक-करने के कारण इसे अरुन्धती भी कहते हैं । लाक्षाकीट के पंख होते हैं, अतः इसे पतत्रिणी कहा गया है । लाख की उत्पत्ति वर्षा काल की अंधेरी रात में विशेषरूप से होती हैं, अतः मंत्र में लाक्षा की माता रात्रि बताई गई है ।

रात्री माता, सिलाची, स्परणी नाम० । अथर्व० ५.५.१ और ३
भद्रात् प्लक्षात् अश्वत्थात् खदिराद् धवात्० । अथर्व० ५.५.५
अपामसि स्वसा लाक्षे० । अथर्व० ५.५.७

चीड़ का लीसा (चीपुद्रु) : अथर्ववेद के तीन मंत्रों में चीपुद्रु (चीड़) के लीसा (गोंद, Resin) का उल्लेख है और इसे चोट, घाव, फोड़ा आदि का इलाज बताया गया है । चीड़ के लीसा का अनेक कार्यों में उपयोग होता है । इसका मलहम भी बनाया जाता है । (अथर्व० ६.१२७.१ से ३)

विविध

प्राचीन भारत में रसायन की परम्परा कितनी विकसित थी, इसका विस्तृत विवरण P.C. Ray ने Hindu Chemistry में और डा० स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा' ग्रन्थ (पृष्ठ १५७ से २१३) में दिया है । यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण बातें दी जा रही हैं ।

१. आठ महारस : माक्षिक (Copper Pyrites), विमल, शिलाजतु (Bitumen), चपल (पारा, Mercury), रसक (Calamine), सस्यक (तूतिया, Blue Vitriol), दरद (Cinnabar) और स्रोतोऽञ्जन (Collyrium) ।

माक्षिकं विमलं शैलं चपलं रसकस्तथा ।
सस्यको दरदश्चैव स्रोतोऽञ्जनमथाष्टकम् ।
अष्टौ महारसाः । रसार्णव ७. २-३, वै०वि०पृष्ठ १६८

२. तीन प्रकार के क्षार : टंकण क्षार (सुहागा, Borax), यवक्षार (Potassium Carbonate) और सर्जिका (सज्जी या सोडा) । तिल, अपामार्ग, कदली, पलाश, शिग्रु, मोचक, मूलाद्रक, चिंचा (इमली), अश्वत्थ (पीपल), इन वृक्षों की लकड़ी की राख में वृक्ष-क्षार रहते हैं ।

त्रिक्षाराः टंकणक्षारो यवक्षारश्च सर्जिका ।
रसार्णव ५.३५-३६, वै०वि० पृष्ठ १६८

३. तांबे से सोना बनाना : यदि तांबे को रसक रस (Calamine) द्वारा तीन बार तपाएँ तो वह सोने में परिणत होता है ।

किमत्र चित्रं रसको रसेन ..
क्रमेण कृत्वाऽम्बुधरेण रंजितः
करोति शुल्बं त्रिपुटेन कांचनम् ।

रसरत्नाकर अ० १.३,वै०वि० पृष्ठ १५९

४. चांदी से सोना बनाना : यदि भेड़ के दूध से और अम्लों से कई बार भावित दरद द्वारा प्रतिकृत चांदी सोना बन जाती है ।

किमत्र चित्रं दरदः सुभावितः
पयेन मेष्या बहुशोऽम्लवर्गैः ।
सितं सुवर्णं बहुघर्मभावितं
करोति साक्षाद् वरकुंकुमप्रभम् ।

रसरत्नाकर अ० १.४, वै०वि० पृष्ठ १६०

५. चाँदी शुद्ध करना : चाँदी सीसा के साथ गलाने और भस्मों के साथ गलाने पर शुद्ध होती है । (वर्तमान (Cupellation) विधि से इसकी तुलना करें) ।

नागेन क्षारराजेन ध्मापितं शुद्धिमृच्छति ।
तारं त्रिवारनिक्षिप्तं पिशाची-तैल-मध्यमम् ।।

रसरत्नाकर अ० १.१३, वै०वि० पृष्ठ १६०

६. मोती आदि रत्नों को गलाना : रत्नों को वेतस अम्ल, अम्ल और कांजी (सिरका की खटाई) में शीघ्र घोला जा सकता है । मुष्काफल को सप्ताह तक वेतसाम्ल के साथ भावित करें, फिर पुटपाक विधि का अवलम्बन करें । इससे रत्न द्रव अवस्था को प्राप्त करते हैं ।

एक एव महाद्रावी पर्वतीनाथ- संभवः ।
किं पुनः त्रिभिः संयुक्तो वेतसाम्लाम्लकांजिकैः ।

रसरत्नाकर अ०१.५०-५१, वै०वि० पृष्ठ १६२

७. पारा जमाना (Fixation of mercury) **:** पारे को नीबू के रस, नवसार (नौसादर), अम्ल, क्षार,पंच लवण, त्रिकटुक (सोंठ, मिर्च, पीपल), शिग्रु के रस और सुरभि सूरण कन्द के साथ संमर्दित करने से यह आठों धातुओं के साथ जम जाता है ।

जम्बीरजेन नवसारघनाम्लवर्गैः
क्षाराणि पंचलवणानि कटुत्रयं च० । रस०अ० ३.१, वै० वि० पृष्ठ १६३

८. किन धातुओं में जंग जल्दी लगता है : स्थिरता के दृष्टि से धातुओं का यह क्रम है - सुवर्ण, चांदी, ताम्र, लोहा, वंग (Tin) और सीसा । इनमें सुवर्ण सबसे अधिक अक्षय है । लोहा, वंग और सीसा में जंग शीघ्र लगता है ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं तीक्ष्णं वंगभुजंगमाः ।
लोहकं षड्विधं तच्च यथापूर्वं तदक्षयम् ।

रसार्णव ७.८९-९० वै०वि० पृष्ठ १७०

९. धातुओं को मारना : ऐसा कोई लोहा या धातु नहीं है, जो गन्धकरूपी सिंह से न मारा जा सके या जो माक्षिकरूपी सिंह के गंधमात्र से न मारा जा सके ।

नास्ति तल्लोहमातंगो यन्न गन्धककेशरी ।
निहन्याद् गन्धमात्रेण यद्वा माक्षिककेशरी ।।

रसार्णव ७. १३८ से १३९

१०. अम्लराज (Aqua Regia) : कसीस (Green Vitriol),सैन्धव (Rock-salt), माक्षिक (Pyrites), सौवीर (Stibnite), व्योष (तीन मसाले- सोंठ, काली मिर्च और मिरचा), गन्धक, सौवर्चल (शोरा), मालती रस- इन सबको शिग्रु रस से सिक्त करके जो 'विड' बनता है,वह धातुओं को जला सकता है ।

इस योग में कसीस को गर्म करके सल्फ्यूरिक ऐसिड बनता होगा, जो शोरा पर प्रतिक्रिया करके नाइट्रिक ऐसिड और सैन्धव (Rocksalt) पर प्रतिक्रिया करके हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड देता होगा । इन दोनों का मिश्रण अम्लराज कहलाता है, जिसमें स्वर्ण और प्लैटिनम धातुएँ भी घुल सकती हैं ।

कासीसं सैन्धवं माक्षी सौवीरं व्योषगन्धकम् ,
सौवर्चलं व्योषका च मालती - रससंभवः ।
शिग्रुमूलरसैः सिक्तो विडोऽयं सर्वजारणः । रसार्णव ९.२-३

११. लोहे के तीन भेद : लोहे को तीन भागों में बाँटा गया है । (१) शुद्ध लोहा (Noble metal) तीन हैं - सुवर्ण, रजत और लोहा । (२) पूती लोह (अशुद्ध लोहा) दो हैं - नाग - (सीसा) और वंग (टिन) । (३) मिश्र लोहा तीन हैं - पीतल (Brass) , कांसा (Bronze) और वर्तलोह (Bell-metal) । धातु लोह साधारण लोहा है ।

शुद्धलोहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारम् ।
पूतीलोहं द्वितयमुदितं नागवंगाभिधानम् ।।
मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्तम् ।
धातुर्लोहे लुह इति मतः सोऽप्यनेकार्थवाची ।।

रसरत्न समुच्चय ५.१

१२. अभ्रक आदि : अभ्रक (Mica) तीन प्रकार के हैं - पिनाक, नागमण्डूक और वज्र। तीनों प्रकार के अभ्रक सफेद, लाल, पीले और काले, चार रंगों के पाये जाते हैं। (रसरत्न० २.१२)। चपल (पारा, Mercury) चार प्रकार का होता है - गौर ,श्वेत, अरुण और कृष्ण। प्रथम दो अच्छे हैं, अरुण और कृष्ण निकृष्ट हैं। (रसरत्न० २.१४६)। शिलाजतु (शिलाजीत) दो प्रकार का है - १. गोमूत्र की गंध वाला, २. कपूर की गंध वाला। यह हिमालय के पत्थरों से पिघलकर निकलता है। (रस० २.११०)। गन्धक तीन प्रकार के होते हैं - १. तोते की चोंच के रंग का, २. पीतवर्ण का, ३. श्वेत वर्ण का। श्वेत गन्धक अधम है। (रस० ३.१४-१५)। नवसार (नौसादर) करीर और पीलु की लकड़ी के पचन से बनता है। यह एक क्षार है। (रस० ३.१२७)।

१३. नकली सोना बनाना : 'धातुक्रिया' ग्रन्थ में नकली सोना बनाने की विधि दी गयी है। गंधक और पारे की सहायता से नकली सोना बनता है। (श्लोक १२३)।

१४. क्षार (Caustics) बनाना : सुश्रुतसंहिता में सूत्रस्थान के अध्याय ११ में क्षारों के भेद और उनके बनाने का विस्तृत वर्णन किया गया है। किन रोगों में इनका प्रयोग करना चाहिए, किनमें नहीं, इसका भी वर्णन किया है। (सुश्रुत,सूत्र० ११. १ से ३२)।

अध्याय - ३

वनस्पति-विज्ञान (Botany)

चारों वेदों और ब्राह्मणग्रन्थों आदि में वनस्पतिशास्त्र से संबद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है । इनमें वृक्ष-वनस्पतियों की उपयोगिता, इनका महत्त्व, वृक्ष-वनस्पतियों का वर्गीकरण, इनके उत्पत्तिस्थान, वृक्षों के लिए आवश्यक तत्त्व, इनका ओषधि के रूप में उपयोग, वृक्षादि में चेतनतत्त्व, मानवजीवन के लिए वृक्षादि की अनिवार्यता, वृक्ष-वनस्पतियों के लाभ आदि से संबद्ध सामग्री प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । उसका ही विवेचन यहाँ अभीष्ट है ।

वृक्ष-वनस्पतियों की उपयोगिता

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में वृक्ष-वनस्पतियों की उपयोगिता के विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है । वृक्ष मानवमात्र को प्राणवायु (Oxygen) देते हैं, इसलिए वे मानव के रक्षक, पोषक और माता-पिता हैं । मनुष्य प्राणवायु के बिना जीवित नहीं रह सकता है, अतः वृक्ष, वन, वनस्पतियों और ओषधियों को रक्षक बताया गया है ।

वृक्ष-वनस्पति केवल प्राणवायु के ही साधन नहीं हैं, अपितु उनका पंच- अंग अर्थात् पाँचों अंग उपयोगी हैं । ये पाँच अंग हैं - १. मूल (जड़), २. स्कन्ध, शाखा (तना और शाखाएँ), ३. पत्र (पत्ते), ४. पुष्प (फूल) और ५. फल । काष्ठ की प्राप्ति का एक मात्र साधन वृक्ष हैं । पत्ते, फूल और फल मानव जाति के आच्छादन, भरण-पोषण, भोज्यपदार्थ, रोगनाशन आदि के द्वारा मानव के लिए सुख-सुविधा के साधन हैं । ये वातावरण को शुद्ध करते हैं और प्राणिमात्र को आरोग्य प्रदान करते हैं ।

ऋग्वेद में एक पूरा सूक्त ओषधिसूक्त है ।[1] यह सूक्त प्रायः पूरा यजुर्वेद में भी आया है ।[2] ऋग्वेद के २३ मंत्रों में ओषधियों का महत्त्व प्रतिपादन किया गया है । इस सूक्त में महत्त्वपूर्ण बातें ये कही गयी हैं :

वृक्ष, वनस्पति और ओषधियों की उत्पत्ति मानव-सृष्टि से बहुत पहले हुई है । ये ओषधियाँ देवों से भी तीन युग पहले उत्पन्न हुई हैं, (मंत्र १) । ओषधियाँ संसार में सैकड़ों और सहस्रों स्थानों पर उत्पन्न होती हैं, (मंत्र २) । ओषधियाँ मानमाव के दुःख दूर करती हैं और उन्हें पार लगाती हैं, (मंत्र ३) । ओषधियाँ

---

१. ऋग्० १०.९७. १ से २३

२. यजु० १२.७५ से १०१

माता की तरह मानव की रक्षा करती हैं, अतः उन्हें 'मातरः' कहा गया है, (मंत्र ४)। ओषधियाँ विविध रोगों और प्रदूषण (अमीव) को दूर करती हैं। ऐसी ओषधियों के संग्रहकर्ता को वैद्य कहते हैं, (मंत्र ६)। ओषधियाँ दोषों को दूर करके सुरक्षा प्रदान करती हैं, (मंत्र ८)। ओषधियाँ चोट, घावों आदि को ठीक करती हैं और शरीर के दोषों को निकालती हैं, (इष्कृति, निष्कृति, मंत्र ९)। ओषधियाँ शरीर की निर्बलता दूर करती हैं और रोगों का निवारण करती हैं, (मंत्र १०)। ओषधियों से रोग समूल नष्ट हो जाते हैं, अतः कहा है कि 'रोग की आत्मा ही नष्ट हो जाती है' (मंत्र ११)। ओषधियाँ शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में अपना प्रभाव पहुँचाकर शरीर के सारे रोगों को बाहर निकालती है, (मंत्र १२)। ओषधियाँ रोग, शोक, शाप और मृत्यु के बन्धन से छुड़ाती हैं, (मंत्र १६)। ओषधियों में दिव्य शक्ति है। जो इनको अपना लेता है या इनका सेवन करता है, वह कभी रोगी नहीं होता, (मंत्र १७)। ओषधियाँ शक्ति और वीर्य प्रदान करती हैं, (मंत्र १८)। ओषधियाँ मनुष्य (द्विपाद्) और पशु (चतुष्पाद्) सबको नीरोगता प्रदान करती हैं, (मंत्र २०)। ओषधियाँ शरीर को ऊर्जा, शक्ति और उत्साह देती हैं, जिससे मनुष्य का शरीर और मन ओजस्वी, वर्चस्वी और प्रफुल्लित रहता है, (मंत्र ७)। ओषधियाँ शरीर के सामर्थ्य को अक्षुण्ण बनाए रखती हैं, (मंत्र २१, २२)।

अथर्ववेद के सैकड़ों मंत्रों में वृक्ष-वनस्पतियों और ओषधियों की उपयोगिता वर्णित है तथा इनके गुण-धर्म बताए गए हैं।[३] वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों आदि में वर्णित वृक्ष-वनस्पतियों आदि की संख्या इस प्रकार है- १. ऋग्वेद (६७), २. यजुर्वेद (८२), ३. अथर्ववेद (२८८), ४. ब्राह्मण ग्रन्थ (१२९), ५. उपनिषदें (३१), ६. कल्पसूत्र (५१९), ७. पाणिनिकृत अष्टाध्यायी एवं उसके वार्तिक (१८३), ८. पतंजलिकृत महाभाष्य (१०९), यास्ककृत निरुक्त (२६)।[४]

---

३. विस्तृत विवरण के लिए देखें, लेखक डा० कपिलदेव द्विवेदी - कृत ग्रन्थ 'वेदों में आयुर्वेद' पृष्ठ २३५ से २७७।

४. विस्तृत विवरण के लिए देखें - आचार्य प्रियव्रत शर्मा - कृत, द्रव्यगुणविज्ञान, भाग ४, पृष्ठ २०० से २१६।

वृक्ष-वनस्पतियों का महत्त्व

ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण में एक महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि वनस्पतियाँ प्राण हैं ।[१] वनस्पतियाँ प्राणिमात्र को प्राणशक्ति (आक्सीजन, Oxygen) देती हैं, अतः उन्हें प्राण कहा गया है । वृक्ष-वनस्पति मानवजाति की रक्षा के लिए अनिवार्य हैं, अतः उनकी रक्षा अनिवार्य है । यजुर्वेद में कहा गया है कि वृक्ष प्रदूषण को दूर करते हैं, अतः उन्हें 'शमिता' (शमनकर्ता, प्रदूषण-निरोधक) कहा गया है ।[२] कौषीतकि ब्राह्मण ने एक और महत्त्वपूर्ण बात कही है कि वृक्ष-वनस्पतियाँ परमात्मा का उग्र रूप हैं ।[३] ये जहाँ अपने उग्र रूप के कारण रोग, रोगाणु आदि को नष्ट करते हैं, वहीं इनका संहार संसार का संहार है । ये एक ओर रक्षक हैं, दूसरी ओर संहारक भी हैं । यही है. वृक्षों का शिव और रुद्र रूप । कौषीतकि ब्राह्मण में एक अन्य बात कही गयी है कि वृक्ष अग्नि है, अर्थात् इनमें अग्नि है और ये आग्नेय तत्त्व से युक्त हैं ।[४] इस अग्नि-तत्त्व के कारण ही वृक्षों में ऊष्मा है । वे अपना रस खींचते हैं, उसका परिपाक करते हैं, अतएव वृक्ष-वनस्पति में वृद्धि होती है । कौषीतकि ब्राह्मण में ही एक अन्य बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है कि वृक्ष-वनस्पति वही हैं, जिनमें शक्तिवर्धन, शक्ति-प्रदान और ऊर्जा देने की क्षमता हो ।[५] इसके लिए 'पयोभाजन' शब्द दिया गया है, जिसका अभिप्राय है - शक्तिप्रदान की क्षमता । यही अभिप्राय ऋग्वेद और यजुर्वेद के मंत्र का है, जहाँ ओषधियों को माता कहा गया है ।[६] वृक्ष माता की तरह संसार के पालक हैं और माता के दूध की तरह जीवमात्र के शक्ति के स्रोत हैं । यही भाव अथर्ववेद में भी दिया गया है कि वृक्ष-वनस्पति मनुष्यमात्र को जीवनीशक्ति देते हैं ।[७] वृक्ष-वनस्पतियों का अन्य महत्त्व यह बताया गया है कि ये विष-नाशक हैं, प्रदूषण को नष्ट करते हैं । इसके लिए मंत्र में 'विषदूषणी' शब्द दिया गया है ।[८] शतपथ ब्राह्मण में ओषधि का अर्थ ही यह दिया गया है कि जो ओष (अर्थात् दोषों को), धि (पी ले, समाप्त कर दें) ।[९]

---

१. प्राणो वनस्पतिः । कौषी० १२.७
प्राणो वै वनस्पतिः । ऐत० २.४ और १०
२. वनस्पतिः शमिता । यजु० २९.३४
३. यद् उग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन । कौषी० ६.५
४. अग्निर्वै वनस्पतिः । कौषी० १०.६
५. स (वनस्पतिः) उ वै पयोभाजनः । कौषी० १०.६
६. ओषधीरिति मातरः । ऋग्० १०.९७.४ । यजु० १२.७८
७. वीरुधः ..... पुरुषजीवनीः । अ० ८.७.४
८. उग्रा या विषदूषणीः .... ओषधीः । अ० ८.७.१०
९. ओषं धयेति तत ओषधयः समभवन् । शत० २.२.४.५

ओषधि का अर्थ

वैदिक साहित्य में ओषधि शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है । इसमें सभी प्रकार के वृक्ष-वनस्पति आ जाते हैं । ओषधि की सामान्य व्याख्या है - 'ओषधयः फलपाकान्ताः' जिनके फल पकते हैं । ओषधि शब्द की कई प्रकार से व्याख्या की गयी है । सायण ने इसकी व्युत्पत्ति दी है 'ओषः पाकः फलपाकः यासु धीयते इति ओषधयः ।' अर्थात् जिनके फल पकते हैं, उन्हें ओषधि कहते हैं । यास्क ने इसकी निरुक्ति दी है कि जो शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करके उसे धारण करती हैं या जो दोष, प्रदूषण आदि को दूर करती हैं ।[१०] शतपथ ब्राह्मण में भी ओषधियों को दोष-नाशक कहा है ।[११] ओषधियाँ शरीर के वात-पित्त-कफरूपी त्रिदोष को नष्ट करती हैं और ये वातावरण के प्रदूषण को नष्ट करती हैं ।

ओषधियों के भेद

ओषधियों के मुख्य रूप से दो भेद हैं और उन दोनों के दो-दो भेद होने से चार भेद हो जाते हैं । ओषधियों के मुख्य रूप से दो भेद हैं - वनस्पति और ओषधि । वृक्षों के लिए वनस्पति शब्द है और छोटे पौधों के लिए ओषधि शब्द । ऋग्वेद में वृक्ष और वनस्पति के लिए 'वनिन्' शब्द भी आता है ।[१२] वनस्पति के दो भेद किए गए हैं : वनस्पति और वानस्पत्य । बड़े वृक्षों के लिए वानस्पति शब्द है और अपेक्षाकृत छोटे वृक्षों के लिए वानस्पत्य शब्द है । इसी प्रकार ओषधि के भी दो भेद किए गए हैं : ओषधि और वीरुध् । छोटे पौधे के रूप में होने वाले को ओषधि (Herbs) और लता, गुल्म (झाड़ी) आदि के रूप में होने वालों को वीरुध् (Creepers) कहा गया है । अथर्ववेद में इन चार भेदों का उल्लेख है ।[१३] अथर्ववेद के एक मंत्र में ओषधि और वीरुध् के साथ तृण (Grass) का भी उल्लेख है ।[१४] इस प्रकार चार के स्थान पर पाँच ओषधियों के भेद हो जाते हैं ।

अथर्ववेद के एक मंत्र में वीरुध् के पाँच राज्यों (प्रमुख वर्गों) का वर्णन है । ये हैं - १. सोम, २. दर्भ (कुश), ३. भंग (भांग), ४. यव (जौ), ५. सहस् (शक्तिवर्धक चावल) । (अ० ११.६.१५)

---

१०. ओषधयः ओषद् धयन्तीति वा । ओषत्येना धयन्तीति वा । दोषं धयन्तीति वा । निरुक्त ९.२७

११. ओषं धयेति तत ओषधयः समभवन् । शत० २.२.४.५

१२. तमोषधीश्च वनिनश्च० । ऋग्० ७.४.५

१३. वनस्पतीन् वानस्पत्यान् ओषधीरुत वीरुधः । अ० ८.८.१४

१४. ओषधयो वीरुधस्तृणा । अ० ११.७.२१

ओषधियों का वर्गीकरण

वेदों में वृक्ष-वनस्पतियों (ओषधियों) का गुण-धर्म, रंग, फल आदि के आधार पर भी वर्गीकरण किए गए हैं । जैसे,

१. रंग के आधार पर : यह वर्गीकरण पौधों के रंग के आधार पर किया गया है । (क) बभ्रु (भूरे रंग वाली), (ख) शुक्र (सफेद रंग की), (ग) रोहिणी (लाल रंग की) (घ) पृश्नि (चितकबरी), (ङ) असिक्नी (श्याम वर्ण की), (च) कृष्णा (काले रंग की) ।[१५]

२. स्वरूप या आकार-प्रकार के आधार पर : (क) प्रस्तृणती (चारों ओर फैलने वाली, (ख) स्तम्बिनी (गुच्छों वाली या झाड़ीदार, Bushy) (ग) एकशुंगा (एक खोल वाली, One Spathed) जिसके एक खोल के अन्दर बहुत से फूलों आदि के गुच्छे भरे हों, (घ) प्रतन्वती (बहुत फैलने वाली, जो लंबाई में बहुत दूर तक फैले.Extending) , (ङ) अंशुमती (जिसमें से अनेक छोटे-छोटे रेशे या किल्ले फूटते हों, Rich in shoots), (च) काण्डिनी (पोरुओं वाली), (छ) विशाखा (अनेक शाखाओं वाली) ।[१६]

(३) गुण-धर्म के आधार पर : (क) जीवला (जीवनदायिनी या आयुवर्धक), (ख) नघारिषा (हानि न करने वाली), (ग) अरुन्धती (मर्मस्थल या घावों को भरने वाली), (घ) उन्नयन्ती (उन्नत करने वाली, शक्तिप्रद), (ङ) मधुमती (मधुर,मीठी), (च) प्रचेतस् (चेतना देने वाली), (छ) मेदिनी (पुष्टिकारक), (ज) उग्रा (तीव्र प्रभाव वाली), विषदूषणी (विषनाशक), (झ) बलासनाशनी (कफनाशक या कैंसर को नष्ट करने वाली) ।[१७]

४. फल आदि के आधार पर : (क) पुष्पवती (फूलों वाली), (ख) प्रसूमती (कली या अंकुरों वाली), (ग) फलिनी (फल वाली), (घ) अफला (बिना फलों वाली) ।[१८] ऋग्वेद और यजुर्वेद में इसी के लिए फलिनी, अफला, अपुष्पा (फूलरहित) और पुष्पिणी (फूलों वाली) नाम आए हैं ।[१९]

---

१५. या बभ्रवो याश्च शुक्रा० । अ० ८.७.१

१६. प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गा:० । अ० ८.७.४

१७. जीवलां नघारिषां ..... अरुन्धतीम् उन्नयन्तीम् ... ।
उग्रा या विषदूषणी:, बलासनाशनी:० । अ० ८.७.६ से१०

१८. पुष्पवती: प्रसूमती: फलिनीरफला: । अथर्व० ८.७.२७

१९. या: फलिनीर्या अफला:० । ऋग्० १०.९७.१५ । यजु० १२.८९

अथर्ववेद के एक मन्त्र में वृक्षों के मूल (जड़), अग्र (अग्रभाग, Tips) मध्य (मध्यभाग), पर्ण (पत्ता), पुष्प (फूल) का उल्लेख है और इनके मधुर होने का वर्णन है ।[1] यजुर्वेद के एक मंत्र में वृक्ष-वनस्पतियों के मूल, शाखा पुष्प और फल का उल्लेख है ।[2]

ओषधियों के उत्पत्ति-स्थान आदि

वेदों में वृक्ष-वनस्पतियों (ओषधियों) के उत्पत्ति-स्थानों का भी उल्लेख मिलता है । १. कुछ ओषधियाँ पर्वतों पर होती है ।[3] २. अनेक ओषधियाँ समतल भूमि पर होती हैं ।[4] ३. कुछ ओषधियाँ शैवाल (अवक, काई) में उत्पन्न होती हैं ।[5] ४. कुछ ओषधियाँ नदी-तालाबों आदि में उत्पन्न होती हैं ।[6] ५. समुद्र के अन्दर भी ओषधियाँ होती हैं । गोताखोर गहरे समुद्र के अन्दर से भी ऐसी ओषधियों को निकालते हैं ।[7] ६. कुछ ओषधियाँ भूमि से खोदकर निकाली जाती हैं ।[8] ७. कुछ खनिज ओषधियाँ भूगर्भ से निकाली जाती हैं ।[9] ८. कुछ ओषधियाँ प्राणिज हैं, जो जीवों के सींग आदि से उत्पन्न होती हैं ।[10] ९. कुछ ओषधियाँ प्राकृतिक तत्त्वों से भी प्राप्त होती हैं । कुछ प्राकृतिक तत्त्व सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी स्वयं ओषधिरूप हैं और ये विभिन्न रोगों को दूर करते हैं तथा प्राणिमात्र का उपकार करते हैं । इनके आधार पर ही सूर्यकिरण-चिकित्सा, वायु-चिकित्सा मृत्-चिकित्सा आदि का वेदों में बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है ।

इस प्रकार विभिन्न ओषधियाँ इन रूपों में प्राप्त होती हैं -

१. प्राकृतिक ओषधियाँ -सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, मिट्टी आदि ।

२. उद्भिज्ज या औद्भिद - पृथिवी को फाड़कर निकलने वाले वृक्ष-वनस्पति, ओषधियाँ आदि ।

३. खनिज द्रव्य - अंजन, सुवर्ण, रजत, सीसा आदि ।

---

१. मधुमन्मूलम्, अग्रम्, मध्यम्, पर्णम्, पुष्पम्० । अ० ८.७.१२
२. वनस्पतिभ्यः, मूलेभ्यः, शाखाभ्यः, पुष्पेभ्यः, फलेभ्यः । यजु० २२.२८
३. अधि पर्वतात् । अ० २.३.१
४. या रोहन्ति .. पर्वतेषु समेषु च । अ० ८.७.१७
५. अवकोल्बा:० । अ० ८.७.९
६. उदकात्मान ओषधयः । अ० ८.७.९
७. उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् । अ० २.३.४
८. नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणम्० । अ० २.३.३
९. पृथिव्या अध्युद्भृतम् । अ० २.३.५
१०. हरिणस्य .. अधि शीर्षणि भेषजम् । अ० ३.७.१

४. प्राणिज द्रव्य - मृग की सींग आदि ।

५. समुद्रज या समुद्रिय - शंख आदि ।

अतएव ऋग्वेद और यजुर्वेद में कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पतियाँ मानवसृष्टि से तीन युग पहले उत्पन्न हुई थीं और इनके उत्पत्तिस्थान सैकड़ों ही नहीं, अपितु सहस्रों स्थान हैं ।[११]

वनस्पतिशास्त्र-विषयक अन्य विवरण

महाभारत, मनुस्मृति, चरक, सुश्रुत और बृहत्संहिता आदि में वनस्पतिशास्त्र सें संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण बातें दी गयी हैं ।[१२] उनका सारांश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

पौधों का वर्गीकरण : ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णित ओषधियों का वर्गीकरण ऊपर दिया गया है ।[१३] इसमें फलिनी, अफला, अपुष्पा और पुष्पिणी इन चार भेदों का उल्लेख है । मनु ने आठ भेदों का उल्लेख किया है ।[१४] ये हैं : १. ओषधि (फल पकने पर जिनका पौधा नष्ट हो जाता है और जिनमें बहुत फल-फूल लगते हैं, जैसे गेहूँ, धान, चना आदि) । २. वनस्पति (बिना फूल लगे फलने वाले, जैसे - बड़, पीपल, गूलर आदि) । ३. वृक्ष (फूल लगने के बाद फलने वाले, जैसे आम, जामुन, अमरूद आदि) । ४. गुच्छ (जड़ से लता-समूह वाले, जैसे - मल्लिका आदि) । ५. गुल्म (एक जड़ से अनेक होने वाले, जैसे - ईख, कास आदि) । ६. तृण (घास) । ७. प्रतान (पतले रेशे वाले, जैसे- करेला, कद्दू आदि) । ८. वल्ली (भूमि से वृक्ष आदि के सहारे बढ़ने वाले, जैसे गिलोय आदि) ।

चरक-संहिता (सूत्रस्थान, १.३६-३७) ने वनस्पति, वानस्पत्य, ओषधि और वीरुध् ये चार भेद दिए हैं । चरक की टीका में चक्रपाणि ने वीरुध् के दो भेद दिए हैं - लता और गुल्म । सुश्रुत (सूत्रस्थान १.२३) ने भी ये भेद दिए हैं । वैशेषिक-दर्शन के भाष्य पर 'प्रशस्तपाद' ने ये भेद दिए हैं - तृण, ओषधि, वृक्ष, लता,

---

११. (क) या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
(ख) शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
ऋग्० १०.९१.१-२ यजु० १२.७५-७६

१२. विशेष विवरण के लिए देखें - डा० सत्यप्रकाश, वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, पृ० २४४-२५६ ।

१३. ऋग्० १०.९७.१५ । यजु० १२.८९

१४. ओषध्यः, वनस्पतयः, वृक्षाः, गुच्छगुल्मम्, तृणजातयः, प्रतानाः, वल्ल्यः ।
मनु० १.४६-४८

अवतान और वनस्पति । भागवतपुराण में ये भेद दिए हैं - वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध् और द्रुम ।[१५]

चरक ने ओषधियों को दो भागों में बाँटा है - १. विरेचन (Purgatives), २. कषाय (Astringent) । चरक ने सूत्रस्थान (अध्याय ४) में ६०० प्रकार के विरेचनों और ५०० कषायों का उल्लेख किया है । ५०० कषायों को १० वर्गों और ५० उपवर्गों में बाँटा है । इन ५० उपवर्गों में ५०० ओषधियों और वनस्पतियों को विभक्त किया है । सूत्रस्थान (अ० ४) में इनका विस्तृत विवरण है । चरक ने भोजन की दृष्टि से सूत्रस्थान (अध्याय २७) में १२ भेद दिए हैं ।[१६] ये हैं - १. शूकधान्य, २. शमीधान्य, ३. मांसवर्ग, ४. शाकवर्ग, ५. फलवर्ग, ६. हरितवर्ग, ७. मद्यवर्ग, ८. जलवर्ग, ९. गोरसवर्ग, १०. इक्षुवर्ग, ११. कृतान्नवर्ग (पके भोजन), १२. आहारयोगिवर्ग । इनमें सभी भोज्य पदार्थों का संग्रह है ।

सुश्रुतसंहिता ने सूत्रस्थान (अध्याय ३८) में वनस्पतियों और ओषधियों का विस्तृत वर्गीकरण दिया है । प्रत्येक वर्ग को गण कहा है और ३७ गणों का विवरण दिया है ।

भावप्रकाशनिघण्टु ने चरक और सुश्रुत दोनों के वर्गीकरण का समन्वय उपस्थित किया है ।

पौधों का नामकरण (Taxonomy) : भारतीय साहित्य में पौधों और वनस्पतियों के नाम कतिपय आदर्श शास्त्रीय पद्धति पर रखे गए हैं ।

पाश्चात्य जगत् में लिनियस (Linnaeus, 1707-1778, Swedish Botanist) की पद्धति पर पौधों का नामकरण होता है । सर विलियम जोन्स का कथन है कि यदि लिनियस को भारतीयों की प्राचीन भाषा संस्कृत का ज्ञान होता तो उन्होंने भारतीय पद्धति को अपनाया होता ।

'Linnaeus himself would have adopted them, had he known the learned ancient language of this country.'

भारतीय नामकरण की कुछ आधारभूत बातें :

१. किसी विशेष संबन्ध से : वटवृक्ष को 'बोधिद्रुम', क्योंकि बुद्ध को वहाँ ज्ञान प्राप्त हुआ था । सीता का शोक दूर करने के कारण 'अशोक या सीता-अशोक' नाम पड़ा । धतूरे को 'शिवशेखर' कहा गया ।

---

१५. वनस्पत्योषधिलता-त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः । भाग० पु० ३.१०.१९

१६. शूकधान्यशमीधान्यमांसशाकफलाश्रयान् । ....
दश द्वौ चापरौ वर्गौ कृतान्नाहारयोगिनाम् । चरक० सूत्र. २७. ६-७

२. विशेष गुणों के आधार पर : दद्रुघ्न (दाद-नाशक), अर्शोघ्न (बवासीर-नाशक), कुष्ठनाशिनी (कुष्ठनाशक)। दन्तधावन (दाँत साफ करने वाला, कत्था या बबूल)।

३. विशेष धर्मों या लक्षणों के कारण : फेनिल (रीठा, Soap-berry, फेन या झाग देने वाला)। चर्मिन् (भोजपत्र, केला, छिलका या पतले चर्म वाला), बहुपाद (गूलर या अंजीर का पेड़, बहुत जड़ों वाला होने के कारण, Fig-Tree) पादप (वृक्ष, जड़ से रस लेने वाला)।

४. पत्तों, फूल, जड़ आदि की विशेषता के कारण : द्विपत्र (दो पत्तों वाला), त्रिपत्र (तीन पत्तों वाला), सप्तपर्ण, सप्तच्छद (सात पत्तों वाला, सतौना)। सहस्रपर्ण और सहस्रकाण्ड (दर्भ, कुशा, सहस्रों पर्व होने के कारण), सहस्रपर्णी (शंखपुष्पी), शतमूली, त्वक्सार (बाँस, वंशवृक्ष)।

५. देशभेद के आधार पर : सौवीर, चाम्पेय, मागधी, वैदेही आदि।

६. परिस्थिति -भेद के आधार पर : जलज, पंकेरुह, सरोज, सरसिज, नीरज (कमल), नदीसर्ज (अर्जुन वृक्ष, नदी के किनारे होने वाला), वानप्रस्थ (महुआ, पलाशवृक्ष)।

अंकुर निकलना : बीज से अंकुर निकलने को अंकुरोद्भेद (किल्ला या कल्ला निकलना) कहते हैं। सुश्रुत ने अंकुर निकलने के लिए इन चार चीजों की आवश्यकता बताई है - अनुकूल ऋतु, क्षेत्र, जल और बीज।[1] षड्दर्शनसमुच्चय की गुणरत्न- कृत टीका में उल्लेख है कि वट (बड़), पिप्पल (पीपल), निम्ब (नीम) आदि के बीज वर्षा ऋतु में ओस और वायु के स्पर्श से अंकुरित होते हैं।[2]

पौधों का विवरण : ऋग्वेद , यजुर्वेद और अथर्ववेद में प्राप्त पौधों का विवरण ऊपर दिया गया है। विष्णुपुराण में धान के पौधों के इन अंगों का उल्लेख है - अंकुर, मूल (जड़), नाल, पत्र, पुष्प, क्षीर, तुष (भूसी), कोश, बीजकोश, तण्डुल (चावल), कण (कनी)।[3] सामान्यतया पौधे के दो अंग माने जाते हैं - मूल या पाद (जड़) और विस्तार (शेषभाग)। वृक्ष पाद या मूल से जल आदि ग्रहण करते हैं, अत: उन्हें 'पादप' (जड़ से रस आदि पीने वाले) कहा जाता है। बड़ आदि की शाखाओं से लटकने वाली जड़ों को शाखा-शिफा कहते हैं। पतली सूत सी लटकने वाली जड़ों को जटा या शिफा कहते हैं। इनके लटकने को अवरोह कहते हैं।

१. ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्याद् अंकुरो जायते। सुश्रुत० शारीर० २.३३

२. वट-पिप्पल-निम्बादीनां प्रावृट्जलधरनिनाद-शिशिर-वायु-संस्पर्शाद् अंकुरोद्भेदः। षड्दर्शन० गुणरत्न-टीका श्लोक ४९।

३. विष्णुपुराण ७.३७ से ३९

पेड़ के मुख्य धड़ (Stem) को प्रकाण्ड कहते हैं । जहाँ से शाखाएँ निकलना प्रारम्भ होती हैं, वहाँ तक के भाग को प्रकाण्ड या स्कन्ध कहते हैं । दृढ़ प्रकाण्ड वाले वृक्षों को वनस्पति और वानस्पत्य कहते हैं । जो स्वयं नहीं खड़ी हो सकती हैं, उन्हें लता, वल्ली, या व्रतति कहते हैं । महाभारत में वल्ली के विषय में कहा है कि यह वृक्ष से लिपट का ऊपर जाती है, अत: इसे वल्ली कहते हैं ।[४] प्रतानिन् और प्रतानिनी फैलने वाली लताओं को कहते हैं । प्रकाण्डों में पर्व या गाँठें भी होती हैं । प्रकाण्डरहित पौधों को अप्रकाण्ड या स्तम्ब कहते हैं । जिन पौधें की जड़ें और शाखाएँ छोटी होती हैं, उन्हें क्षुप (Shrub) कहते हैं । मुख्य शाखा को स्कन्ध और गौण शाखाओं को प्रशाखा या अनुशाखा कहते हैं ।[५] शाखाविहीन तना को स्थाणु या शंकु कहते हैं ।

एक पेड़ पर आने वाले पौधे को 'वृक्षोपरि वृक्ष' या परगाछा कहते हैं । परोपजीवी पौधों (Parasites) को 'वृक्षादनी' कहते हैं । अथर्ववेद में परोपजीवी बेल आदि के लिए 'वन्दना' शब्द है ।[६] वृक्षों में से जो दूसरे पौधे अंकुरित होते हैं, उन्हें 'वृक्षरुहा' कहते हैं । जो लता आदि अपना भोजन मुख्य पौधे से ग्रहण नहीं करते, केवल ये उसके आश्रित रहते हैं, उन्हें 'छिन्नरुहा' कहते हैं । जैसे गुडूची (गिलोय) । तैत्तिरीय संहिता में काई (शैवाल) के लिए अवक और अवका शब्द हैं ।[७] काई (Mosses, Algae) के लिए जलनीली और शैवाल शब्द भी हैं । कुकुरमुत्ता (Mushroom) के लिए छत्र, छत्रक, छत्रा और छत्राक शब्द हैं । इसके लिए सुश्रुत में कहा है कि यह पलाल (धान आदि का डंठल), बांस, गोबर (करीष) और गन्ने आदि के कूड़े पर उगता है । इसे उद्भिद कहते हैं ।[८]

पृथ्वी के नीचे होने वाले तनों और मूलों को 'कन्द' कहते हैं । ये जड़ के तुल्य होते हैं, इनका मूल ही बीज का काम देता है (यन्मूलमेव बीजं स कन्दः) । जैसे - इन्दीवर (कमल), वाराहकन्द, सूरणकन्द ।

पतन (शीघ्र गिर जाने) के कारण पत्ते को 'पत्र' कहते हैं । हरे रंग के कारण 'पर्ण' कहते हैं । पत्ते के डंठल को 'वृन्त' और नई कोंपल को पल्लव या किसलय कहते हैं । पत्तों वाली शाखाओं (Branches) को 'विस्तार' कहते हैं, पत्तों की

---

४. वल्ली वेष्टयते वृक्षम् । महा० शान्तिपर्व० १८४.१३

५. विष्णुपुराण ३.४.२५

६. वन्दनेव वृक्षम् । अ० ७.११५.२

७. अवकाम् अनूपदधाति । तै०सं० ५.४.२.१

८. उद्भिदानि पलालेक्षुकरीषवेणुक्षितिजानि । सुश्रुत, सूत्र० ४६.२९३

संख्या और आकार की दृष्टि से इनके नाम पड़े हैं - द्विपत्र, सप्तपर्ण, अश्वकर्णक, मूषिकपर्णी आदि ।

फूलों के नाम विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करते हैं । जैसे - सुमन, सुमनस्, प्रसून आदि । कली एवं विकसित पुष्पों के लिए विभिन्न नाम हैं - मुकुल, कली, कलिका, विकच, स्फुट आदि । फूल के गुच्छे के लिए गुच्छक या स्तबक शब्द हैं । फूल से संबद्ध कुछ शब्द हैं - मंजरी, वल्लरी, श्रीहस्तिनी (Sunflower), शतदल, केसर, किंजल्क, पराग, मकरन्द आदि ।

हरे या कच्चे फल को 'शलाटु' कहते हैं और सूखे मेवे को 'वान' (Dry-fruits) । कुछ फलों और उनकी गुठली या रस आदि का नाम वृक्ष के नाम पर रखे गए हैं । जैसे - प्लक्ष का फल प्लाक्ष, न्यग्रोध (बड़) का फल नैयग्रोध आदि ।

वृक्षारोपण : कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कृषिविभाग के अध्यक्ष (सीताध्यक्ष) के कर्तव्य बताए हैं कि उसे कृषिशास्त्र, शुल्बशास्त्र (खेतों का नापना आदि) और वृक्ष-विज्ञान की पूरी जानकारी होनी चाहिए ।[१] वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में एक पूरा अध्याय 'वृक्षायुर्वेदाध्याय:' नाम से दिया है ।[२] इसमें कुछ विशेष उल्लेखनीय बाते ये दी हैं ।

१. वृक्षों के लिए भूमि : वृक्षों के लिए कोमल भूमि अच्छी होती है । इसमें पहले तिल बो दें, जब तिल फूल जावें, तब उस भूमि को जोत दें । ऐसी भूमि में वृक्ष लगावें ।[३] काश्यप का कथन है कि दूब और वीरण (खस) वाली भूमि तथा नमी वाला स्थान वृक्षों के लिए उत्तम है । ऐसे स्थानों पर सुगन्धित फल वाले वृक्ष ठीक होते हैं ।[४]

२. लगाने योग्य वृक्ष : घर, उपवन और उद्यान में इन वृक्षों को पहले लगावें - अरिष्ट (नीम), अशोक, पुंनाग, शिरीष और प्रियंगु (ककुनी) ।[५] काश्यप ने इन वृक्षों को और जोड़ा है । ये हैं - उदुम्बर (गूलर), चम्पक, (चम्पा) और पारिजात । इन वृक्षों को शुभ बताया गया है । अन्य लगाने योग्य वृक्ष ये बताए हैं - केला, जामुन, दाडिम (अनार) और बकुल (मौलसरी) ।

---

१. सीताध्यक्ष: कृषितन्त्र-शुल्ब-वृक्षायुर्वेदज्ञ: । कौ०अर्थ० २.२४.१

२. बृहत्संहिता, अध्याय ५५, श्लोक १ से ३१

३. मृद्वी भू: सर्ववृक्षाणां हिता० । बृहत्० ५५.२

४. दूर्वावीरणसंयुक्ता: सानूपा मृदुमृत्तिका: । काश्यप

५. अरिष्टाशोकपुंनाग० । बृहत्० ५५.३

३. वृक्ष लगाना : वृक्षों के बीच की दूरी २० हाथ होनी चाहिए । यह उत्तम है । १६ हाथ मध्यम और १२ हाथ अधम ।[६] कौन सा वृक्ष कितना अधिक से अधिक फैलता है, इस आधार पर वृक्षों की दूरी तय करनी चाहिए । अग्निपुराण का कथन है कि वृक्षों को अधिक समीप लगाने देने से उनमें ठीक फल-फूल नहीं होते ।[७]

४.वृक्षों को सींचना : ग्रीष्म ऋतु में प्रातः-सायं, शीतकाल में एक दिन छोड़कर और वर्षा में भूमि सूखने पर ।[८]

५. वृक्षों का स्थानान्तरण : यदि किसी पेड़ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना है तो यह विधि करें : घृत, खस, तिल का तेल, शहद, वायबिडंग, दूध, गोबर इन सबको पीसकर जड़ से स्कन्ध तक लेप कर दूसरे स्थान पर ले जावें ।[९]

६. वृक्ष लगाने का मुहूर्त : बृहत्संहिता और अग्निपुराण में निर्देश है कि इन नक्षत्रों में लगाए गए वृक्ष ठीक ढंग से उगते हैं । ये नक्षत्र हैं - तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी और हस्त ।[१०] इसी प्रकार ऋतु और मास भी विविध वृक्षों के लिए बताए गए हैं । अजातशाख (कलमी से भिन्न) वृक्षों को शिशिर (माघ और फाल्गुन) में, कलमी वृक्षों को हेमन्त (मार्गशीर्ष और पौष) में, सुस्कन्ध (लंबी शाखा वाले) वृक्षों को वर्षा (श्रावण और भाद्र) में लगावें ।[११] काश्यप ने भी इसी पद्धति को अपनाने का उल्लेख किया है ।

७. कलम आदि लगाना : डाली काटकर लगाने को 'काण्डरोपण' कहते हैं । बृहत्संहिता और काश्यप का कथन है कि पनस (कटहल), अशोक, कदली (केला), जम्बू (जामुन), लकुच (बड़हल), दाडिम (अनार), द्राक्षा (अंगूर), पालीवत, बीजपूर (बिजौरा नीबू), अतिमुक्तक (माधवी, मोगरा बेला), इनकी डालियों को काटकर गोबर से मढ़कर लगाना चाहिए ।[१२]

दूसरी विधि कलम लगाने की है और वह इसकी अपेक्षा अच्छी है ।[१३] कलम लगाने के भी दो प्रकार हैं - १. एक पौधे की कटी डाली दूसरे पौधे की जड़ में

---

६. उत्तमं विंशतिर्हस्ता० । बृहत् ५५.१२ और १३
७. मिश्रैर्मूलैश्च न फलं मम्यग् यच्छन्ति पादपाः । अग्नि०
८. बृहत् ० ५५.९
९. घृतोशीरतिलक्षौद्र० । बृहत्० ५५.७
१०. ध्रुवमृदुमूलविशाखा ... पादसंरोपणे भानि । बृहत्० ५५.३१
११. अजातशाखान् शिशिरे .... प्ररोपयेत् । बृहत्० ५५.६
१२. एते द्रुमाः काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः । बृहत्० ५५.४-५
१३. मूलोच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीयाः० । बृहत्० ५५.५

आरोपित करना । २. कटी हुई डाली को दूसरे पौधे के स्कन्ध (तना, Stem) में आरोपित करना । इस आरोपण कार्य में शाखाओं को परस्पर जोड़ने के बाद गोबर से लेप करना आवश्यक है ।

जलीय प्रदेश : जलीय देशों में इन वृक्षों को लगावें - जामुन, बेंत, कदम्ब, अर्जुन, बिजौरा नीबू, अंगूर, बड़हल, अनार, कटहल, आँवड़ा ।

९. वृक्षों के रोग के कारण : वराहमिहिर और काश्यप का कथन है कि अधिक शीत, धूप और तीव्र वायु से वृक्षों को रोग हो जाते हैं । इससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं, अंकुर नहीं लगते, डालियाँ सूख जाती हैं और रस टपकने लगता है ।[१४]

१०. वृक्ष-चिकित्सा : रोगी वृक्ष की चिकित्सा के लिए उसके रुग्ण अंग को किसी शस्त्र से काटे और उस पर वायविडंग, घी और पंक (कीचड़) को मिलाकर वृक्ष पर लेप करें । बाद में दूध-मिश्रित जल से वृक्ष को सींचें ।[१५]

११. फल ने लगने की चिकित्सा : यदि किसी वृक्ष में फल नहीं लगता है तो उसकी चिकित्सा के लिए कुलथी, उड़द, मूंग, तिल और जौ इन सबको दूध में डालकर औटावे और बाद में उस दूध को ठंडा करके उससे वृक्ष को सींचें । इससे फल-फूल की वृद्धि होती है ।[१६]

इसी प्रकार अन्य श्लोकों में बीज बोते समय बरतने योग्य सावधानी, फल-फूल की वृद्धि के उपाय आदि का विवरण दिया गया है ।[१७]

खाद : खाद के लिए वैदिक शब्द करीष (गोबर, करसी) है । अथर्ववेद में गाय के गोबर (करीष) का उल्लेख है ।[१८] शतपथ ब्राह्मण में भी गोमय (गोबर) का उल्लेख मिलता है ।[१९] ऋग्वेद में गोमय (गोबर) शब्द का प्रयोग मिलता है ।[२०] खाद की उपयोगिता और कृषि में इसकी आवश्यकता का संकेत अथर्ववेद के एक मंत्र में मिलता है । इसमें कहा गया है कि जौ का पलाल (भूसा) और तिलपिंजी (तिल की खली, Oilcake) के मिश्रण को डालने से पेड़ों की नई और पुरानी बीमारियाँ दूर होती हैं और वृक्ष नीरोग रहते हैं ।[२१]

---

१४. शीतवातातपैः रोगो जायते पाण्डुपत्रता । बृहत्० ५५.१४

१५. चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् ।
विडंग-घृत-पंकाक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ बृहत्० ५५.१५

१६. फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः।
शृतशीतपयःसेकः फल-पुष्प-समृद्धये ॥ बृहत्० ५५.१६

१७. बृहत्० ५५.१७ से ३०   १८. अस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः । अ० ३.१४.३

१९. गोमयेन । शत०१२.४.४.१   २०. गोमयं वसु । ऋग्० १०.६२.२

२१. यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिंज्या । वीरुत् क्षेत्रियनाशनी० । अ० २.८.३

बृहत्संहिता[२२] और अग्निपुराण[२३] के वृक्षायुर्वेद अध्याय में खाद का विस्तृत वर्णन मिलता है । बृहत्संहिता में वृक्ष, गुल्म और लताओं के फल-फूल की वृद्धि के लिए यह खाद बताई है - दो आढक भेड़ और बकरी की विष्ठा (मैंगन), एक आढक तिल, एक प्रस्थ जौ का आटा या सत्तू, एक तुला गोमांस, इन्हें एक द्रोण पानी में एक साथ मिलाकर सात दिन रख दें । फिर इस मिश्रण को पेड़ों की जड़ में दे ।[२४] १ प्रस्थ = लगभग ६ सौ ग्राम, १ आढक = ढाई किलोग्राम, १ तुला = लगभग ४ किलोग्राम, १ द्रोण = १० लिटर । अग्निपुराण में भी प्राय: यही विवरण दिया गया है ।

वल्लरी (लता) आदि की ठीक-वृद्धि के लिए यह प्रयोग बताया गया है - पिसा हुआ धान, माष (उड़द), तिल, जौ का चूर्ण (चूरा), सड़ा मांस और हल्दी का मिश्रण लता की जड़ में दें । [२५] इसी प्रकार कपित्थ (कैथ), तिन्तिडी (इमली), आमलकी (आँवला) आदि की ठीक वृद्धि के लिए प्रयोग बताए गए हैं । [२६] खाद के रूप में मछली के धोवन के पानी का प्रयोग उपयोगी बताया गया है । इससे पौधों के पत्ते अच्छे निकलते हैं ।[२७] मछली के धोवन का ठंडा पानी आम के लिए भी बहुत लाभप्रद बताया गया है ।[२८] अन्य पौधों की वृद्धि के लिए भी मछली का पानी विशेष लाभप्रद बताया गया है ।[२९]

चक्रदत्त ने अपने 'चिकित्सासंग्रह' ग्रन्थ के वातव्याधि-चिकित्सा नामक खंड में एक ऐसा तेल बनाने की विधि दी है, जिसे सूखे वृक्ष की जड़ में डाल देने से उस वृक्ष की जड़ से नए अंकुर निकल आते हैं और फल-फूल आ जाते हैं ।[३०]

शाङ्र्गधर-पद्धति के वृक्षायुर्वेद (उपवनविनोद) प्रकरण में 'कुणपजल' नामक एक द्रव खाद (Liquid Compost) का वर्णन है, जो सभी पेड़ों के लिए लाभप्रद है । [३१]

---

२२. बृहत्संहिता, अध्याय ५५ २३. अग्निपुराण, अध्याय २८१

२४. अविकाजशकृत्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम् ।
.... वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा ।। बृहत्० ५५.१७-१८

२५. बृहत्० ५५.२१ २६. बृहत्० ५५.२२ से २६

२७. मत्स्याम्भसा मांसजलैश्च सिक्तम् । वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला । बृहत्० ५५.२६

२८. मत्स्योदकेन शीतेन आम्राणां सेक इष्यते । अग्निपुराण

२९. मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनाम् । अग्निपुराण

३०. अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमा: ।
सिक्ता: पुन: प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिन: ।। चिकित्सा०

३१. कुणपस्तु भवेदेव तरूणां पुष्टिकारक: ।। शाङ्र्ग० श्लोक १७१-१७४

वृक्षों की हरियाली का कारण अवितत्त्व (Chlorophyll)

अथर्ववेद के एक मंत्र में विशेष महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि वृक्षों में हरियाली का कारण अवितत्त्व है । इस मंत्र में Chlorophyll (क्लोरोफिल) को अवि नाम दिया गया है । अवि का अर्थ है - रक्षक तत्त्व (Life-saving element) । यह शब्द रक्षा अर्थ वाले अव् धातु से बना है (अव् रक्षणे) । यह वृक्ष की रक्षा करता है और उसका पोषण करता है । मंत्र में कहा गया है कि यह अवितत्त्व ऋत (Tissues) से घिरा हुआ है । इसके कारण ही वृक्ष-वनस्पतियाँ हरे हैं ।

अविर्वै नाम देवता-ऋतेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः।। अ० १०.८.३१

वन और वृक्षों का संरक्षण

वेदों में वनों और वृक्षों के संरक्षण पर बहुत अधिक बल दिया गया है । यजुर्वेद का कथन है कि वृक्ष-वनस्पतियों को न काटो । इनको जल से सींचो और पुष्ट करो । ऋग्वेद में कहा गया है कि वृक्षों को न काटो, क्योंकि ये प्रदूषण को नष्ट करते हैं ।

(क) मा- ओषधीर्हिंसीः । यजु० ६.२२
(ख) अपः पिन्व, ओषधीर्जिन्व । यजु० १४.८
(ग) मा काकम्बीरम् उद् वृहो वनस्पतिम् ।
अशस्तीर्वि हि नीनशः । ऋग्० ६.४८.१७

वन और वृक्ष मानव के रक्षक

ऋग्वेद में मानव के रक्षक के रूप में वन, वृक्ष ओषधियों और पर्वतों का उल्लेख किया गया है । एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति मनुष्य के बहुत उपकारक हैं । अतएव ओषधियों को 'निःषिध्वरी' (उपकारक, हितकारी, मंगलदायक) कहा गया है ।

(क) आप ओषधीरुत नोऽवन्तु , द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः।।
ऋग्० ५.४१.११
(ख) निषृषिध्वरीरोषधीरापः । ऋग्० ५.५९.२
(ग) निषृषिध्वरीस्त ओषधीः । ऋग्० ३.५५.२२

वृक्ष-वनस्पतियाँ शिव के रूप हैं : शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि वृक्ष-वनस्पतियाँ (ओषधियाँ) पशुपति अर्थात् भगवान् शिव हैं । यजुर्वेद के रुद्राध्याय (अध्याय १६) में शिव को वृक्ष, वनस्पति, वन, ओषधि और लता-गुल्म (झाड़ी) का स्वामी बताया गया है । भगवान् शिव को शिव इसलिए कहा जाता है कि वे विष का पान करते हैं और अमृत प्रदान करते हैं । वृक्ष-वनस्पतियों का शिवत्व यह है कि वे कार्बन डाई-आक्साइड (Co_2) रूपी विष को पीते हैं और आक्सीजन (O_2) रूपी अमृत (प्राणवायु) को छोड़ते हैं । शिव का दूसरा रूप रुद्र (भयंकर) है । वह संसार का नाशक और संहारक है । वृक्षों का रुद्र रूप यह है कि यदि वृक्षों को अंधाधुंध काटा जाता है और वृक्ष-संपदा को नष्ट किया जाता है तो संसार को जीवनरक्षक तत्त्व प्राणवायु (O_2) प्राप्त नहीं होगी और संसार का स्वयं विनाश हो जाएगा ।

(क) ओषधयो वै पशुपतिः । शत० ब्रा० ६.१.३.१२

(ख) वनानां पतये नमः । वृक्षाणां पतये नमः ।

ओषधीनां पतये नमः, कक्षाणां पतये नमः ।। यजु० १६.१७ से १९

वृक्ष-वनस्पतियों के लाभ : यजुर्वेद में वृक्ष-वनस्पतियों के लाभ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वृक्ष मधुर फल देते हैं । ये वर्षा करने वाले बादलों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और पृथ्वी को दृढ बनाते हैं ।[१] ऋग्वेद में कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति हमारे रक्षक हैं । न हम इनकी उपेक्षा करें और न ये हमारा साथ छोड़ें ।[२] इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य और वृक्ष परस्पर संबद्ध हैं । दोनों एक दूसरे के उपकारक हैं । वृक्ष आक्सीजन द्वारा मनुष्य को जीवनीशक्ति देते हैं और मनुष्य आदि कार्बन डाई-आक्साइड देकर वृक्षों को पोषक भोजन देते हैं ।

---

१. वनस्पतिः .... सुपिप्पलो देवम् इन्द्रम् अवर्धयत् ।
पृथिवीम् अदृंहीत् । यजु० २८.२०

२. अयमस्मान् वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् । ऋग्० ३.५३.२०

वेदों में वृक्ष-वनस्पतियों और वनों के लाभों का विशद वर्णन है । ऋग्वेद के एक सूक्त में वन का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि वन जंगली पशु-पक्षियों का रक्षक है । इसमें फल-फूल बहुत मात्रा में होते हैं । यहाँ सुगन्धित वृक्षों की मधुर गन्ध मन को शान्ति देती है । जंगली पशु निर्भीक होकर विचरण करते हैं । शान्त और एकान्त स्थान होने के कारण यहाँ निर्भयता रहती है ।[१] वृक्ष धन के स्रोत हैं ।[२] वृक्ष फल-फूल के धारक और पृथिवी के पोषक हैं ।[३] वृक्ष-वनस्पतियाँ सुख और शान्ति के दाता हैं ।[४] वनस्पतियाँ शक्ति के स्रोत हैं । ये रोगों को नष्ट करके मनुष्यमात्र को शक्ति प्रदान करती हैं ।[५] वनस्पतियाँ सुख, प्रसन्नता और ऐश्वर्य देती हैं ।[६] वृक्ष-वनस्पतियाँ सुख-शान्ति देती हैं ।[७] वनस्पतियों में जल का सारभाग रहता है, अतः वे पोषक और शक्तिवर्धक होती हैं । ये मनुष्य को पवित्र करती हैं ।[८]

वनस्पतियाँ, ओषधियाँ और लता-गुल्म ये रोगों को नष्ट करते हैं और साथ ही मानसिक विकृतियों (पापभावना) को भी नष्ट करते हैं ।[९] अथर्ववेद में एक महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि वृक्ष-वनस्पतियों में ईश्वरीय -शक्ति (विराट् शक्ति) विद्यमान है । इस आन्तरिक ऊर्जा के कारण ही वृक्षों के सभी घाव,काट-छाँट या टूट-फूट साल भर के अन्दर ठीक हो जाते हैं ।[१०] यजुर्वेद में वृक्ष-वनस्पतियों का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये तेजस्विता (ओज), शक्ति, उत्साह (जूति), पराक्रम (भाम) और शारीरिक बल (इन्द्रिय) देते है। ।[११] ओषधियाँ रोगनाशक हैं, बल, ऊर्जा और तेजस्विता देती हैं ।[१२] वेदों में अश्वत्थ (पीपल) का बहुत गुणगान है । इसमें देवों का निवास बताया गया है ।[१३] इसका अभिप्राय यह ज्ञात होता है कि पीपल के वृक्ष से आक्सीजन की मात्रा बहुत अधिक निकलती है, अतः यह प्राणवायुरूपी अमृत देने के कारण दिव्य गुणों से युक्त है ।

---

१. ऋग्० १०.१४६. १ से ६
२. ऋग्० ५.४१.८
३. ऋग्० २.१३.७
४. ऋग्० ७.३५.५
५. ऋग्० ६.४७.२७ । अ० ३.२४.१
६. ऋग्० ६.४९.१४
७. अथर्व० १९.१०.५
८. अ० १८.३.५६
९. अ० ११.६.१
१०. अ० ८.१०.१८
११. यजु० २१.५६
१२. यजु० १२.८१
१३. अश्वत्थो देवसदनः । अ० ५.४.३

वृक्ष-वनस्पतियों के उपकारक तत्त्व

वृक्ष-वनस्पतियों के माता-पिता : अथर्ववेद में वृक्ष-वनस्पतियों के माता-पिता का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मेघ (पर्जन्य) इनका पिता और भूमि इनकी माता है । पर्जन्य के विषय में कहा है कि यह 'भूरिधायस्' अर्थात् अनेक प्रकार से पोषक है और 'शतवृष्ण्य' अर्थात् सैकड़ों शक्ति से युक्त है । इसका अभिप्राय है कि पर्जन्य (मेघ) वृक्ष आदि का पिता के तुल्य पालक है और इन्हें अनेक प्रकार की शक्ति देता है । पृथिवी को माता कहते हुए उसे 'भूरिवर्पस्' अर्थात् अनेक रूपों वाली कहा है । पृथिवी से नाना प्रकार के वृक्ष, वनस्पति और ओषधियाँ निकलती हैं । मेघ पिता के तुल्य वृक्षादि का पालन करते हैं और पृथिवी माता के तुल्य उनका संवर्धन, पोषण और रक्षण करती है ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ।। अ० १.२.१

वृक्ष-वनस्पतियों के पाँच पिता : अथर्ववेद में वृक्षादि के पाँच पिताओं का उल्लेख है । ये हैं : १. पर्जन्य (मेघ), २. मित्र (प्राणवायु, Oxygen) ३. वरुण (जल, Hydrogen), ४. चन्द्र (चन्द्रमा), ५. सूर्य । इन पाँचों को 'शतवृष्ण्य' अर्थात् सैकड़ों शक्ति से युक्त कहा गया है । पर्जन्य वर्षा के द्वारा ओषधियों को जीवन प्रदान करता है । मित्र (आक्सीजन, Oxygen) वृक्षों का जीवन है । वरुण (जल) से ही वृक्षों को शक्ति प्राप्त होती है । चन्द्रमा ओषधियों को शीतलता और शक्ति प्रदान करता है । सूर्य की ऊर्जा से ही वृक्षों आदि में प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis) की प्रक्रिया होती है । इस प्रकार ये पाँचों वृक्ष-वनस्पतियों के पिता हैं ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यम्, मित्रम्, वरुणम्, चन्द्रम्, सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।
अ० १.३.१ से ५

पृथिवी : वृक्ष-वनस्पतियों के आधार के रूप में पृथ्वी का बहुत गुणगान मिलता है । पृथिवी ओषधियों की माता है और वह सभी प्रकार के वृक्ष-वनस्पतियों को जन्म देती है । पृथिवी संसार की पालक है । वह ओषधियों और वृक्ष-वनस्पतियों का आधार है । वृक्ष-वनस्पतियों का पिता द्युलोक (पर्जन्य) है, पृथिवी माता है और समुद्र, वर्षा का अधार होने से, ओषधियों का मूल (Root) है ।

(क) विश्वस्वं मातरमोषधीनाम् । अ० १२.१.१७

(ख) भुवनस्य गोपा, वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् । अ० १२.१.५७

(ग) यासां द्यौः पिता, पृथिवी माता, समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
अ० ३.२३.६

पर्जन्य (मेघ), जल और मरुत् (वायु) : अथर्ववेद के एक सूक्त में वर्षा को सृष्टि का प्राण बताया गया है और इसका विस्तृत वर्णन किया गया है ।[१] वर्षा से ही ओषधियाँ (वृक्ष-वनस्पतियाँ) उत्पन्न होती हैं और उनको जीवन-शक्ति प्राप्त होती है । वर्षा को ओषधियों का प्राणदाता और रक्षक बताया गया है । जल से वृक्ष-वनस्पतियों की वृद्धि होती है । अथर्ववेद के एक सूक्त में मरुत् (वायु) देवों का गुणगान है ।[२] इसमें कहा गया है कि मरुत् देवगण ही समुद्र से जल को भाप के रूप में ऊपर ले जाते हैं, मेघों की रचना करते हैं और जल की वर्षा करते हैं । ये वृक्ष-वनस्पतियों को रस प्रदान करते हैं और उनमें जीवन-संचार करते हैं ।

(क) यदा प्राणो अभ्यवर्षीत्, ओषधयः प्र जायन्ते । अ० ११.४.१७

(ख) य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु । अ० ४.२७.२

सोम (चन्द्रमा) : वेदों में सोम को ओषधियों का राजा बताया गया है ।[३] सोम को वनस्पतियों का पालक और पोषक कहा गया है । वह वनस्पतियों को हरियाली और मधुरता देता है ।[४] सोम के लिए कहा गया है कि वह शक्ति, बल, तीव्र गति, सुन्दरता और कान्ति देता है ।[५] सोम के लिए एक महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि यह रस के रूप में वृक्ष-वनस्पतियों के केन्द्र (Nucleus) में रहता है ।

सीदन् श्येनो न योनिमा । ऋग्० ९.६५.१९

सूर्य : वृक्ष-वनस्पतियों पर सूर्य का बहुत प्रभाव पड़ता है । ऋग्वेद के एक मंत्र में सूर्य की किरणों से प्रकाश-संश्लेषण-प्रक्रिया (Photo-synthesis) का संकेत मिलता है । मंत्र का कथन है कि वृक्ष सूर्य की सात रंग की किरणों से शक्तिप्रद ऊर्जा प्राप्त करते हैं । अन्य मंत्र में कहा गया है कि सूर्य के कारण ही सभी प्रकार के वृक्ष-वनस्पतियों में पाक क्रिया होती है । इसी से सब फल और अन्न आदि पकते हैं । सूर्य ही फल-फूल वाली सभी ओषधियों को शक्ति प्रदान करता है । सूर्य ही अपनी ऊष्मा से फलों आदि में मधुरता उत्पन्न करता है और फल-फूल की वृद्धि करता है ।

(क) अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं० ।
सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ।। ऋग्० ८.७२.१६

(ख) स ओषधीः पचति विश्वरूपाः । ऋग्० १०.८८.१०

(ग) देवस्त्वा सविता मध्वाऽनक्तु
सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । यजु० ६.२

१. अ० ११.४.१ से २६
२. अ० ४.२७.१ से ७
३. अ० ५.२४.७ । ६.९६.१ । ८.१.१७
४. ऋग्० ९.५.१० । ९.११.३
५. ऋग्० ९.६५.१८

अग्नि : अनेक मंत्रों में वर्णन किया गया है कि वृक्ष-वनस्पतियों के अन्दर अग्नि विद्यमान है । उसके कारण ही वृक्षों आदि की वृद्धि होती है । उसी से फल-फूल पकते हैं । अग्नि के परिपाक से ही फलों में मधुरता आती है । ऋग्वेद का कथन है कि वृक्ष-वनस्पति अग्नि को अपने गर्भ में धारण करते हैं ।[६] अग्नि वनस्पतियों का स्वामी है ।[७] वृक्ष-वनस्पतियों और लताओं में फल-फूल आदि की वृद्धि अग्नि के कारण ही होती है ।[८] जो अग्नि द्यावापृथिवी में सर्वत्र व्याप्त है, वही ओषधियों में भी विद्यमान है ।[९] वह अमर (अमर्त्य) और चेतन अग्नि वृक्ष-वनस्पतियों में विद्यमान है ।[१०] उस अग्नि ने ही ओषधियों में चेतना दी है और विविध रूप वाले तथा सौभाग्यशाली वनों को जन्म दिया है ।[११] अग्नि के द्वारा सभी वनस्पतियों में पाकप्रक्रिया होती है और फल आदि पकते हैं ।[१२] अथर्ववेद का कथन है कि अग्नि के कारण ही ओषधियों और फल-फूल में मधुरता (मिठास) आती है ।

येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् । अ० ४.२३.६

वृक्षों पर कलम लगाना (Grafting) : अनेक मंत्रों में वृक्षों पर कलम लगाने का उल्लेख है । नर वृक्ष पर नर वृक्ष की कलम लगाना और नारी (स्त्रीलिंग) वृक्ष पर नर (पुं०) वृक्ष की कलम लगाना, दोनों प्रकार के प्रयोगों का उल्लेख है । १. खदिर (खैर) के पेड़ पर अश्वत्थ (पीपल) का पेड़ लगाना । २. शमी वृक्ष (स्त्री०) पर अश्वत्थ (पीपल, पुं०) को लगाना । ३. मदावती (स्त्री०) वृक्ष पर विहल्ह (पुं०) की कलम लगाकर आबयु वृक्ष को तैयार करना ।

(क) पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि । अ० ३.६.१
(ख) शमीमश्वत्थ आरुढस्तत्र पुंसवनं कृतम् । अ० ६.११.१
(ग) विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता । अ० ६.१६.२

---

६. ऋग्० ७.४.५ । १०.९१.६
७. अ० ५.२४.२
८. ऋग्० १.६७.९
९. ऋग्० १.९८.२
१०. ऋग्० ६.१२.३
११. ऋग्० ३.१.१३
१२. ऋग्० १०.८८.१०

पौधों में लिंगभेद : उपर्युक्त तीन मंत्रों में पुरुष, पिता, माता एवं पुंसवन (पुंलिंग वृक्ष को जन्म देना) शब्दों से स्पष्ट है कि वृक्षों में भी नर और नारी होते हैं तथा लिंगभेद होता है। शमी और अश्वत्थ का संयोग तथा मदावती और विहल्ह का संयोग पुरुष और स्त्री के संयोग के तुल्य है। उससे नए वृक्ष का जन्म होता है।

हारीतसंहिता (शरीरस्थान, अ० १) में पौधों के लिंगभेद और स्त्री-पुरुष-समागम की अनिवार्यता का स्पष्ट निर्देश है।

संयोगेन विना प्राज्ञ कथं गर्भो न जायते ।
संयोगेन विना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत् ।।
तत्र स्त्री-पुरुष-गुणा वर्तन्ते समयोगतः ।
आम्रपुष्पं फलं तद्वद् बीजं शुक्रमयं विदुः ।। हारीत० शरीर० १

चरकसंहिता के 'कल्पस्थान' प्रकरण में वत्सक पौधे के संबन्ध में स्त्री-पुरुष का भेद किया गया है। १. जिस वत्सक के फल बड़े हों, फूल सफेद हों, पत्ते चिकने हों, वह नर-वत्सक हैं। २. जिसके फूल श्याम या अरुण हों तथा फल और डंठल छोटे हों, वह नारी-वत्सक है।

बृहत्फलः श्वेतपुष्पः, स्निग्धपत्रः पुमान् भवेत् ।
श्यामा चारुणपुष्पा स्त्री, फलवृन्तैस्तथाऽणुभिः ।। चरक, कल्प० ५.५

वृक्ष आक्सीजन (Oxygen) देते हैं : ऋग्वेद और सामवेद का कथन है कि वृक्षों के अन्दर अग्नि (Oxygen) है। वृक्ष अपनी जड़ से जो जल खीचते हैं, उस जल से यह अग्नि (Oxygen) तैयार होती है। सभी वृक्ष, लता और वनस्पतियाँ इस गर्भस्थ अग्नि (Oxygen) को बाहर फेंकती हैं। इस मंत्र में प्रकाश-संश्लेषण-प्रक्रिया (Photosynthesis) का संकेतमात्र है। इस मंत्र में आक्सीजन को 'समानवायु' नाम दिया गया है। अश्वत्थ (पीपल) में आक्सीजन की मात्रा बहुत अधिक है, अतः उसे 'देवसदन' अर्थात् देवों का निवास या ऊर्जा का भंडार कहा गया है।

(क) तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं,
तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित् समानं वनिनश्च वीरुधो - अन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ।।
ऋग्० १०.९१.६ । साम० १८२४

(ख) अश्वत्थो देवसदनः । अ० ६.९५.१

अन्नों में प्राण और अपान तत्त्व : वेदों में अन्नों का विभाजन प्राण और अपान तत्त्वों के आधार पर किया गया है। जिनमें आग्नेय तत्त्व (Oxygen) अधिक

है, उन्हें प्राण-शक्तियुक्त या प्राणबहुल कहा है तथा जिनमें सोमीय तत्त्व (Hydrogen) अधिक है, उन्हें अपानशक्तियुक्त कहा है। प्राणशक्तियुक्त अन्नों में जौ, गेहूँ आदि की गणना है। ये शारीरिक शक्ति और पौष्टिकता प्रदान करते हैं। जिनमें सोमीयशक्ति अधिक होती है, उनमें व्रीहि (चावल) आदि की गणना है। ये अन्न कोमलता, बौद्धिक शक्ति और मृदुता आदि प्रदान करते हैं। वेदों में विटामिन (Vitamin) के स्थान पर प्राण-अपान नाम दिए गए हैं। जौ-चावल आदि का ओषधि के रूप में प्रयोग होता था। अत: इन्हें भेषज (ओषधि, दवा) कहा गया है। अन्न और अन्नाद्य (अनाज) को सदा स्वच्छ और कीटाणुओं से रहित रखने का भी उपदेश दिया गया है। अन्न को अविष या निर्विष अर्थात् दूषित कीटाणुओं से बचाकर रखो।

(क) **यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते।** अ० ११.४.१३

(ख **व्रीहिर्यवश्च भेषजौ।** अ० ८.७.२०

(ग) **यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि।** अ० ८.२.१९

वृक्षों की विविध मणियाँ : अथर्ववेद में अनेक वृक्षों की मणियों का वर्णन है। हिन्दी में इनको मनका कहते हैं। किसी वृक्ष के शाखा आदि के छोटे भाग करने पर इन्हें मनका कहते हैं। इनको गोल दाने के रूप में बनाकर बीच में छेद करके माला की तरह बना लिया जाता है। इसे गले में या हाथ आदि पर बाँधा या पहना जाता है। मणि-बन्धन के बहुत अधिक लाभों का वर्णन है। इसके पीछे यह भावना छिपी हुई है कि प्रत्येक वृक्ष में कुछ विशेष ओषधीय गुण होते हैं। वे गुण उसकी शाखा और पत्तों आदि में भी होते हैं। उन वृक्षों के फल आदि से जो लाभ होते हैं, वे उसकी शाखा या मनका धारण करने से भी होते हैं। इनसे अनेक रोग दूर किए जा सकते हैं और दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है।

अथर्ववेद में वर्णित कुछ महत्त्वपूर्ण मणियाँ : १. जंगिड मणि (अर्जुन वृक्ष की बनी मणि, अ० २.४)। २. वरण मणि (वरुण वृक्ष की बनी मणि, अ० १०.३)। ३. दर्भ मणि (कुशा से बनाई मणि, अ० १९.२८ से ३०) ४. औदुम्बर मणि (गूलर से बनाई मणि, अ० १९.३१)। ५. शतवार मणि (शतावर से बनी मणि, अ० १९.३६)। ६. पर्णमणि (पलाश या ढाक से बनी मणि, अ० ३.५)।

वृक्षों में चेतनतत्त्व : वृक्षों में जीवनीशक्ति, चेतनता या जीव हैं या नहीं, यह अत्यन्त विवादास्पद विषय है। कुछ ग्रन्थकार वृक्षों में जीव मानते हैं, कुछ नहीं। न मानने वालों का कथन है कि वृक्षों में रासायनिक प्रक्रिया से सब काम होते हैं, उनमें जीव नहीं है। अन्य विद्वान् वृक्षों में जीव मानते हैं और उनमें मनुष्य के तुल्य प्राण-संचार, रोना-हँसना, सोना-जागना आदि मानते हैं। वेदों में प्राप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है :

अथर्ववेद का कथन है कि महत् ब्रह्म (आत्मा) की सत्ता के कारण ही वीरुध् (वृक्ष-वनस्पतियाँ) साँस लेते हैं। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि वृक्ष खड़े-खड़े सोते हैं।

(क) महद् ब्रह्म .... येन प्राणन्ति वीरुधः । अ० १.३२:१

(ख अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नाः । अ० ६.४४.१

अथर्ववेद में ही कहा गया है कि जीव मरने के बाद ओषधियों (वृक्ष-वनस्पतियों) के रूप में भी पुनर्जन्म प्राप्त करता है। मंत्र का अर्थ है कि हे मृत आत्मा, तुम ओषधियों में अपने शरीर से प्रतिष्ठित होना। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि वृक्षों में चेतंनता है, अतः उनके घाव साल भर में भर जाते हैं।

(क) ओषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः। अ० १८.२.७

(ख) तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति । अ० ८.१०.१८

ऋग्वेद का कथन है कि वह अमर अग्नि (आत्मा) ओषधियों (वृक्ष-वनस्पतियों) में प्रकाशित हो रहा है।

चेतति त्मन् अमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु । ऋग्० ६.१२.३

बृहदारण्यक उपनिषद् (३.९.२८) में मनुष्य और वृक्ष की समानता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति भी मनुष्य के समान हैं। पुरुष के लोम (बाल) हैं, वृक्षों के पत्ते हैं, दोनों के शरीर पर त्वचा है। त्वचा कटने पर खून निकलता है, वृक्ष की भी त्वचा से रस निकलता है। मनुष्य के शरीर में माँस है, वृक्ष में शर्करा (खाँड)। मानवशरीर में हड्डी हैं, वृक्ष में लकड़ी। दोनों के घाव भर जाते हैं।

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा ।
तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका बहिः । इत्यादि ।

बृहदा०उप० ३.९.२८

महाभारत के शान्तिपर्व (अध्याय १८४) में बहुत विस्तार से इस विषय का वर्णन है कि वृक्षों में पाँच महाभूत किस प्रकार से रहते हैं। वे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को किस प्रकार ग्रहण करते हैं। भरद्वाज ने प्रश्न किया है और भृगु ने उसका उत्तर दिया है। वृक्ष-वनस्पति भूमि से कैसे भोजन ग्रहण करते हैं, उसे कैसे शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाते है और कैसे उसका पाचन होता है। इसका उत्तर दिया है कि जैसे मनुष्य कमलनाल को मुख में लगाकर पानी पी सकता है, उसी प्रकार पौधे वायु की सहायता से अपनी जड़ों के द्वारा पानी पीते हैं।

वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत् ।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः ।। शा० १८४.१६

शान्तिपर्व में वृक्षों में पंचभूतों की इस प्रकार उपस्थिति दिखाई है और उनमें शब्द, स्पर्श आदि की सत्ता बनाई है :

१. वृक्ष ठोस जान पड़ते हैं, परन्तु उनमें आकाश है । अतएव उनमें फल-फूल आदि की उत्पत्ति होती है ।

२. वृक्षों के भीतर जो ऊष्मा (गर्मी) है, उसी से उसके पत्ते, फल-फूल मुरझाते हैं और झड़ते हैं । अत: उनमें स्पर्श गुण है ।

३. वायु, अग्नि और बिजली की कड़क आदि भीषण शब्द होने पर वृक्षों के फल-फूल झड़कर गिर जाते हैं, इससे ज्ञात होता है कि वृक्ष सुनते भी हैं ।

४. लता वृक्ष को चारों ओर से लपेट लेती है और ऊपर तक चढ़ जाती है । बिना देखे लिपटना और चढ़ना नहीं होता । इससे ज्ञात होता है कि वृक्ष देखते हैं ।

५. पवित्र और अपवित्र गन्ध का वृक्षों पर प्रभाव पड़ता है । धूप आदि से वृक्ष नीरोग होकर फलते-फूलते हैं । इससे ज्ञात होता है कि वृक्ष भी सूँघते हैं ।

६. वृक्ष अपनी जड़ से जल पीते हैं । रोग होने पर वृक्षों की जड़ में दवा डालने से रोग ठीक हो जाते हैं । इससे ज्ञात होता है कि वृक्ष में रसनेन्द्रिय है ।

७. वृक्ष के कट जाने पर उनमें नया अंकुर उत्पन्न होता है । वे कटने पर और नवांकुर होने पर सुख-दु:ख का अनुभव करते हैं । अत: वृक्षों में जीव है, वे अचेतन नहीं हैं ।

८. वृक्ष अपनी जड़ से जो जल खींचता है, उसे उसके अन्दर रहने वाली वायु और अग्नि पचाती है । आहार का परिपाक होने से वृक्ष में स्निग्धता आती है और वे बढ़ते हैं ।

घनानामपि वृक्षाणाम् आकाशोऽस्ति न संशयः ।१०
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते । ११
वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः ... तस्मात् शृण्वन्ति पादपाः । १२
वल्ली वेष्टयते वृक्षं ... तस्मात् पश्यन्ति पादपाः । १३
पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैः .. तस्मात् जिघ्रन्ति पादपाः । १४
पादैः सलिलपानाच्च .. विद्यते रसनं द्रुमे । १५
सुखदु:खयोश्च ग्रहणात् छिन्नस्य च विरोहणात् ।
जीवं पश्यामि वृक्षाणाम् अचैतन्यं न विद्यते । १७

महा०शान्ति० १८४,१० से१८

वृक्षों में रस का संचार (Circulation) होता है, इसका संकेत वैशेषिक दर्शन में मिलता है - 'वृक्षाभिसर्पणम्० (५.२.७) । भागवत पुराण में भी वृक्षों में जल का नीचे से ऊपर जाना वर्णित है - 'उत्स्रोतसस्तम:प्राया अन्त:स्पर्शा विशेषिण:' (३.१०.२०)

'षड्दर्शनसमुच्चय' पर गुणरत्न (१३५० ई) की जो टीका है, उसमें मनुष्य और वनस्पति के जीवन का सादृश्य दिखाया गया है । जैसे मनुष्य-शरीर का पोषण माँ के दूध, भोजन आदि से होता है, उसी प्रकार वनस्पतियों का पोषण भूमि के जल, आहार आदि से होता है । जिस प्रकार उचित और अनुचित आहार से मनुष्य-शरीर की वृद्धि या हानि होती है, उसी प्रकार वनस्पति शरीर की भी ।

यथा मनुष्यशरीरं स्तनक्षीरव्यंजन ... तथा वनस्पतिशरीरमपि ।

गुणरत्न ने लज्जावन्ती (छुई-मुई) के लज्जालु होने का उल्लेख किया है । उसने ऐसे पौधों की सूची भी दी है, जो सोते और जागते हैं ।

(क) लज्जालूप्रभृतीनां हस्तादिसंसर्गात् पत्रसंकोचादिका परिस्फुटक्रिया उपलभ्यते ।

(ख) शमीप्रपुन्नाट .... अगस्त्यामलकीकडिप्रभृतीनां स्वापविबोधत: ।

(जैनमत-प्रकरण)

अध्याय - ४

जन्तुविज्ञान (Zoology)

चारों वेदों में जीव-जगत् से संबद्ध पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है । इसमें जीवों के नाम, उनका वर्गीकरण, उनके गुण-कर्म और स्वभाव, उनकी उपयोगिता आदि का विवरण प्राप्त होता है । पशुपालन, पशुसंरक्षण, पशुसंर्वधन और पशुचिकित्सा आदि का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।

पशु का व्यापक रूप : अथर्ववेद में पशु शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है । 'पश्यति इति पशु:' जो देख सकते हैं या जिनमें दर्शनशक्ति है, वे सभी पशु हैं । इसमें मनुष्य को भी पशु में गिना गया है । ये पशु पाँच प्रकार के हैं : गाय, अश्व, पुरुष (मनुष्य), अज (बकरी) और अवि (भेड़) ।[१] यजुर्वेद, तैत्तिरीय, काठक एवं मैत्रायणी संहिताओं में तथा शतपथ ब्राह्मण में भी इन पाँच पशुओं का उल्लेख मिलता है ।[२]

जीवों का वर्गीकरण : पशु-पक्षी दोनों को संमिलित करते हुए इनके कई प्रकार के वर्गीकरण किए गए हैं :

(क) दो प्रकार के पशु : १. ग्राम्य : गाँव में रहने वाले या पालतू । **२. आरण्य :** जंगल में रहने वाले ।[३] यह विभाजन मैत्रायणी और काठक संहिता आदि में भी मिलता है ।[४]

(ख) तीन प्रकार के पशु : पशुओं में पक्षियों आदि को भी सम्मिलित करते हुए , **१. वायव्य :** आकाशीय या नभचर जीव, पक्षी आदि । **२. आरण्य :** वन्य या जंगल में रहने वाले पशु । **३. ग्राम्य :** गाँव में रहने वाले या पालतू ।[५]

अथर्ववेद में ग्राम्य पशुओं को विश्वरूप और विरूप बताते हुए एकरूप कहा गया है ।[६] इसका अभिप्राय यह है कि पशु आकृति और रूप-रंग की दृष्टि से

---

१. तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वा: पुरुषा अजावय: । अथर्व० ११.२.९

२. यजु० १३.४७-५१ । तैत्ति० ४.२.१०.१-४ । काठक० १६.१७ । मैत्रा० २.७.१७ । शत० ६.२.१.२

३. ग्राम्या: पशव आरण्यै:० । अ० ३.३१.३

४. मैत्रा० ३.९.७ । काठक० १३.१२

५. पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यान् आरण्या ग्राम्याश्च ये । अथर्व० १९.६.१४ । यजु० ३१.६ । ऋग्० १०.९०.८

६. अथर्व० २.३४.४

अनेक प्रकार के हैं, परन्तु पशुत्व जाति की दृष्टि से वे एक रूप हैं। कार्य और व्यवहार की दृष्टि से इनकी एकरूपता है।

(ग) पाँच प्रकार के पशु : शतपथ ब्राह्मण में पाँच प्रकार के पशुओं का उल्लेख है। ये हैं : (१) पुरुष), (२) अश्व, (३) गाय, (४) अज (बकरा), (५) अवि (भेड़)। दर्शन-क्रिया के कारण ये पशु हैं।[७]

(घ) सात प्रकार के पशु : अथर्ववेद में सात ग्राम्य पशुओं का उल्लेख किया गया है।[८] शतपथ ब्राह्मण में सात ग्राम्य और सात आरण्य पशुओं का उल्लेख गया है।[९] ऐतरेय ब्राह्मण में इन सात ग्राम्य पशुओं के नाम दिए हैं : अज, अश्व, गाय, महिषी (भैंस), वराही (सूअर), हस्ती (हाथी) और अश्वतरी (खच्चर)।[१०] सायण ने सात ग्राम्य पशुओं में पूर्वोक्त पाँच पशुओं पुरुष, अश्व, गाय, अज और अवि में गर्दभ और उष्ट्र को जोड़ा है।[११] प्रो० रोठ ने अन्य दो में गर्दभ और अश्वतरी (खच्चर) का नाम सुझाया है। प्रो० त्सिमर ने सात पशुओं में अज, अवि, वृषभ (बैल), अश्व, श्वा (कुत्ता), गर्दभ (गधा) और उष्ट्र (ऊँट) को लिया है।[१२] सायण ने सात आरण्य (जंगली) पशुओं में इनका नाम गिनाया है : मृग (सिंह), गोमायु (गीदड़), गवय (नील गाय), उष्ट्र, शरभ (जंगली भैंसा), हस्ती (हाथी), मर्कट (बन्दर)।[१३]

(ङ) कुछ अन्य विभाजन : (१) प्रो० त्सिमर ने अथर्ववेद के कुछ मंत्रों के आधार पर वन्य एवं अन्य जीवों का पाँच प्रकार से विभाजन किया है।[१४] **१. भयंकर वन्य पशु :** सिंह आदि। **२. पंख वाले** - हंस , सुपर्ण, शकुन आदि। **३. जल-स्थल दोनों में रहने वाले** - शिंशुमार, अजगर आदि। **४. मत्स्य :** पुरीकय, जष (मगर), मत्स्य आदि। **५. कृमि-कीट :** इन्हें 'राजस' कहा गया है। प्रो० ह्विटनी और ब्लूमफील्ड ने इसे अधिक प्रातिभ मानकर छोड़ दिया है।

(२) अथर्ववेद के एक अन्य मंत्र में पशुओं का विभाजन इस प्रकार दिया

---

७. (अग्निः) एतान् पञ्च पशून् अपश्यत्। पुरुषमश्वं गामविमजम् , यदपश्यत् तस्मादेते पशवः। शत० ६.२.१.२

८. अथर्व० ३.१०.६

९. सप्त ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः। शत० ३.८.४.१६

१०. ऐत० २.१७

११. सायण भाष्य, अथर्व० ३.१०.६

१२. वैदिक कोश, पृ० २७७ १३. तांड्य ब्रा० ६.८.८

१४. आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः०। अ० ११.२.२४-२५। अ० १२.१.४९-५१

गया है - पार्थिव (जलचर और थलचर) और दिव्य (नभचर, आकाश में उड़ने वाले) । ये दो प्रकार के हैं : ग्राम्य (पालतू) और आरण्य (जंगली) । इनके भी दो भेद हैं - पंख वाले (पक्षी) और अपक्ष (बिना पंख वाले) ।[१५]

(३) अथर्ववेद में पशुओं को दो भागों में बाँटा गया है : **१. द्विपाद्** : (दो पैर वाले), **२. चतुष्पाद् :** (चार पैर वाले)[१६] एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार ये दो वर्ग हैं : **१. उभयादत् :** ऊपर-नीचे दोनों ओर दाँत वाले : जैसे - मनुष्य, गाय, अश्व आदि । **२. अन्यतोदत् :** केवल नीचे की ओर दाँत वाले ।[१७] एक अन्य प्रकार से दो वर्ग किए गए हैं : **१. हस्तादानाः** हाथ से वस्तु को पकड़ने वाले । जैसे - पुरुष, हाथी, बन्दर आदि । **२. मुखादानाः** मुँह से वस्तु को पकड़ने वाले । जैसे - गाय, अश्व आदि ।[१८]

(४) यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में एक अन्य प्रकार से पशुओं के तीन भेद किए गए हैं : **१. एकशफ :** एक खुर वाले । जैसे, अश्व, गर्दभ आदि । **२. क्षुद्र** : छोटे पशु । भेड़, बकरी आदि । **३. आरण्य :** जंगल में रहने वाले, सिंह आदि ।[१९] तांड्य ब्राह्मण ने ८ खुर वाले पशुओं का भी उल्लेख किया है और उन्हें 'अष्टाशफा:' कहा है ।[२०]

---

१५. पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये । अ० ११.५.२१
१६. पशूनां चतुष्पदामुत द्विपदाम् । अ० २.३४.१
१७. उभयादतः, अ० १९.६.१२ । अन्यतोदत् , तैत्ति० सं० २.२.१.५
१८. हस्तादानाः, मुखादानाः । मैत्रायणी सं० ४.५.७
१९. एकशफाः, क्षुद्राः, आरण्याः पशवः । यजु० १४.३० । तैत्ति० ४.३.१०.२
२०. अष्टाशफाः पशवः । तां० ब्रा० १५.१.८

जन्तुओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण

प्रो० स्टोरस और प्रो० यूसिंजर ने वैज्ञानिक ढंग से बहुत बारीकी से जन्तुओं का वर्गीकरण किया है । इसे विज्ञान-जगत् में अधिक मान्यता प्राप्त हुई है । इन्होंने समस्त जन्तु-जगत् को दो बड़े उपविभागों में बाँटा है ।

१. प्रोटोजोआ (Protozoa) (Protos - प्रथम, Zoon = जन्तु) :

इसमें एककोशिकीय (Unicellular) सरल प्राणी आते हैं । इस समुदाय में लगभग ५० हजार जातियाँ पाई जाती हैं । इनको एक संघ (Phylum) में रखा जाता है । इनके संघ को संघ-प्रोटोजोआ (Phylum Protozoa) कहते हैं । इसमें अमीबा (Amoeba) की कई जातियाँ आती हैं ।

२. मेटोजोआ (Metozoa) :

इसमें बहुकोशिकीय (Multicellular) प्राणी आते हैं । इन जन्तुओं का शरीर अनेक छोटी कोशिकाओं से मिलकर बना होता है । ये रचना में प्रोटोजोआ के प्राणियों से अधिक जटिल होते हैं । इनका वर्गीकरण बाह्यत्वचा, अन्तःत्वचा, मध्यजन स्तर के आधार पर किया जाता है । दो त्वचा वालों को द्विस्तरीय और तीनों भाग वालों को त्रिस्तरीय जन्तु कहते हैं । इनको अनेक संघो (Phyla) में बाँटा गया है । इनमें से प्रमुख संघों का ही उल्लेख किया जा रहा है ।

(क) पोरीफेरा (Porifera) (छिद्रधारी) : इसमें स्नानस्पंज आदि जलीय जन्तु आते हैं ।

(ख) सीलेनट्रेटा (Coelenterata) : (खोखली आंत्र वाले जन्तु) : ये जलीय जन्तु हैं । ये पत्थरों या जलीय पौधों से चिपके हुए मिलते हैं, जैसे -मूंगा, हाइड्रा आदि जन्तु ।

(ग) प्लैटी हेल्मिन्थीज (Platy helminthes) : (चपटे कृमि) : ये चपटे आकार के कृमि होते हैं । जैसे - टीनिया, यह मनुष्य की आंतों में पाया जाता है ।

(घ) निमेटोडा (Nematoda) (डोरे के सदृश कृमि) : इनका शरीर लंबा, बेलनाकार और नोकीला होता है । इन्हें सूत्रकृमि (Thread worm) भी कहते हैं । ये आंतों में और गुदा आदि में पाये जाते हैं । ये परजीवी होते हैं । जैसे-ऐस्केरिस, ये मनुष्य की आंतों में पाये जाते हैं ।

(ङ) ऐनीलिडा (Annelida) : इनका शरीर लंबा, पतला, कोमल और खंडों में बंटा होता है । जैसे - केंचुआ आदि ।

(च) आर्थ्रोपोडा (Arthropoda) (जोड़दार टांगो वाले) : इस वर्ग में केकड़ा , कानखजूरा, खटमल, जूं, पिस्सू, चींटी, दीमक, तिलचट्टा, विभिन्न प्रकार की मक्खियाँ, बर्र, तितली, मच्छर, टिड्डा, मकड़ी आदि आते हैं ।

(छ) मोलस्का (Mollusca) : इस वर्ग के जन्तुओं का शरीर कोमल होता है। इनका शरीर मैन्टल (Mantel) नामक आवरण से घिरा होता है। यह मैंटल कैल्शियमयुक्त कठोर कवच होता है। ये जलीय जन्तु हैं। इस वर्ग में घोंघा, सीपी, कौड़ी, शंख, आक्टोपस (Octopus) आदि आते हैं।

(ज) इकाइनोडर्मेटा (Echinodermata) (कंटकीय त्वचा वाले जन्तु) : इस वर्ग के सभी जन्तु समुद्रीय हैं। इनकी त्वचा में कैल्शियम कार्बोनेट के बने कांटे होते हैं। इस वर्ग में तारा मछली (Starfish), समुद्री अर्चिन्स (Sea urchins) आदि जन्तु आते हैं।

कार्डेटा (Chordata) (Cord - धागा)

यह मोटाजोआ (बहुकोशिकीय) प्राणियों का ही एक बहुत बड़ा वर्ग है। कार्डेटा की कुछ मुख्य बातें ये हैं : १. नोटोकार्ड पाया जाता है। यह शरीर की मध्य पृष्ठ रेखा पर आहारनाल के ऊपर एक सिरे से दूसरे सिरे तक रीढ़ की हड्डी के तुल्य फैला होता है। अधिकांश कार्डेट्स में इसके स्थान पर रीढ़ की हड्डी होती है। २. केन्द्रीय तन्त्रिका-तंत्र होता है। ३. हृदय अधिक विकसित होता है।४. रुधि संचार-तंत्र बन्द वाहनियों (धमनी, शिरा, कोशिका) में बहता है।५. लाल रुधिर कणिकाओं (R.B.C.) में हीमोग्लोबिन पाया जाता है।

कार्डेट्स को दो बड़े भागों में बाँटा गया है :

१. प्रोटोकार्डेट्स (Protochordates) **या एक्रेनिया** (Acrania) **:** ये बिना रीढ़ की हड्डी वाले जन्तु हैं। इनमें मस्तिष्क-खोल (Brainbox, Cranium) या क्रेनियम नहीं होता है। इनके जबड़े नहीं होते हैं। इस समूह को तीन उपसंघों में बांटा गया है :

(क) हेमीकार्डेटा (Hemichordata) जैसे - वेलैनोग्लासस।

(ख) यूरोकार्डेटा (Urochordata) जैसे - हार्डमैनिया।

(ग) सफैलोकार्डेटा (Cephalochordata) जैसे - एम्फिआक्सस।

इन तीनों वर्ग के जन्तु जलीय जन्तु हैं।

२. क्रेनिया या कशेरुकी (Crania or Vertebrata) : इस वर्ग की मुख्य विशेषताएँ हैं : १. मस्तिष्क खोल या क्रेनियम (Cranium) होता है। २. पृष्ठवंश, कशेरुक दंड या रीढ़ की हड्डी होती है। ३. केन्द्रीय तन्त्रिकातंत्र केशरुकदंड के भीतर सुरक्षित रहता है।

इस वर्ग में सभी प्रकार की मछलियाँ, उभयचर जन्तु, सभी प्रकार के सरीसृप (सर्प आदि), पक्षी और स्तनधारी मनुष्य एवं पशु आते हैं। इनमें कुछ उल्लेखनीय वर्ग ये हैं :

(क) साइक्लोस्टोमेटा (Cyclostomata) : इसके जन्तु समुद्र तथा बड़ी नदियों में होते हैं। शरीर लंबा गोल और मछली के सदृश। जैसे, पेट्रोमाइजान (Petromyzon)।

(ख) कान्ड्रिक्थीज (Chondrichthyes) : इस वर्ग में लचीली हड्डी वाली समुद्री मछलियाँ आती हैं । जैसे - स्कोलियोडान । यह मांसाहारी शार्क (Shark) मछली है, जो भारतीय समुद्रों में पाई जाती है ।

(ग) आस्टीक्थीज (Osteichthyes) : ये हड्डी वाली मछलियाँ हैं । जैसे - रोहू मछली, हिप्पोकैम्पस - इसे समुद्री घोड़ा भी कहते हैं । इसका सिर घोड़े के मुख के सदृश होता है । यह जल में सीधी खड़ी हुई तैरती है ।

(घ) कोएनिक्थीज (Choanichthyes) : इन्हें फेफड़े वाली मछलियाँ कहते हैं । जैसे - प्रोटोप्टेरस (Protopterus) .

(ङ) उभयचर या एम्फीबिया (Amphibia) : इस वर्ग के जीव जल और थल दोनों जगह रह सकते हैं । जैसे - मेढक, टोड आदि ।

(च) सरीसृप या रेप्टीलिया (Reptilia) : इस वर्ग में रेंगकर चलने वाले सभी जीव आते हैं । जैसे - साँप, छिपकली आदि । ये जमीन, दीवार, पेड़ पर रेंग कर चलते हैं ।

(छ) पक्षी या एवीज़ (Aves) : इस वर्ग में सभी प्रकार के पक्षी आते हैं । जैसे, कबूतर, तोता, मैना, हंस, कौवा आदि ।

(ज) स्तनधारी या मैमेलिया (Mammalia) : यह जीव जगत् का सबसे अधिक विकसित एवं बुद्धिमान् वर्ग है । इसमें मनुष्य भी आते हैं । इसमें सभी पशु, चाहे वे ग्राम्य, नगरीय या वनचर हों, आते हैं । इसमें मनुष्य के अतिरिक्त गाय, घोड़ा, बैल, सिंह आदि सभी आते हैं ।

(झ) बिल में रहने वाले : कुछ जन्तु बिलों में रहते हैं और उसी के अनुरूप उनके शरीर में परिवर्तन होते हैं । जैसे - चूहा, साँप, छछूँदर, साही आदि ।

जन्तुओं का पारिस्थितिक वर्गीकरण
(ECOLOGICAL CLASSIFICATION OF ANIMALS)

यह एक अत्यन्त सरल और संक्षिप्त वर्गीकरण है । इसमें सारा वर्गीकरण जल, थल, नभ और मरुस्थल के आधार पर किया गया है । वातावरण के आधार पर सभी जन्तुओं को इन चार भागों में बाँटा गया है :

१. जलीय जन्तु (Aquatic animals) : इस वर्ग में सभी जन्तु, जो नदी, तालाब, समुद्र आदि के जल में रहते हैं, आते हैं । जैसे - छोटी बड़ी मछली, रोहू, कछुआ, ह्वेल, घड़ियाल, पेंगुइन आदि ।

२. वायवीय जन्तु (Aerial animals) : इसमें सक्रिय और निष्क्रिय उड़ान वाले सभी जीव आते हैं । जैसे - सभी पक्षी, चमगादड़, कुछ उड़ने वाली मछलियाँ और मेढक आदि ।

३. स्थलीय जन्तु (Terrestrial animals) : स्थलीय जन्तुओं में कुछ उभयचर, सरीसृप, पक्षी और अधिकांश स्तनधारी आते हैं ।

४. मरुस्थलीय जन्तु (Desert animals) : रेगिस्तान में रहने वाले जीव-जन्तु। इसमें ऊँट, कँगारू चूहा, मरुस्थलीय छिपकली, रेगिस्तानी बिल्ली, शुतुरमुर्ग आदि आते हैं।

व्यावहारिक वर्गीकरण : संक्षेप में जीव-जगत् को इस रूप में बाँटा जाता है : १. जलीय जन्तु (Aquatic animals), २. सरीसृप (Reptiles), ३. पक्षी (Birds), ४. स्तनधारी (Mammals), ५. वन्य पशु (Wild animals), ६. कृमि, कीट (Insects)।

पशुधन का महत्त्व : वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में पशुओं का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है। अथर्ववेद में वर्णन है कि गाय, अश्व आदि सब ओर से हमारे घरों में आवें।[१] गाय आदि पशु दूध-घी देकर मनुष्यमात्र को हृष्ट-पुष्ट बनाते हैं।[२] गाय गृह की लक्ष्मी है।[३] गाय घी, दूध और मधुर पदार्थों को देती है।[४] गोरस या गव्य निर्बल को सबल और निस्तेज को तेजस्वी बनाता है।[५] ब्राह्मण ग्रन्थों में पशुधन का बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है। पशुओं को दिव्य लक्ष्मी (हरिश्री) कहा गया है।[६] शतपथ और तांड्य ब्राह्मण में पशु-धन को श्री, लक्ष्मी, रयि (ऐश्वर्य), राय: (धन), रायस्पोष (धन-वैभव), वसु (धन) कहा गया है।[७] शतपथ और गोपथ ब्राह्मण में पशुओं को यश, कीर्ति और वैभव का आधार बताया गया है।[८] पशु दूध-घी आदि के साधन हैं, अत: उन्हें 'घृतश्चुत्' कहा गया है।[९] बैल आदि पशु अन्न-समृद्धि के साधन हैं, अत: पशु को अन्नसमृद्धि या अन्न कहा है।[१०] पशु अन्नसमृद्धि, दूध-घी, गोमूत्र, गोबर-खाद आदि के साधन हैं, अत: उन्हें 'षोडशकला:' अर्थात् १६ कलाओं से युक्त कहा गया है।[११] मनुष्य और देवगण सभी पशुधन से जीवित रहते हैं, अत: उन्हें जीवन का आधार बताया है।[१२] पशु घास खाकर दूध जैसा अमृत देते हैं, अत: उन्हें 'मह:' (महान् , पूज्य, शक्ति, पूर्णता) कहा गया है।[१३] पशुधन सारी कामनाओं को पूर्ण करता है, अत: उसे वैभव का आधार माना गया है।[१४]

१. अथर्व० २.२६.३
२. अथर्व० २.२६.४
३. गावो भग:० अ० ४.२१.५
४. अ० १०.९.१२
५. अ० ४.२१.६
६. तांड्य ब्रा० १५.३.१०
७. शत० १.८.१.३६। तांड्य १३.२.२ ; ७.१०.१७। शत० ३.७.३.११
८. शत० १२.८.३.१ ; ८.२.३.१४। गोपथ उ० ५.६
९. तांड्य० ९.१.१७
१०. शत० ६.२.१.१५
११. षोडशकला: पशव:। तांड्य० ३.१२.२
१२. उभये देवमनुष्या: पशून् उपजीवन्ति। शत० ६.४.४.२२
१३. पशवो वै मह:। शत० ११.८.१.३
१४. सर्वं पशुभिर्विन्दते। तांड्य० १३.१.३

पशु-संरक्षण और पशु-संवर्धन : वेदों में पशुओं की उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए उनके संरक्षण और संवर्धन पर विशेष बल दिया गया है। पशुओं को सदा सुरक्षा प्रदान की जाए, अतः यजुर्वेद में बल देकर कहा गया है कि - 'अभयं नः पशुभ्यः' अर्थात् पशु निर्भय होकर विचरण कर सकें।[१५] अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त में गोशाला या पशुशाला के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।[१६] इसमें कहा गया है कि वे निर्भय होकर विचरण करें। उनके लिए घास-पानी आदि की ठीक व्यवस्था हो, जिससे वे हृष्ट-पुष्ट हों। उनके पीने के लिए शुद्ध जल की व्यवस्था हो। स्वच्छ जलयुक्त हौज हों। उन्हें चोरों का कोई भय न हो। वे दूध-घी से घर को भर दें।[१७]

पशुओं के गुण-कर्म, स्वभाव : वेदों में जहाँ विभिन्न पशु-पक्षिओं का उल्लेख है, वहाँ कुछ मंत्रों में उनके गुण-कर्म और स्वभाव का भी उल्लेख मिलता है।

१. गाय : वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में गाय का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है। अथर्ववेद में गाय के विराट् रूप का वर्णन है और उसे विश्वरूप और सर्वरूप कहा गया है। उसमें सभी देवों (दिव्य तत्त्वों) का निवास बताया गया है।[१८] गाय को अवध्य बताया गया है।[१९] गाय में इन गुणों की सत्ता बताई गई है - वर्चस् (कान्ति), तेज, भग (ऐश्वर्य), यश, पयस् (दूध), रस (सरसता)।[२०] शतपथ ब्राह्मण में गाय का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह दूध, मलाई, दही, मट्ठा, मक्खन, घी आदि पोषक तत्त्व देती है।[२१]

२. ऋषभ (बैल) : बैल को दिव्यशक्तियुक्त कहा गया है।[२२] बैल की शक्ति की प्रशंसा की गई है और उसे पशुओं का स्वामी कहा गया है।[२३] बैल की कृषि के लिए विशेष उपयोगिता थी। उसे हल में जोता जाता था।[२४] बैल आदि पशुओं को वध्रि (बधिया) बनाया जाता था।[२५] बैल के अंडकोश को तोड़कर उन्हें बधिया बनाने का उल्लेख है।[२६]

३. पशुओं की प्राणशक्ति प्रबल : शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि पशु देखकर नहीं, अपितु सूँघकर वस्तु को पहचानते हैं। सूँघकर ही वे भक्ष्य-अभक्ष्य आदि का निर्णय करते हैं।[२७]

---

१५. यजु० ३६.२२
१६. अथर्व० ३.१४.१-६
१७. अ० ७.१३.११ ; ७.७५. १-२
१८. अ० ९.७.१-२६
१९. अघ्न्येयम्० । अ० ७.७३.८
२०. अ० १४.२.५३-५८
२१. शत० ३.३.३.२
२२. अ० ९.४.५,११,१५
२३. तांड्य० १९.१२.३
२४. अ० ३.१७.२
२५. वध्रिं त्वाकरम्० । अ० ६.१३८.३ ; ४.३७.७
२६. अ० ३.९.२
२७. यदैवोपजिघ्रन्ति, अथ जानन्ति । शत० ११.८.३.१०

४. मोर के पंखों की सुन्दरता और उसका नाचना : मोर के नाचने का और उसके पंखों की सुन्दरता का वर्णन है ।[२८]

५. मोर-मोरनी में विष चूसने की शक्ति : ऋग्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि मोरनी साँप का विष चूस लेती है और उसके टुकड़े-टुकड़े कर देती है ।[२९]

६. तोता-मैना पुरुष की तरह बोल सकते हैं : शुक (तोता) और शारि (मैना) पुरुषवाक् हैं अर्थात् ये मनुष्य की तरह बोल सकते हैं ।[३०]

७. कोयल की वाणी में माधुर्य और कामोद्दीपकता : यजुर्वेद में कोयल की वाणी में मधुरता के साथ ही कामोद्दीपकता गुण भी बताया गया है ।[३१]

८. उल्लू का कटु स्वर : उलूक (उल्लू) की आवाज कटु और अशुभ बताई गयी है ।[३२] उल्लू का दिन में न देख सकना और प्रकाश से भयभीत होने को 'उलूकयातु' (उल्लू की चाल) कहा गया है ।[३३] उल्लू के रात्रि में जागने और उड़ने का वर्णन है ।[३४]

९. श्येन (बाज) की तीव्र गति : श्येन की तीव्र गति का वर्णन है । इसको अत्यन्त तीव्रगति के कारण 'मनोजवा:' (मन के तुल्य गति वाला) कहा गया है ।[३५] इसको पक्षियों में सबसे तीव्र गति वाला (आशिष्ठ, क्षेपिष्ठ) कहा गया है ।[३६] यह बहुत दूर तक देख सकता है, अत: इसे 'नृचक्षस्' और 'अवसानदर्श' कहा गया है ।[३७] यह पक्षियों पर आक्रमण करता है और उन्हें पकड़ता है, अत: इसे 'वयोधा:' कहा है ।[३८] छोटे पक्षी इससे डरते हैं ।[३९]

१०. उष्ट्र (ऊँट) का महत्त्व : ऊँट की तीव्र गति की प्रशंसा की गई है । इसका युद्ध में भी उपयोग होता था ।[४०] अथर्ववेद में इसका बहुत गुणगान है । राजाओं के रथ में २० ऊँट तक जोते जाते थे ।[४१] भरवाहक पशु के रूप में भी

---

२८. आनृत्यत: शिखण्डिन: । अ० ४.३७.७ । ऋग्० ३.४५.१
२९. ऋग्० १.१९१.१४ । अ० ७.५६.७
३०. शारि: पुरुषवाक्, शुक: पुरुषवाक् । यजु० २४.३३
३१. कामाय पिक: । यजु० २४.३९ ३२. ऋग्० १०.१६५.४, अ० ६.२९.१
३३. उलूकयातुम्, ऋग्० ७.१०४.२२ । अ० ८.४.२२
३४. अथर्व० ८.४.१७-१८
३५. श्येनमायिनं मनोजवसम् । तैत्ति० सं० २.४.७.१
३६. तांड्य ब्रा० १३.१०.१४ । षड्विंश ब्रा० ३.८.
३७. अ० ७.४१.१ ३८. अ० ७.४१.२
३९. काठक सं० ३७.१४ ४०. उष्ट्रो न पीपरो मृध: । ऋग्० १.१३८.२
४१. उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो .. द्विर्दश । अ० २०.१२७.२

इसका उपयोग होता था । ऋग्वेद में एक सवारी के जुए में चार जुते हुए ऊँटों का वर्णन है ।[४२] अथर्ववेद में ऊँट के तीन नाम गिनाए गए हैं - १. हिरण्य (सुनहरे रंग का), २. यश, शवस् (यश और शक्ति) और ३. नीलशिखंडवाहन (रुद्र की सवारी) ।[४३] ऋग्वेद में दान में दिए जाने वाले पशुओं में भी ऊँट का उल्लेख है । ७० हजार घोड़े, २ हजार ऊँट, १ हजार भूरी घोड़ियाँ दान में दी गयीं ।[४४] ऊँटों का विशाल समूह के रूप में विचरण करने का उल्लेख है । इसे 'चारथ गण' कहते थे ।[४५]

११. अश्वतर, अश्वतरी (खच्चर) : अश्वा और गर्दभ के सांकर्य से उत्पन्न खच्चर की प्रजाति को अश्वतर और अश्वतरी नाम दिया गया है।[४६] इनका भारवाहक पशु के रूप में उपयोग होता था । ये रथ, गाड़ियों आदि में जोते जाते थे ।[४७]

१२. हंस का नीर-क्षीर-विवेक : हंस के विषय में उल्लेख है कि वह जल में सोमरस (दूध) को पी लेता है ।[४८] यजुर्वेद में क्रौंच (कराँकुल या कुररी, Curlew) पक्षी के लिए भी उल्लेख है कि वह जल में से क्षीर (दूध) पी लेता है ।[४९] वास्तविकता यह है कि कमलनाल के टूटने पर उसमें से सफेद दूध निकलता है । कमलनाल जल में है, किन्तु हंस कमलनाल के दूध को पी लेता है । यह है नीर-क्षीर-विवेक की वास्तविकता । क्रौंच पक्षी में भी यह गुण पाया जाता है । काठक और मैत्रायणी संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में हंस को जल में से सोम को अलग करने वाला कहा गया है ।[५०]

हंस की कुछ अन्य विशेषताएँ ये हैं : १. हंस रोगनाशक और विषनाशक ओषधियों को जानता है ।[५१] २. हंस रात्रि में भी जागता है । रात्रि के अंधकार का प्रभाव हंस पर नहीं होता है ।[५२] ३. हंस की पीठ नीली होती है, अतः इसे 'नीलपृष्ठ' कहते हैं ।[५३] ४. हंस झुंड में या समूह में रहते हैं ।[५४] हंस मित्रता में प्रवीण होते हैं । मित्रों के साथ बोलते हुए उड़ते हैं ।[५५]

४२. ऋग्० ८.६.४८ ४३. त्रीणि-उष्ट्रस्य नामानि । अ० २०.१३२.१३-१६
४४. ऋग्० ८.४६.२२ ४५. चारथे गणे० । ऋग्० ८.४६.३१
४६. अ० ४.४.८ ४७. अ० ४.४.८ ; ८.८.२२ । ऐत० ब्रा० ४.९
४८. सोममद्भ्यो व्यपिबत् .. हंसः । यजु०१९.७४
४९. अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ् । यजु० १९.७३
५०. काठक० ३८.१ । मैत्रा० ३.११.६ । तैत्ति० ब्रा० २.६.१.२
५१. वयांसि हंसा या विदुः । अ० ८.७.२४
५२. रात्री जगदिव-अन्यद् हंसात् । अ० ६.१२.१ ५३. ऋग्० ७.५९.७
५४. हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते । यजु०२९.२१
५५. हंसैरिव सखिभिर्वावद्भिः । अ० २०.९१.३

१३. पशु-पक्षियों का ओषधिज्ञान : अथर्ववेद में वर्णन है कि पशु-पक्षियों को रोग-नाशक और विषनाशक ओषधियों का नैसर्गिक ज्ञान होता है। नामोल्लेख करते हुए कहा गया है कि सारे पक्षी, सारे पशु,, न्योला (नेवला), सर्प, शूकर, गरुड, गाय, भेड़, बकरी आदि ये सभी रोगनाशक और विषनाशक ओषधियों को जानते हैं। अतएव ये स्वयं अपने रोगों की चिकित्सा कर लेते हैं।[१]

१४. पशु-पक्षियों का समूह में रहना : पशु-पक्षियों में नैसर्गिक प्रवृत्ति है कि वे समूह (गण, श्रेणी) में रहते हैं। इनके छोटे से लेकर बड़े समूह भी होते हैं। अतएव अथर्ववेद में हंस आदि के लिए गणेभ्य:, महागणेभ्य: के द्वारा संकेत है कि ये छोटे या बड़े समूह में रहते हैं।[२] ऊँट गाय आदि के झुंड के लिए पृथक् नाम भी दिए हैं। जैसे - ऊँटों का समूह - चारथगण, गायों का समूह - श्वित्न।[३]

१५. पशु-पक्षियों का ऋतु -ज्ञान : पशु-पक्षियों को ऋतु या मौसम का बहुत अच्छा ज्ञान होता है। तदनुसार ही उनकी गतिविधियाँ होती हैं। वसन्त में कोयल, शरद् में हंस, वर्षा में मोर, मेंढक, तीतर आदि की अनायास विशेष गतिविधि होती है। कुछ विशेष पशु-पक्षी किसी ऋतु-विशेष में ही देखे जाते हैं। यजुर्वेद में उल्लेख है कि ये विशेष पक्षी इन ऋतुओं में विशेष रूप में पाये जाते हैं। ऋतु-विषयक विशेष जानकारी इन पक्षियों से प्राप्त करें। जैसे - वसन्त के लिए कपिंजल (चातक) पक्षी, ग्रीष्म के लिए कलविंक (गौरेया, Sparrow), वर्षा के लिए तित्तिरि (तीतर), शरद् के लिए वर्तिका (बटेर), हेमन्त के लिए ककर (पक्षिविशेष) और शिशिर के लिए विककर (पक्षिविशेष)।[४]

१६. समुद्र आदि के ज्ञान के लिए जल-जन्तुओं का उपयोग : यजुर्वेद में वर्णन है कि समुद्र के विशिष्ट ज्ञान के लिए जल-जन्तुओं का उपयोग करें। जैसे - समुद्र के लिए शिशुमार (सूसमार, Porpoise) का, जल के लिए मत्स्य (मछली) का, गहरे जल के लिए नक्र (मगर) का उपयोग करें।[५]

१७. पशु-पक्षियों में सूर्य-चन्द्रमा आदि के गुण : यजुर्वेद में उल्लेख है कि कुछ पशु-पक्षियों में सौर तत्त्व या सौर गुण (Solar element) प्रमुख होता है और कुछ में चान्द्र तत्त्व (Lunar element)। जैसे - बलाका (सारसी, Crane) और

---

१. अथर्व० ८.७.२३-२५
२. गणेभ्य:, महागणेभ्य: स्वाहा। अ० १९.२२.१६-१७
३. चारथे गणे, श्वित्नेषु। ऋग्० ८.४६.३१ ४. वसन्ताय कपिंजलान्०। यजु० २४.२०
५. समुद्राय शिशुमारान्०। यजु० २४.२१

कृकवाकु (कुक्कुट, मुर्गा) में सौर गुण मुख्य होता है ।[६] मुर्गे का उषाकाल में बाँग देना सर्वविदित है । पुरुषमृग में चान्द्र गुण (सोम्यता) विशेष रूप से होता है ।[७]

१८. पशु-पक्षियों में रंग-भेद से स्वभाव में अन्तर : यजुर्वेद के एक मंत्र में विस्तार से वर्णन है कि किस रंग वाले पशु सोम्य (सीधे) होते हैं । किस रंग के उग्र या तीक्ष्ण आदि । जैसे - (क) रोहित (लाल), धूम्ररोहित (धुमैले) एवं गहरे लाल रंग वाले पशु-पक्षी सोम्य (सरलता, सीधापन) गुण वाले होते हैं । (ख) कान आदि में, एक ओर या सब ओर सफेद छिद्र या दाग हो तो वह सावित्र (सौर गुण या उग्र) गुण वाला होता है । (ग) यदि थोड़ा, अधिक या चारों ओर से चितकबरा (पृषती) हो तो उसमें मैत्रावरुण (सौर और चान्द्रगुण) गुण होते हैं ।[८] इस प्रकार रंगभेद से स्वभाव में भी भेद होता है । इसी ढंग से पशु-पक्षियों में बालों के रंग, आँखों के रंग आदि के आधार पर उनके स्वभाव में अन्तर का वर्णन किया गया है ।[९]

१९. क्रूर जीव : यजुर्वेद के एक मंत्र में क्रूर जीवों में शार्दूल (व्याघ्र), वृक (भेड़िया) और पृदाकु (अजगर) का उल्लेख है ।[१०]

२०. सर्प का भोजन विष : अथर्ववेद का कथन है कि जो विष सबके लिए घातक है, वही विष सर्प का भोजन है और उसका जीवन है ।[११]

२१. सर्प और बिच्छू : अथर्ववेद में वर्णन है कि यदि साँप या वृश्चिक (बिच्छू) काटने आ रहा हो तो साँप को डंडे से और बिच्छू को हथौड़े से मार दे ।[१२]

२२. अहि-नकुल (साँप और न्योला) : अथर्ववेद में उल्लेख है कि साँप नेवले को काटकर फिर उसे जोड़ सकता है ।[१३] नेवला साँप को काटकर मार देता है, यह तो संभव है, पर उसे फिर जोड़ देता है, यह असंभव दिखाई देता है । संभवतः लोकप्रसिद्धि के आधार पर ऐसा कहा गया है ।

२३. पशु-हिंसा का निषेध : यजुर्वेद और अथर्ववेद में पशु-हिंसा का निषेध किया गया है ।[१४] पशुहिंसा को दंडनीय अपराध बताते हुए कहा गया है कि जो गाय की हत्या करता है या अश्व की हत्या की करता है । उसका सिर काट लिया

६. सौरी बलाका, यजु० २४.३३ । कृकवाकुः सावित्रः । यजु० २४.३५
७. पुरुषमृगश्चन्द्रमसः । यजु० २४.३५
८. रोहितो .. ते सौम्याः, सावित्राः, मैत्रावरुण्यः । यजु० २४.२
९. यजु० २४.३
१०. शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे । यजु० २४.३३
११. विषं सर्पा उप जीवन्ति । अथर्व० ८.१० (५).१६
१२. घनेन हन्मि वृश्चिकम् अहिं दण्डेनागतम् । अ० १०.४.९
१३. नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः । अ० ६.१३९.५
१४. मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्० । यजु० १३.४७ से ५०

जाए ।[१५] पशुओं की पूरी सुरक्षा की जाए और उन्हें निर्भय रखा जाए । [१६]

२४. पशुओं की उपयोगिता : पशु अनेक प्रकार से समाज के लिए उपयोगी हैं । कुछ दूध-घी आदि देते हैं । कुछ कृषि के काम आते हैं । कुछ भारवाहक हैं । भेड़ आदि ऊन देती हैं । मृत पशुओं के चमड़े से जूते आदि बनते हैं । यजुर्वेद में इस उपयोगिता का उल्लेख किया गया है । भेड़, उसके ऊनी वस्त्र, पशुओं के चमड़े के उपयोग का वर्णन है ।[१७]

२५. पशु-पक्षियों की कुछ अन्य विशेषताएँ : (क) पक्षियों का अंडे से जन्म (अंडज) : ये अंडे के रूप में उत्पन्न होते हैं और फिर अंडे को फोड़कर पैदा होते हैं ।[१८] **(ख) कबूतर का कामुक होना :** कबूतर कामी पक्षी है । यह कबूतरी को छेड़ता है । ।[१९] **(ग) कबूतर को पीलु फल प्रिय :** कबूतर को पके पीलु फल (पंजाबी में पिलकना) और श्यामाक (सांवा धान) विशेष प्रिय है ।[२०] **(घ) दधिक्रावा अश्व :** चारों वेदों में दधिक्रावा (दधिक्रावन्, दधिक्रा) अश्व का बहुत गुणगान है । ऋग्वेद में इसको संसार का सर्वप्रथम अश्व घोषित किया गया है ।[२१] यह सर्वत्र विजयी होता है और मनुष्य को दीर्घायु प्रदान करता है ।[२२] प्रो० ग्रिफिथ इसे दिव्य घोड़ा मानते हैं । उनका कथन है कि कि यह प्रात:कालीन सूर्य का मूर्तरूप है । **(ङ) घोड़े का युद्ध में उपयोग :** ऋग्वेद में घोड़े का युद्ध में उपयोग का वर्णन है ।[२३] **(च) पशुसंरक्षण :** यजुर्वेद में पशु-संरक्षण का विशेष रूप से उल्लेख है । इसमें हाथी के पालक को 'हस्तिप', घोड़े के रक्षक को 'अश्वप',गाय पालने वाले को 'गोपाल', भेड़ पालने वाले को 'अविपाल' और बकरी पालने वाले को 'अजपाल' कहा गया है । इस मंत्र में यह भी निर्देश है कि ये घोड़े, हाथी आदि को हृष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली बनावें ।[२४] **(छ) कृषिनाशक जीव-जन्तु :** कृषिनाशक जीव-जन्तुओं में इनका उल्लेख है ।[२५] १. आखु (चूहा), २. तर्द (कठफोड़वा, खुटबढैया), ३. पंतग (टिड्डी), ४. जभ्य (घुन, सुरसुरी), ५. उपक्वस (अन्न या बीज खाने वाला विषैला कीड़ा), ६. व्यद्वर (अन्न खाने या चाट जाने वाले कीड़े), ७. तर्दापति, वघापति, तृष्टजम्भ (तेज दांतों वाले कीड़े), ८. मटची (टिड्डी) ।

१५. यो अघ्न्याया .. तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च । अ० ८.३.१५-१६

१६. अभयं न: पशुभ्य: । यजु०-३६.२२

१७. इमम् ऊर्णायुम् .. त्वचं पशूनाम्० । यजु० १३.४९-५०

१८. आण्डेव भित्त्वा० । अ० २०.१६.७

१९. कपोत इव गर्भधिम्० । अ० २०.४५.१

२०. कपोताय .. पक्वं पीलु० । अ० २०.१३५.१२ २१. ऋग्० ७.४४.४

२२. दधिक्राव्णो० । ऋग्० ४.३९.६ । यजु०२३.३२ । अ० २०.१३७.३

२३. ऋग्० ९.१०६.१२

२४. हस्तिपम् , अश्वपम् , गोपालम् , अविपालम् , अजपालम् । यजु० ३०.११

२५. अथर्व० ६.५०.१ -३ । छान्दो० उप० १.१०.१

२६. पशु-पक्षियों की कतिपय विशेषताएँ : (क) तेजस्वी पशु : अथर्ववेद में तेजस्वी पशुओं में इनकी गणना की गयी है - सिंह (शेर), मृग (शिकारी पशु), व्याघ्र (बाघ), द्वीपी (चीता) ।[१] **(ख) हाथी का महत्त्व :** अथर्ववेद के ६ मंत्रों में हस्ती की तेजस्विता का उल्लेख किया गया है ।[२] हाथी पशुओं में तेजस्वी है । राजा हाथी के तुल्य वर्चस्वी हो । **(ग) हाथी में प्रेमभावना :** हाथी प्रेम-प्रदर्शन के लिए हथिनी के पैरों के साथ अपने पैर मिलाकर चलता है ।[३] **(घ) हाथी के चर्म का उपयोग :** हाथी के चर्म से दृति (मशक, तेल रखने की कुप्पी) बनाए जाते थे ।[४] **(ङ) हिरन की तीव्रगति :** हरिण (हिरन) की तीव्र गति की प्रशंसा करते हुए उसे रघुष्यद् (तीव्रगामी) कहा है ।[५] **(च) हिरन के सींग से ओषधि :** बारहसिंगा हिरन के विषय में कहा गया है कि इसके सींग में ओषधि है और यह क्षेत्रिय (वंशपरंपरागत) रोगों की ओषधि हैं ।[६] **(छ) सिंह का गर्जन :** सिंह के गर्जन की प्रशंसा की गयी है ।[७] **(ज) व्याघ्र को शाकाहारी बनाना :** अथर्ववेद में वर्णन है कि शेर और व्याघ्र (Tiger) को भी शाकाहारी बनाया जा सकता है और उसे 'माषाज्य' (घृतमिश्रित उड़द आदि खाने वाला) बना सकते हैं ।[८] **(झ) भयावह पशु-पक्षी :** अथर्ववेद के एक सूक्त में वर्णन है कि कौन किससे डरता है । इसमें उल्लेख है कि - भेड़िया से भेड़ और बकरी डरते हैं ।[९] श्येन (बाज) से अन्य पक्षी डरते हैं ।[१०] शेर के गर्जन से वन्य पशु डरते हैं ।[११] वन्य हिरन आदि जीव मनुष्य को देखकर डरते हैं ।[१२] कुत्ता शेर को देखकर डरता है और व्याघ्र से गाय आदि डरते हैं ।[१३]

---

१. सिंहस्य० । अ० १९.४९.४
२. हस्तिवर्चसं प्रथताम् । अ० ३.२२.१-६
३. अ० ६.७०.२
४. हस्तिनो दृती । अ० २०.१३१.२०
५. अ० ३.७.१
६. हरिणस्य .. शीर्षणि भेषजम् । अ० ३.७.१-२
७. अ० २०.९१.८
८. व्याघ्रः - तं माषाज्यं कृत्वा० । अ० १२.२.४
९. अ० ५.२१.५
१०. अ० ५.२१.६
११. अ० ५.२१.६
१२. अ० ५.२१.४
१३. अ० ४.३६.६

२७. पशु-पक्षियों की कतिपय विशेषताएँ : (क) गाय का वत्स-प्रेम : गाय नवजात वत्स को अत्यन्त प्रेम करती है ।[१] **(ख) भेड़िया भेड़-बकरी को खा जाता है :** भेड़िया हिंसक पशु है । यह भेड़-बकरी को खा जाता है ।[२] **(ग) पक्षियों का निवास :** पक्षी सामान्यतया फल वाले पेड़ों पर अपना निवास बनाते हैं ।[३] **(घ) पक्षी कृषि -अन्न -भक्षक :** पक्षी कृषि के अन्न को खा जाते हैं, अतः ऐसे पक्षियों से कृषि को बचाने का उल्लेख है ।[४] **(ङ) शहद की मक्खी का शहद बनाना :** सरघा (शहद की मक्खी) शहद बनाती है, अतः शहद को 'सारघ मधु' कहते हैं । अथर्ववेद में इसका विस्तृत वर्णन है ।[५] **(च) सूअर का नाक से खोदना :** शूकर (सूअर) अपने नाक के अग्रभाग (थूथनी) से नागरमोथा आदि खोद कर निकालता है ।[६] **(छ) कपि (बन्दर) :** बन्दर के पूरे शरीर पर बाल होते हैं ।[७] बन्दर बांस की कोपल और सरकंडा (तेजन) खाता है ।[८] कुत्ते और बन्दर की परस्पर शत्रुता होती है ।[९] **(ज) पशुओं को कान पर दागना :** पशुओं के कान पर गर्म लोहे से दाग कर चिह्न बनाया जाता है । अथर्ववेद का कथन है कि ऐसा करने से पशु की सन्तानोत्पत्ति की शक्ति बढ़ जाती है ।[१०] ऋग्वेद में 'अष्टकर्णी' गायों का उल्लेख है ।[११] प्रो० ग्रासमान ने इसका अर्थ किया है कि 'आठ के चिह्न से युक्त कानों वाली', इसका अभिप्राय यह है कि गाय आदि पशुओं के कान पर पहचान के लिए गर्म लोहे से अंक डाल दिए जाते थे । इसी प्रकार मिथुन (युगल), कर्करी (बंशी), दात्र (हँसिया) आदि चिह्न पशुओं के कानों पर बनाये जाते थे । दाग को लक्ष्म कहते थे ।[१२]

---

१. ऋग्० ९.१००.१
२. अ० ६.३७.१ ; ५.८.४ ; ७.५०.५
३. ऋग्० १०.४३.४ । अ० २०.१७.४
४. अ० २०.१६.१
५. सारघेण मा मधुना । अ० ९.१.१६-१९
६. सूकरस्त्वा -अखनन्नसा । अ० २.२७.२ ; ५.१४.१
७. कपिः सर्वकेशकः । अ० ४.३७.११
८. कपिर्बभस्ति तेजनम् । अ० ६.४९.१
९. शुनां कपिरिव दूषणः। अ० ३.९.४
१०. लोहितेन स्वधितिना ... लक्ष्म० । अ० ६.१४१.२
११. ददतो अष्टकर्ण्यः० । ऋग्० १०.६२.७
१२. देखो, सूर्यकान्त -वैदिककोश, पृ० ३०

२८. पशु-पक्षियों की कतिपय विशेषताएँ : (क) वृश्चिक की पूंछ में विष : बिच्छू के लिए कहा गया है कि इसकी पूंछ में विष होता है । यह मुँह और पूंछ दोनों से प्रहार करता है ।[१] **(ख) शल्यक लज्जाशील जन्तु :** शल्यक (सेही, साही, Porcupine) लज्जाशील जन्तु है ।[२] **(ग) चूहों का बिल बनाना :** आखु (चूहा) भूमि खोदकर बिल बनने की कला जानता है ।[३] **(घ) मशक (मच्छर) :** अथर्ववेद में मच्छर मारने की ओषधि 'मशकजम्भनी' (मधुला) का उल्लेख है ।[४] मच्छर के आवाज की गधे के स्वर के तुलना की गयी है ।[५] मच्छर हाथी को भी तंग करते हैं ।[६] **(ङ) गर्दभ (गधा) :** गधे की ध्वनि (हींचू) को कर्णकटु बताया गया है ।[७] गधे को द्विरेतस् (संकर) कहा गया है । अश्वा और गर्दभी दोनों उसका पालन करती हैं ।[८] गर्दभ और अश्वा (घोडी) के संयोग से अश्वतर (खच्चर) की उत्पत्ति बताई गयी है ।[९] गधा-गधी अपनी थकान उतारने के लिए रेत में लेटते हैं ।[१०] **(च) चिच्चिक (झिल्ली) की तीव्र ध्वनि :** चिच्चिक (झिल्ली, चिड़ा) की तीव्र ध्वनि का उल्लेख है ।[११] **(छ) पशुचिकित्सा :** अथर्ववेद में पशु-चिकित्सा का उल्लेख है । अरुन्धती ओषधि गाय-बैल आदि के रोगों पर विशेष लाभप्रद है ।[१२] **(ज) साँप का केंचुली छोड़ना :** ऋग्वेद में वर्णन है कि साँप अपनी पुरानी केंचुली (खाल, खोली) छोड़ता है ।[१३] **(झ) पशु-पक्षियों का आलंकारिक प्रयोग :** ऋग्वेद में अदाता (कृपण) को श्वन् (श्वा, कुत्ता) कहा गया है ।[१४] जैसे -मूर्ख को गधा, उल्लू आदि । **(ञ) श्येन (बाज) के पंख सुदृढ़ :** बाज के पंख और हिरण के पैर बहुत मजबूत होते हैं ।[१५] **(ट) गरुत्मान् (गरुड़)** : इसके पंख सुन्दर होते हैं ।[१६]

---

१. विषं ते पुच्छधावसत् । अ० ७.५६.६ और ८
२. ह्रियै शल्यकः । यजु० २४.३५
३. भूम्या आखून् । यजु० २४.२६
४. मशकजम्भनी । अ० ७.५६.२
५. अ० ८.६.१०
६. अ० ४.३६.९
७. अ० ८.६.१०
८. ऐत०ब्रा० ४.९
९. तैत्ति० सं० ७.१.२.३
१०. सिकतास्वेव गर्दभी । अ० २०.१३६.२
११. चिच्चिकः । ऋग्०१०.१४६.२
१२. अरुन्धति । अ० ६.५९.१-३
१३. ऋग्० ९.८६.४४
१४. ऋग्० ९.१०१.१३
१५. ऋग्० १.१६३.१
१६. यजु० १२.४

साँप के काटने के तीन भेद : साँप के काटने के तीन रूप माने गए हैं :[१] **१. खात :** जिसमें साँप के दाँत गहरे गड़ गए हों । **२. अखात :** जिसमें साँप के दाँत कम गड़े हों । **३. सक्त :** जिसमें साँप की केवल रगड़ लगी हो । सुश्रुतसंहिता में इन भेदों के लिए क्रमशः ये नाम दिए गए हैं[२] : **१. सर्पित :** अर्थात् खात, साँप के गहरे दाँत लगना । **२. रदित :** अर्थात् अखात, कम गहरे दाँत लगना । **३. सर्पाङ्गाभिहत :** अर्थात् सक्त, केवल साँप की रगड़ लग जाना । चरकसंहिता में भी इसका विस्तृत वर्णन है ।[३]

सुश्रुत में सर्प-वर्णन : सुश्रुतसंहिता में सर्पों की जातियाँ, सर्प-विष, सर्पविष-चिकित्सा आदि का बहुत विस्तार से वर्णन है ।[४] साँपों के दर्वीकर आदि ५ भेद बताए गए हैं । साँपों की संख्या ८० दी गई है । आधुनिक जीवशास्त्रियों ने साँपों के ९ बड़े गण बताए हैं और उनमें ३२६ सर्पों की जातियाँ बताई हैं । इन ९ बड़े गणों में वैज्ञानिकों ने लगभग १७०० प्रकार के सर्प रखे हैं । इनमें से लगभग ३३० प्रकार के सर्प भारतवर्ष में पाये जाते हैं ।

सर्पविषचिकित्सा : अथर्ववेद में सर्पविषनाशक कतिपय ओषधियों का उल्लेख है । इनमें से कुछ ओषधियाँ ये हैं : **१. ताबुव और तस्तुव ओषधि :**[५] यह संभवतः कड़वी तोरई या कड़वी लौकी है । **२. अरंघुष और पैद्व ओषधियाँ :**[६] ये सफेद आक (धतूरा) के लिए हैं । सफेद आक सर्पविष-नाशक है । **३. अपराजिता ओषधि :** इसको हिन्दी में कोयल, कालीजेर, विष्णुक्रान्ता आदि कहते हैं । **४. वरणावती या वरण ओषधि**[७] : इसे गोपीचन्दन, सोरठी माटी या सौराष्ट्र मृत्तिका कहते हैं ।

---

१. खातम् अखातम् उत सक्तम् । अ० ५.१३.१
२. सुश्रुत० , कल्पस्थान ४.१४
३. चरक० , चिकित्सास्थान, अध्याय २३
४. सुश्रुत, कल्पस्थान प्रकरण, अध्याय ४ और ५
५. ताबुवेन अरसं विषम् । तस्तुवेन० । अ० ५.१३.१०-११
६. अरंघुषः० । पैद्वः० । अ० १०.४.४-५
७. वरणावत्याम्० । अ० ४.७.१

जीव-जन्तुओं के विभिन्न वर्ग

जीव-विज्ञान की दृष्टि से यजुर्वेद का २४वाँ अध्याय विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसमें सैकड़ों जीव-जन्तुओं का उल्लेख है। चारों वेदों में जीव-जन्तुओं के नाम अनेक मंत्रों में आये हैं। यहाँ पर सभी उपलब्ध जीव-जन्तुओं के नाम निम्नलिखित वर्गों में प्रस्तुत किए जा रहे हैं : १. जलीय (जलचर) जन्तु (Aquatic animals), २. सरीसृप (Reptiles), ३. पक्षी (Birds), ४. स्तनधारी (Mammals), ५. वन्यपशु (Wild animals), ६. कृमि-कीट (Insects)।

१. जलीय जन्तु (Aquatic animals)

इन जलीय जन्तुओं का उल्लेख प्राप्त होता है : १. शिंशुमार, शिशुमार[१] (सूसमार, मगर, Porpoise), २. अजगर[२] (समुद्री अजगर, नक्र), ३. पुरीकय[३] (एक जल-जन्तु), ४. जष[४] (झष, मगरविशेष), ५. मत्स्य[५] (मछली), ६. कूर्म[६] (कछुआ), ७. मण्डूक[७] (मेढक), ८. शकुल[८] (मछली), ९. कुलीपय[९], कुलीकय (जलजन्तु-विशेष), १० नक्र, नाक[१०] (नाक, मगरमच्छ, घड़ियाल), ११. प्लव[११] (एक जलचर), १२. मद्गु[१२] (एक जलचर), १३. मकर[१३] (मगर), १४. उद्र[१४] (केकड़ा), १५. कश्यप[१५] (कच्छप, कछुआ), १६. वर्षाहू[१६] (मेढकी)।

२. सरीसृप (Reptiles)

रेंगकर चलने वाले जन्तुओं को सरीसृप कहते हैं।[१७] इसमें सभी प्रकार के सर्प आदि जन्तु आते हैं। अथर्ववेद में १८ प्रकार के सर्पों की जातियों का उल्लेख है।[१८] ये हैं :

१. कैरात (भील आदि जातियों के निवास वाले जंगलों में रहने वाले सर्प), २. पृश्नि (चितकबरा सर्प), ३. उपतृण्य (घास में छिपकर रहने वाले सर्प), ४. बभ्रु (भूरे रंग वाले सर्प), ५. असित (काले साँप), ६. अलीक (धोखे के आक्रमण करने वाले सर्प), ७. तैमात (जलीय स्थान में रहने वाले सर्प), ८. अपोदक (मरु भूमि में रहने वाले सर्प), ९. सत्रासाह (आक्रामक साँप), १०. मन्यु (क्रोधी सर्प),

---

१. अ० ११.२.२५
२. अ० ११.२.२५
३. अ० ११.२.२५
४. अ० ११.२.२५
५. अ० ११.२.२५
६. अ० ९.४.१६
७. अ० ७.११६.२
८. अ० २०.१३६.१
९-१०. यजु० २४.२१
११-१२ यजु० २४.३४
१३. यजु० २४.२५
१४-१५ यजु० २४.३७
१६. यजु० २४.३८
१७. सरीसृपम्। अ० १९.४८.३
१८. अथर्व० ५.१३.५-९

११. आलिगी (शरीर पर लिपट जाने वाली सर्पिणी), १२. विलिगी (शरीर पर न चिपटने वाली सर्पिणी), १३. उरुगूला (बड़ी कटि या पूँछ वाली सर्पिणी), १४. असिक्नी (काली सर्पिणी), १५. दद्रुषी (जिसके काटने से शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं या दाद हो जाता है), १६. कर्णा (कानों वाली सर्पिणी, सल्लू साँप), १७. श्वावित् (एक प्रकार का साँप), १८. खनित्रिमा (भूमि के अन्दर बिल बनाकर रहने वाली सर्पिणी)।

अन्य सर्पों आदि के नाम :

१. सर्प[१] (साँप), २. अहि[२] (सर्प) , ३. पृदाकु, पृदाकू[३] (अजगर) ४. अजगर[४] (अजगर), ५. तिरश्चिराजि[५] (तिरछी धारी वाला साँप), ६. स्वज[६] (दोनों ओर सिर वाला साँप), ७. कल्माषग्रीव[७] (कबरी गर्दन वाला साँप), ८. श्वित्र[८] (सफेद रंग का साँप), ९. कसर्णील[९] (कद्रू का पुत्र, एक साँप), १०. दशोनसि[१०] (दस स्थानों से उठा हुआ साँप), ११. पैद्व[११] (साँपों को मार डालने वाला जन्तु), १२. वृश्चिक[१२] (बिच्छू), १३. लोहिताहि[१३] (लाल रंग का साँप), १४. गोधा[१४] (गोह), १५. जहका[१५] (जोंक), १६. गोलत्तिका[१६] (छिपकली), १७. कृकलास[१७] (गिरगिट), १८. तृष्टधूम[१८] (तीखी फुंकार वाला साँप), १९. तृष्टदंश्मा[१९] (तीखा डँसने वाला साँप), २० शयण्डक, शयाण्डक[२०] (छिपकली, कृकलास)।

---

१. सर्पः, अ० १२.१.४६
२. अहयः, अ० ६.६७.२
३. अ० १०.४.५
४. यजु० २४.३८
५-८. अ० ३.२७.२ से ६
९-१०. अ० १०.४.१७
११. अ० १०.४.५
१२. अ० १२.१.४६
१३. यजु० २४.३१
१४. यजु० २४.३५
१५. यजु० २४.३६
१६. यजु० २४.३७
१७. यजु० २४.४०
१८. अ० १९.४७.८
१९. अ० १२.१.४६
२०. यजु० २४.३३

३. पक्षी (Birds)

वेदों में पक्षियों के नामों की संख्या बहुत बड़ी है। केवल यजुर्वेद (अ० २४.१-४०) में ही ६० पक्षियों का उल्लेख है।

१. हंस[१] (हंस), २. बलाका[२] (सारस, सारसी), ३. क्रुञ्च्[३] (क्रौंच पक्षी, Curlew), ४. मद्गु[४] (जलकाक), ५. चक्रवाक[५] (चकवा), ६. मयूर[६] (मोर), ७. कपोत[७] (कबूतर), ८. उलूक[८] (उल्लू), ९. चाष[९] (नीलकंठ), १०. कुटरु[१०] (कुक्कुट, मुर्गा), ११. कपिंजल[११] (चातक, पपीहा), १२. कलविंक[१२] (गोरैया), १३. तित्तिरि[१३] (तीतर), १४. वर्तिका[१४] (बटेर), १५. ककर[१५] (पक्षिविशेष), १६. विककर[१६] (पक्षिविशेष)। १७. लब[१७] (लवा, बटेर), १८. कौलीक[१८] (एक पक्षी), १९. गोषादी[१९] (पक्षिविशेष, गाय आदि पर बैठने वाला), २०. कुलीका, पुलीका[२०] (पक्षिविशेष), मैत्रायणी संहिता में इसका नाम पुलीका दिया है (मै०सं० ३.१४.५), २१. पारावत[२१] (कपोत, कबूतर), २२. सीचापू[२२] (रात्रि में विचरण करने वाली एक पक्षिविशेष), २३. जतू[२३] (चमगादड़), २४. दात्यौह[२४], दात्यूह (मोर), तैत्तिरीय संहिता (५.५.१७.१) में इसे 'कालकंठ' (मोर) और सत्याषाढ-श्रौतसूत्र (१४.३) में इसे 'जलकुक्कुट' कहा गया है।२५. सुपर्ण[२५] (बाज, गरुड़), २६. क्षिप्रश्येन[२६] (बाज)।

२७. कंक[२७] (बक, बगुला), २८. धुंक्षा[२८] (पक्षिविशेष, ध्वांक्ष, काक) २९. पुष्करसाद्[२९] (कमल के पत्ते खाने वाला पक्षी-विशेष), ३०. शक[३०] (शकुन्त, छोटी चिड़िया), ३१. कक्कट[३१] (पक्षी-विशेष), ३२. शार्ग[३२] (वन्य चटक, जंगली चिड़िया), ३३. सृजय[३३] (एक पक्षी), ३४. शयाण्डक, शयण्डक[३४] (पक्षी-विशेष), ३५. शारि[३५] (सारिका, मैना), ३६. सुपर्ण[३६] (गरुड), ३७. आति[३७] (जलचर पक्षी या नीलकंठ), ३८. वाहस[३८] (एक पक्षी), ३९. दर्विदा[३९] (कठफोड़ा, खुटबढ़ैया), ४०. पैंगराज[४०] (चकोर, चकवा), ४१. अलज[४१] (बाज की जाति का एक पक्षी)।

१-५. यजु० २४.२२
६-१०. यजु० २४.२३
११-१६. यजु० २४.२०
१७-२०. यजु० २४.२४
२१-२५. यजु० २४.२५
२६. यजु० २४.३०
२७-२९. यजु० २४.३१
३०-३१. यजु० २४.३२
३२-३५. यजु० २४.३३
३६-४१. यजु० २४.३४

४२. कालका[४२] (एक पक्षी), ४३. दार्वाघाट[४३] (सारस या कठफोड़वा), ४४. कृकवाकु[४४] (मुर्गा, कुक्कुट), ४५. जतू [४५] (चमगादड़), ४६. सुषिलीका[४६] (एक पक्षी), ४७. अन्यवाप[४७] (कोकिल, कोयल), ४८. कपोत[४८] (कबूतर), ४९. क्वयि,[४९] कुवय (मैत्रा.सं०) (एक पक्षी), ५०. कुटरु[५०] (मुर्गा), ५१. पिक[५१] (कोयल), ५२. कृकलास[५२] (गिरगिट), ५३. पिप्पका[५३] (एक पक्षी), ५४. शकुनि[५४] (पक्षी, जंगली कौवा), ५५. वयस् [५५] (पक्षी), ५६. द्विपाद् पक्षी[५६] (दो पैर वाले पक्षी), ५७. शकुन[५७] (पक्षी), ५८. शका[५८] (पक्षी), ५९. संपातिन् [५९] (श्येन, बाज), ६०. बभ्रुक[६०] (बगुला), ६१. तर्द[६१] (कठफोड़वा, खुटबढैया), ६२. पतंग[६२] (टिड्डी)।

४२-४४. यजु० २४.३५
४५-४६. यजु० २४.३६
४७. यजु० २४.३७
४८. यजु० २४.३८
४९-५१. यजु० २४-३९
५२-५४. यजु० २४.४०
५५-५७. अ० १२.१.५१
५८. यजु० २४.३२
५९. अ० ७.७०.३
६०. यजु० २४.२६
६१-६२. अ० ६.५०.२

४. स्तनधारी जन्तु (Mammals)

स्तनधारी पशुओं का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद तीनों में पाया जाता है, सामवेद में इनकी संख्या कम है। अधिकांश पशु इसी कोटि में पाये जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से इनको दो भागों में बाँटा जाता है - ग्राम्य और आरण्य या वन्य पशु। अधिकांश नाम यजुर्वेद में प्राप्त होते हैं।

१. अश्व[१] (घोड़ा), २. तूपर[२] (शृंगहीन, मेष, मेढ़ा), ३. गोमृग[३] (गवय, नीलगाय), ४. मेष- मेषी[४] (भेड़, मेढ़ा), ५. वेहत्[५] (बन्ध्या गौ), ६. ऋषभ[६] (बैल), ७. उक्षन्, उक्षा[७] (बैल), ८. अनड्वह्[८] (बैल) ९. धेनु[९] (गाय), १०. वत्सतर, वत्सतरी[१०] (बछड़ा, बछिया), ११. पृश्नि[११] (चितकबरी गाय), १२. वशा[१२] (बन्ध्या गाय), १३. आखु[१३] (चूहा), १४. पाङ्क्त्र[१४] (एक प्रकार का चूहा), १५. कश[१५] (चूहे का एक भेद), १६. नकुल[१६] (नेवला), १७. ऋश्य[१७] (नर बारहसिंगा), १८. रुरु[१८] (मृग), १९. पृषत[१९] (चिह्न वाला मृग), २०. कुलुङ्ग[२०] (कुरंग, मृग), २१. परस्वत्[२१] (भैंसा, गैंडा), २२. गौर[२२] (मृग, भैंसा), २३. महिष[२३] (भैंसा), २४. गवय[२४] (नीलगाय), २५. उष्ट्र[२५] (ऊँट)।

२६. हस्ती, हस्तिन्[२६] (हाथी), २७. मर्कट[२७] (बन्दर), २८. अज[२८] (बकरा), २९. क्रोष्टा[२९] (गीदड़), ३०. गौरमृग[३०] (भैंसा), ३१. पिद्व[३१] (मृगविशेष), ३२. न्यङ्कु[३२] (गीदड़), ३३. पुरुषमृग[३३] (मनुष्य की तरह मुख वाला एक मृग), ३४. मूषिका[३४] (चुहिया), ३५. एणी[३५] (मृगी), ३६. मान्थाल[३६] (लोमड़ी), ३७. शश[३७] (खरगोश), ३८.वार्ध्रीनस, वार्ध्रीणस, वार्धाणस[३८] (गैंडा), ३९. घृणीवान्[३९] (पशुविशेष), ४०. खड्ग[४०] (गैंडा), ४१. श्वा, श्वन्[४१] (कुत्ता), ४२. गर्दभ[४२] (गधा), ४३. सूकर[४३] (सूअर), ४४. पेत्व[४४] (मेष, मेढ़ा), ४५. अवि[४५] (भेड़), ४६. वृषा, वृषन्[४६] (बैल, घोड़ा), ४७. दधिक्रावा, दधिक्रावन्[४७] (एक दिव्य घोड़ा), ४८. हरिण[४८] (हिरन), ४९. अर्वत्, अर्वा[४९] (घोड़ा), ५०. वंसग[५०] (साँड़), ५१. वृक[५१] (भेड़िया)।

१-५.	यजु० २४.१	६-९.	यजु० २४.१३
१०-१२.	यजु० २४.१४	१३-१६.	यजु० २४.२६
१७-२०.	यजु० २४.२७	२१-२५.	यजु० २४.२८
२६.	यजु० २४.२९	२७.	यजु० २४.३०
२८-३२.	यजु० २४.३२	३३.	यजु० २४.३५
३४-३५.	यजु० २४.३६	३६-३७	यजु० २४.३८
३८-३९.	यजु० २४.३९	४०-४३	यजु० २४-४०
४४.	ऋग्० ७.१८.१७	४५.	ऋग्० ९.१०९.७
४६.	ऋग्० १.१४०.६	४७.	यजु० २३.३२
४८.	ऋग्० १.१६३.१	४९.	ऋग्० १.९१.२०
५०.	ऋग्० १.७.८	५१.	ऋग्० १.४२.२

५. वन्य या वनचर पशु (Wild animals)

वेदों में वर्णित वन्य पशुओं की संख्या पर्याप्त है। उनके नाम आदि नीचे दिए जा रहे हैं :

१. सिंह[१] (शेर), २. भीमः मृगः[२] (शेर), ३. सिंही[३] (शेरनी), ४. शार्दूल[४] (व्याघ्र, बाघ, चीता), ५. गोमृग[५] (गवय, नील गाय), ६. गवय[६] (नील गाय), ७. गवयी[७] (मादा नीलगाय), ८. रोहित्[८] (लाल रंग की हरिणी), ९. आरण्य मेष[९] (जंगली मेढ़ा), १०. मयु[१०] (जंगली काला मृग), ११. उल[११] (ऊदबिलाव), १२. हलिक्ष्ण[१२] (चीता), १३. वृषदंश[१३] (जंगली बिलाव), १४. आरण्य अज[१४] (जंगली बकरा), १५. श्वाविध् , श्वावित्[१५] (सेह, सेही, साही), १६. वृक[१६] (भेड़िया), १७. शल्यक[१७] (सेह), १८. लोपाश[१८] (लोमड़ी), १९. ऋक्ष[१९] (रीछ, भालू), २०. ऋश्य[२०] (सींग वाला हिरण), २१. रोहित्[२१] (हिरण), २२. कुण्डृणाची[२२] (गोह, छिपकली की जाति का एक बड़ा जहरीला जंगली जन्तु), २३. सृमर[२३] (नील गाय), २४. रुरु[२४] (हिरण), २५. तरक्षु[२५] (तरक्ष, लकड़बग्घा, Hyena) २६. व्याघ्र[२६] (बाघ, चीता), २७. श्वपद्, श्वापद[२७] (वन्य जीव, शिकारी जानवर), २८. सालावृक[२८] (भेड़िया, लकड़बग्घा), २९. शरभ[२९] (एक वन्य शक्तिशाली पशु, यह शेर और हाथी का शत्रु है), ३०. द्वीपी, द्वीपिन्[३०] (चीता), ३१. वराह[३१] (सूकर, सूअर), ३२. पुरुषाद्[३२] (नरभक्षी वन्य पशु), ३३. ऋक्षीका[३३] (रीछ)।

---

१. ऋग्० १.६४.८
२. ऋग्० १.१५४.२
३. यजु० ५.१०
४-९. यजु० २४.२८,३०
१०-१३. यजु० २४.३१
१४. यजु० २४.३२
१५-१६. यजु० २४.३३
१७. यजु० २४.३५
१८-१९. यजु० २४.३६
२०-२२. यजु० २४.३७
२३-२४. यजु० २४.३९
२५. यजु० २४.४०
२६. अथर्व० ४.३.१
२७. अ० ८.५.११ ; ११.१०.८
२८. ऋग्० १०.७३.३
२९. अ० ९.५.९
३०. अ० ४.८.७
३१. ऋग्० ९.९७.७
३२-३३. अ० १२.१.४९

६. कृमि, कीट (Insects)

वेदों में कतिपय कृमि और कीटों-का भी वर्णन मिलता है । ये हैं :

१. मशक[१] (मच्छर), २. भृंग[२] (भौंरा), ३. प्लुषि[३] (पिस्सू, घुत्ती, Flea), ४. कृमि[४] (कीड़ा), ५. मक्ष[५], (बड़ी शहद की मक्खी), ६. मक्षिका[६] (मक्खी), ७. पुष्करसाद्[७] (भौंरा), ८. पिपीलिका, पिपील[८] (चींटी, कीड़ा), पिपीलक (बड़ा चींटा, मकौड़ा), ९. चिच्चिक[९] (झिल्ली, झींगुर), १०. भृंग, भृंगा[१०] (भौंरा, भौंरी, भ्रमरी), ११. जतू[११] (चमगादड़), १२. कुरूरु[१२] (एक कृमि), १३. वघा[१३] (धुन जैसा कृमि, यह अन्न खा जाता है, एक जहरीला कृमि), १४. वृक्षसर्पी[१४] (पेड़ पर चढ़ने वाली सर्पिणी), १५. अलिंश[१५] (एक विषैला कीड़ा), १६. वत्सप[१६] (एक रोगकृमि), १७. ऋक्षग्रीव[१७] (रीछ की तरह गर्दन वाला कीड़ा), १८. मकक[१८] (मच्छर), १९. खलज[१९] (खलिहान में होने वाले कीड़े), २०. शकधूमज[२०] (गोबर या गोबर के धूम से उत्पन्न कृमि), २१. उरुण्ड[२१] (बड़े मुँह वाले कीड़े), २२. मट्मट[२२] (मटमैला या खाकी रंग वाला कीड़ा), २३. द्व्यास्य[२३] (दोनों ओर मुँह वाला कीड़ा), २४. चतुरक्ष[२४] (चार आँख वाला कीड़ा), २५. पञ्चपाद[२५] (पाँच पैर वाला कीड़ा) ।

१-३. यजु० २४.२९
४. यजु० २४.३०
५. ऋग्० ४.४५.४
६. ऋग्० १.११९.९
७. यजु० २४.३१
८. ऋग्० १०.१६.६
९. ऋग्० १०.१४६.२
१०-१४. अ० ९.२.२२
१५-१६. अ० ८.६.१
१७. अ० ८.६.२
१८. अ० ८.६.१२
१९-२२. अ० ८.६.१५
२३-२५. अ० ८.६.२२

कृमियों के नाम रूपादि : कृमियों के पाँच भेद ये बताए गए हैं[१] : १. दृष्ट (दीखने वाले), २. अदृष्ट (दिखाई न देने वाले), ३. कुरूरु (भूमि पर रेंगने वाले), ४. अल्गण्डु (बिस्तर आदि पर रहने वाले), ५. शलुन (वेग से चलने वाले) । कृमियों को गुण की दृष्टि से दो भागों में बाँटा गया है [२] : १. दुर्णाम (रोगोत्पादक कृमि), २.सुनाम (पोषक, शरीर को लाभ देने वाले कृमि) । इन्हें दो प्रकार के कृमि समझ सकते हैं : रोग-कृमि कुछ छोटे होते हैं और कुछ आकार में बड़े । कुछ शब्द करने वाले होते हैं, कुछ नहीं ।[३] कृमि अनेक रंग के होते हैं : समान रूप वाले, लाल, भूरे, श्वेत, काले, विविध रूप वाले ।[४] कुछ कृमियों के बाल या रोम होते हैं ।[५] कुछ कृमियों के नाम ये हैं : येवाष, कष्कष, शर्कु, कोक, मलिम्लुच, पलीजक, आश्रेष, वव्रिवासस् , ऋक्षग्रीव और प्रमीलिन् ।[६] कृमियों के उत्पत्तिस्थान ये हैं : पर्वत, वन, ओषधि, वनस्पति, पशु और जल ।[७] रोगकृमि इन स्थानों पर छिपे रहते हैं : आँत, सिर के अन्दर के भाग और पसलियों में ।[८] रोग के कृमि आँख, नाक, दाँत आदि स्थानों पर घुसे रहते हैं ।[९]

---

१. अथर्व० २.३१.२
२. दुर्णामा च सुनामा च । अ० ८.६.४
३. अ० १९.३६.३
४. अ० ५.२३.४-५
५. अ० ८.६.२३
६. अ० ५.२३.७-८ ; ८.६.२
७. अ० २.३१.५
८. अ० २.३१.४
९. अ० ५.२३.३

शिल्प-विज्ञान (Technology)

(क) विविध शस्त्रास्त्र

शस्त्र और अस्त्र : शुक्रनीति में अस्त्र और शस्त्र का अन्तर स्पष्ट किया गया है कि जो मन्त्र या यन्त्र के द्वारा फेंका जाता है, उसे अस्त्र (Missile) कहते हैं। जिन्हें हाथ में लेकर लड़ा जाता है, उन्हें शस्त्र कहते हैं, जैसे - असि (तलवार), कुन्त (भाला) आदि। अस्त्र दो प्रकार के होते हैं - मंत्रशक्ति से छोड़े जाने वाले (मांत्रिक, दिव्य अस्त्र) और दूसरे यान्त्रिक (किसी यंत्र या मशीन से छोड़े जाने वाले) अथवा नालिक (नली वाले यंत्र से छोड़े जाने वाले)। नालिक के भी दो भेद हैं : लघुनालिक (छोटी नली वाले, बन्दूक आदि), बृहत्-नालिक (बड़ी नली वाले, तोप आदि)। लघुनालिक का छेद छोटा होता है और यह थोड़ी दूर तक के लक्ष्य का भेदन करता है। बृहत्- नालिक का छेद बड़ा होता है और यह बहुत दूर तक के लक्ष्य को भेदन करता है। (शुक्रनीति ४.७. १८१ से १८५)

दिव्य अस्त्र

वेदों में अस्त्र (Missile) के लिए हेति और मेनि शब्द हैं। दिव्य अस्त्रों का प्रभाव असाधारण होता था। ये प्राकृतिक शक्तियों से जन्य होते थे, जैसे - विद्युत्, अग्नि, वायु आदि से जन्य अथवा किसी देवता या ऋषि द्वारा प्रदत्त होते थे। इन दिव्य अस्त्रों का उल्लेख वेदों में मिलता है :-

(१) आग्नेय अस्त्र या अग्निबाण : आग्नेय अस्त्र को अग्निबाण भी कहते थे। इसके प्रयोग से जलती हुयी आग चारों ओर फैल जाती थी। यह अग्नि के साथ धुआँ भी फेंकता था, जिससे शत्रु बेहोश हो जाते थे। अथर्ववेद में वर्णन है कि आग्नेय अस्त्र के प्रयोग से शत्रु बेहोश हो गए और इन्द्र ने उनके सिर काट लिए। इनके प्रयोग से आँख से अन्धा होने का भी वर्णन है। शत्रु अन्धे हो गए और सेना पराजित हो गई।

तेषां वो अग्निमूढानाम् इन्द्रो हन्तु वरंवरम् । अ० ६.६७.२

चक्षूंषि - अग्निरादत्तां पुनरेतु पराजिता । अ० ३.१.६

(२) वायव्य अस्त्र - इसको मारुत अस्त्र भी कहते हैं। इसके प्रयोग से आंधी जैसी तेज हवा चलने लगती थी और शत्रु किंकर्तव्यविमूढ हो जाते थे। अथर्ववेद में वर्णन है कि इन्द्र इस अस्त्र के प्रयोग से शत्रुओं को इधर-उधर भगा दे।

अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय । अ० ३.१.५

(३) पाशुपत अस्त्र : इसको रुद्रास्त्र भी कहते हैं। पशुपति या रुद्र शिव का नाम है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में रुद्र के इस अस्त्र का वर्णन है और इससे बचाव की प्रार्थना की गई है। (यजु० १६.५०)

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः । ऋग्० २.३३.१४

(४) ब्रह्मास्त्र : यह ब्रह्मा का अस्त्र माना जाता था। इसकी प्रहारक शक्ति असाधारण थी। इसकी कोई काट नहीं थीं। अथर्ववेद में कहा गया है कि यह सबसे बड़ा प्रहारक है। यह अस्त्र घोर तपस्या का फल है।

ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरसि० । अथर्व० ५.६.९

(५) आथर्वण अस्त्र : यह अथर्वन् ऋषि द्वारा आविष्कृत था। इसका प्रयोग चोर, हिंसक पशु आदि पर किया जाता था। अथर्ववेद में वर्णन है कि इसके प्रयोग से व्यक्ति या पशु निश्चेष्ट हो जाता था और पकड़ा जाता था।

न संयमो न वि यमो० आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् । अथर्व० ४.३.७

(६) वारुण अस्त्र या वरुण के पाश : ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इसका उल्लेख है। ये नागपाश अर्थात् साँप की तरह मनुष्य को लिपट कर बांध लेते थे और पापी को जकड़ कर मार देते थे। (ऋग्० १.२४.१५, यजु० १२.१२)

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त० । अथर्व० ४.१६.६

(७) संमोहन अस्त्र : अथर्ववेद में उल्लेख है कि इस अस्त्र के प्रयोग से शत्रुसेना को बेहोश कर दिया जाता था और उसके हाथ काट लिए जाते थे। (अथर्व० ३.१.५; ३.१.६; ६.६७.१ और २)

अग्निः ... स सेनां मोहयतु परेषां
निर्हस्तान् च कृणवत्० । अथर्व० ३.१.१

(८) तामस अस्त्र : चारों वेदों में इसका उल्लेख है। यह अस्त्र अश्रुगैस (Tear Gas) के तुल्य होता था। वह चारों ओर धुआँ फैला देता था। धुएँ से चारों ओर अंधेरा हो जाता था। शत्रुसेना के सैनिकों का दम घुटने लगता था और वे किंकर्तव्यविमूढ होकर इधर-उधर भागने लगते थे। इसके लिए कहा गया है कि इससे शत्रुसेना के सैनिक एक -दूसरे को पहचान नहीं पाते थे। इस अस्त्र का दूसरा नाम 'अप्वा' भी था। यह अंगों को शिथिल कर देता था। त्रिषन्धि सेनापति ने इस अस्त्र के प्रयोग से सारी शत्रुसेना को नष्ट किया था। (ऋग्० १०.१०३.१२ ; यजु० १७.४४ ; अथर्व० ३.२.५, ११.१०.१९)

तां विध्यत तमसापव्रतेन, यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ।
अथर्व० ३.२.६ ; यजु० १७.४७

(९) ऐन्द्र अस्त्र या वज्र : चारों वेदों के सैकड़ों मंत्रों में वज्र की चर्चा है। यह इन्द्र का प्रमुख अस्त्र है। यह अयस् अर्थात् उत्तम कोटि के लोहे या फौलाद का बना हुआ होता था। इन्द्र के वज्र में तीन संधि या जोड़ थे, अतः इसे त्रिषन्धि कहते थे। इन्द्र के वज्र को हजार नोक वाला बताया गया है। (ऋग्० १.५७.६; १.८५.९ ; अथर्व० २०.३५.६)

अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिः । ऋग्० १.८०.१२
वज्रेण त्रिषन्धिना । अथर्व० ११.१०.३

अथर्ववेद में वर्णन है कि १०० गांठ वाला भी वज्र होता था और इससे एक साथ सौ व्यक्तियों का वध किया जा सकता था।

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन० । अथर्व० १२.५.६६
मेनिः शतवधा हि सा । अथर्व० १२.५.१६

(१०) अग्निपुराण में वर्णित शस्त्रास्त्र : अग्निपुराण (अध्याय २४८) में शस्त्रास्त्रों के ५ भेदों का वर्णन है। **(१) यन्त्रमुक्त :** यंत्रों आदि से फेंके जाने वाले। जैसे - प्रक्षेपक यंत्र बन्दूक आदि से छोड़े जाने वाले गोले आदि। **(२) पाणिमुक्त :** हाथ से फेंके जाने वाले। जैसे -भाला आदि। **(३) मुक्तसंधारित :** फेंक कर फिर वापस किये जाने वाले, नोकीला आयुध जिसके द्वारा वस्तु खींचकर पास लाई जावे। जैसे - कांटेदार जाल आदि। **(४) अमुक्त :** हाथ में रखे जाने वाले। जैसे - खड्ग आदि। **(५) बाहुयुद्ध :** बाहुयुद्ध वाले उपकरण।

यन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं, मुक्तसंधारितं तथा ।
अमुक्तं बाहुयुद्धं च, पंचधा तत् प्रकीर्तितम् । अग्निपुराण, अ० २४८.२

(११) कौटिलीय अर्थशास्त्र में वर्णित शस्त्रास्त्र : कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में शस्त्रास्त्रों के विषय में कुछ उपयोगी बातें दी हैं। यंत्रों द्वारा चालित अस्त्रों को दो भागों में बांटा है - स्थितयंत्र और चलयंत्र। स्थितयंत्र वे अस्त्र हैं, जिसकी मशीन एक ही स्थान पर रहती है। चलयंत्र वे हैं, जिनकी मशीन इधर-उधर ले जाई जा सकती है।

स्थितयंत्र के १० भेदों में से कुछ ये हैं : -

१. सर्वतोभद्र : जिससे चारों ओर गोला आदि फेंका जा सके। जैसे-मशीनगन। **२. जामदग्न्य** - बाण बरसाने वाला बड़ा यंत्र। **३. विश्वासघाती**- दुर्ग के द्वार के पास खाई के ऊपर रखी हुई तिरछी मशीन। इसके स्पर्श से मृत्यु हो जाती थी। **४. पर्जन्यक** - यह वारुण अस्त्र है। आग बुझाने वाला यंत्र, दमकल या फायर ब्रिगेड। (कौ० अर्थ० पृष्ठ २०९) .

कौटिल्य ने चलयंत्र १६ गिनाए हैं। इनमें से कुछ ये हैं : -

१. पांचालिक : बढ़िया लकड़ी पर तेज धार वाला यंत्र। यह दुर्ग के बाहर जल के अन्दर रखा जाता था। इसको जल-सुरंग (Mine) कह सकते हैं। **२. शतघ्नी :** किले की दीवार पर रखा स्तम्भ की आकृति का यंत्र। इससे एक साथ सौ मनुष्यों को मारा जा सकता था। **३. त्रिशूल :** वर्तमान त्रिशूल की आकृति का अस्त्र। **५. चक्र :** तीक्ष्ण धार वाला चक्र। इसी अस्त्र के प्रयोग के कारण श्रीकृष्ण को चक्रधर कहते थे। (कौ०अर्थ० पृष्ठ २०९)

कवच और आवरण : कौटिल्य ने ६ प्रकार के वर्म (कवच) बताए हैं। ये हैं - **१. लोहजाल** - सिर से पैर तक ढकने का लोहे का आवरण। **२. लोहजालिका** - सिर को छोड़कर अन्य अंगों को ढकने वाला आवरण। **३. लोहपट्ट** - हाथों को छोड़कर शेष सारे शरीर को ढकने वाला आवरण। **४. लोह कवच :** केवल छाती और पीठ को ढकने वाला आवरण। **५. सूत्रकंकट** - पक्के सूत का बना कवच, कमर से कूल्हे तक की रक्षा के लिए। **६. मिश्रित कवच** - यह शिंशुमार (सूंस जलजन्तु) और गैंडा आदि के चमड़े, खुर और सींग के मिश्रण से बनाया जाता था। इनके अतिरिक्त ७ प्रकार के अन्य आवरण बताए हैं, जो शरीर के किसी विशेष अंग की रक्षा के लिए होते थे। इनके नाम हैं - शिरस्त्राण, कण्ठत्राण, कूर्पास, कंचुक, वारवाण, पट्ट, नागोदरिका।

(कौ० अर्थ० पृष्ठ २११ से २१२, गैरोला - संस्करण)

मानवीय अस्त्र, शस्त्र

वेदों में अस्त्र और शस्त्र के लिए आयुध शब्द का प्रयोग है। आयुध जीवनरक्षक है, अत: ऋग्वेद में कहा है कि योद्धा आयुध को अपना प्रिय भाई या सम्बन्धी मानते हैं, (ऋग्० ८.६.३)। युद्धों में अस्त्र और शस्त्र दोनों का प्रयोग होता था। वेदों में अनेक आयुधों का वर्णन है। उनमें से कुछ विशिष्ट शस्त्रास्त्रों का विवरण दिया जा रहा है : -

(१) धनुष : चारों वेदों के सैकड़ों मंत्रों में धनुष का वर्णन है। यजुर्वेद के अध्याय १६ में शिव के धनुष का नाम पिनाक दिया गया है, (मंत्र ५१)। धनुर्धारी के लिए ये शब्द आये हैं - धानुष्क, धन्वायिन्, इषुमत् , धन्वासह, (यजु० १६.२२ ; ऋग्० १.१२७.३)। कौटिल्य ने बताया है कि धनुष ४ प्रकार से बनाए जाते थे- १. ताल (ताड़) से, २. चाप (बाँस) से, ३. दारव (बढ़िया लकड़ी) से, ४. शाङ्र्ग (सींग) से। धनुष को कार्मुक, कोदण्ड, द्रूण भी कहते हैं।

(२) बाण : वेदों में बाण के लिए बाण, इषु, शर, शरव्या, शल्य, सायक आदि शब्द आए हैं। बाण का अगला भाग लोहे, हाथी दाँत या अन्य कठोर पदार्थ

से बनता था । ऋग्वेद में वर्णन है कि बहुत बड़े बाणों में सौ तक नोक होती थी और उनमें सैकड़ों पंख लगे होते थे, (ऋग्० ८.७७.७) । रुद्र के विषय में कहा गया है कि उसके पास ऐसा धनुष-बाण था, जिससे सैकड़ों और हजारों लोगों को मारा जा सकता था ।

धनुर्बिभर्षि ... सहस्रघ्नि शतवधं० । रुद्रस्येषुः० । अथर्व० ११.२.१२

कुछ बाण शत्रुवध के लिए विष में बुझे हुए भी होते थे । इनका विष उतारने की विधि भी अथर्ववेद में दी हुई है ।

शल्याद् विषं निरवोचम् । अथर्व० ४.६.५

यजुर्वेद में धनुष बनाने वाल को धनुष्कार, बाण बनाने वाले को इषुकार और प्रत्यंचा (डोरी) बनाने वाले को ज्याकार कहा गया है । (यजु० ३०.७)

(३) इषुधि, तूणीर : युद्ध के समय बाणों को रखने के लिए एक विशेष प्रकार का खोल प्रयोग में लाया जाता था,इसे इषुधि, तूणीर और निषंग कहते थे । (ऋग्० ६.७५.५ ; यजु० १६.६१)

(४) सृक : यह मुख्य रूप से भाले के लिए है । सृक और सृका दोनों शब्दों का अर्थ भाला है । भालेधारी के लिए सृकाहस्त, सृकायिन् और सृकावन्त् शब्द वेदों में आए हैं । (यजु० १६.६१, १६.२१ ; मैत्रायणी सं० २.९.९)

(५) हेति, मेनि : ये दोनों शब्द क्षेप्य अस्त्र (Missile, मिसाइल) के लिए प्रयुक्त होते थे । क्षेप्य अस्त्रों में बाण, भाला, वज्र सभी आते हैं । (ऋग्० १०.८९.१२; अथर्व० १२.५.१६)

(६) प्रहेति : प्रक्षेप्य अस्त्रों में जो अधिक भयंकर और प्रभावकारी अस्त्र (Missile) होते थे, उन्हें प्रहेति कहते थे । यजुर्वेद में हेति और प्रहेति दोनों शब्दों का साथ-साथ प्रयोग हुआ है । इससे ज्ञात होता है कि अधिक घातक अस्त्रों को प्रहेति कहते थे । (यजु० १५.१५ से १९)

(७) अशनि : यह वज्र के लिए है । यह जलता हुआ प्रक्षेपास्त्र है, जिससे शत्रुओं को भस्म कर दिया जाता था । (ऋग्० १.८०.१३)

(८) ऋष्टि : यह एक विशेष प्रकार का भाला है । मरुत् आदि देव इसे कंधे पर लेकर चलते थे । (ऋग्० ५.५४.११)

(९) सीसे की गोली : चोर और डाकुओं को मारने के लिए सीसे की गोली का प्रयोग होता था । इसे वेद में सीस कहा गया है ।

तं त्वा सीसेन विध्यामः । अथर्व० १.१६.४

(१०) हलमुख यंत्र : भाले की तरह के आयुधों को हलमुख यंत्र कहा गया है । कौटिल्य ने इनके ये नाम दिए हैं : - **१. शक्ति** - कनेर के पत्ते की आकृति

वाला, ४ हाथ लंबा लोहे का बना अस्त्र । **२. प्रास** - २४ अंगुल लंबा, दोनों ओर धार वाला अस्त्र । **३. कुन्त** - पाँच, छह या सात हाथ लंबा हथियार । **४. हाटक** - कुन्त के समान तीन काँटों वाला हथियार । **५. भिण्डिपाल** - भारी सिर वाला हथियार । **६. शूल** - नोकीला हथियार । **७. तोमर** - बाण के समान तेज मुख वाला, ४, साढ़े चार या ५ हाथ लंबा हथियार । अन्य हलमुख यंत्रों के नाम हैं - वराहकर्ण, कणप, कर्पण और त्रासिका । ये सभी हल के अग्रभाग के समान तेज हथियार हैं । (कौटिल्य अर्थ० पृष्ठ० २१०)

(११) असि : यह तलवार है । यह पक्के लोहे की बनती थी । अथर्ववेद में वर्णन है कि चोर, डाकुओं और शत्रुओं के नाश के लिए इसका उपयोग होता था ।

स्वायसा असय : सन्ति नो गृहे । अथर्व० १०.१.२०

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के खड्ग (तलवारों) का वर्णन किया है । ये हैं - **(१) निस्त्रिंश** - जिसका अग्रभाग काफी टेढ़ा हो । **(२) मण्डलाग्र**- जिसका अग्रभाग कुछ गोलाकार हो । **(३) असियष्टि :** जिसका आकार पतला एवं लम्बा हो । (कौटिल्य अर्थ० पृष्ठ२११)

(१२) स्वधिति : यह तलवार या छुरी है । पशुओं आदि को मारने में इसका उपयोग होता था । (ऋग्० १.१६२.१८)

(१३) परशु : यह चौड़ी धार की कुल्हाड़ी है । यह बढ़िया लोहे से बनाई जाती थी । यह अतितीक्ष्ण शत्रुनाशक आयुध है । (ऋग्० १.१२७.३) । कौटिल्य ने इसको क्षुरवर्ग के आयुधों में रखा है । (कौ० अर्थ० पृष्ठ २११)

(१४) क्षुर : यह चौड़े फाल वाले छुरे के तुल्य होता था । यह अतितीक्ष्ण शस्त्र था । (ऋग्० १.१६६.१०)

(१५) वाशी : यह परशु या वसूले के तुल्य शस्त्र है । यह लोहे का बना होता था और मरुतों का प्रिय शस्त्र था । (ऋग्० ८.२९.३)

(१६) कृपाण : ऋग्वेद में कृपाण-युद्ध का वर्णन है । यह वर्तमान कृपाण के तुल्य शस्त्र था । इन्द्र ने कृपाण-युद्ध के लिए सैनिकों को प्रोत्साहित किया था ।

चोदयो नॄन् कार्पाणे शूर वज्रिवः । (ऋग्० १०.२२.१०)

(१७) शूल : यह नुकीला लोहे का बना हुआ शस्त्र था, जो सीधा पेट आदि में मारा जाता था । इसके लगते ही उस स्थान से खून बहने लगता था । कौटिल्य ने भी हलमुख आयुधों में शूल का उल्लेख किया है । (ऋग्० १.१६२.११)

(१८) चक्र : ऋग्वेद में चक्र का आयुध के रूप में उल्लेख है । यह लोहे का तीक्ष्ण धार वाला चक्र होता था । इसको अंगुलियों पर तेजी से घुमाकर शत्रु पर फेंका जाता था । इन्द्र ने शत्रुओं को मारने के लिए इसका प्रयोग किया था ।

नि चक्रेण रथ्या० । ऋग्० १.५३.९

(१९) वज्र (Dynamite) **:** ऋग्वेद के एक मंत्र में वज्र शब्द से डाइनामाइट (Dynamite) का संकेत है । वज्र से पहाड़ तोड़कर नदियों का मार्ग बनाया गया ।

वज्रेण खानि - अतृणन् - नदीनाम् । ऋग्० २.१५.३

(२०) उल्का : ऋग्वेद और यजुर्वेद में इसका उल्लेख है । यह जलता हुआ आग का गोला होता था । यह एक साथ चारों ओर शत्रुओं पर फेंका जा सकता था और उन्हें जलाया जा सकता था ।

वि सृज विष्वगुल्काः । ऋग्० ४.४.२ : यजु० १३.१०

रासायनिक युद्ध और शत्रुनाशन

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के अनेक मंत्रों में तामस अस्त्र और संमोहन अस्त्रों का वर्णन है । इनमें वर्णन है कि यह विषैला अस्त्र चारों ओर धुआँ देता था । इसके प्रयोग से शत्रुओं का दम घुटने लगता था । त्रिषन्धि सेनापति ने इस अस्त्र के प्रयोग से सारी शत्रुसेना को नष्ट किया था । संमोहन अस्त्र से शत्रुसेना को बेहोश कर दिया जाता था तथा उनके सिर और हाथ काट लिए जाते थे । इसी प्रकार अथर्ववेद में धूमाक्षी अस्त्र का उल्लेख है । यह शत्रु पर फेंका जाता था और इसके प्रयोग से शत्रुओं की आँखों में धुआँ घुस जाता था । (ऋग्०१०.१०३.१२ ; यजु० १७.४४, १७.४७ ; अथर्व० ३.१.१ ; ३.२.१ ; ६.६७.१ और २ ; ११.१०.१९)

धूमाक्षी सं पततु । अथर्व० ११.१०.७

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के १४वें अधिकरण में औपनिषदिक प्रकरण दिया है । इसमें रासायनिक द्रव्यों की सहायता से शत्रुओं को हानि पहुँचाने का वर्णन है । अत: इसका नाम परघातप्रयोग रखा गया है । इसमें विविध ओषधियों और द्रव्यों के प्रयोग से शत्रुओं को पीडित करने का वर्णन है ।

ये प्रयोग कितने विश्वसनीय हैं, यह कहना कठिन है । कुछ विशेष उल्लेखनीय प्रयोग ये हैं :

(१) सद्य:प्राणहारक धूमयोग : भिलावा और बकुची के रस में चितकबरा मेढक, तीतर, कानखजूरा आदि का चूर्ण मिलाया जाए तो उसका धुआँ तत्काल प्राणों का नाश करता है । छिपकली, दुमई साँप, जंगली तीतर आदि के धूम से भी इसी प्रकार तत्काल प्राणान्त होता है ।

चित्रभेक ..सद्य:प्राणहरमेतेषां वा धूमः । कौटि० अर्थ० पृ० ९०३-९०४

(२) विषाक्त धूम : यदि काले साँप को प्रियंगु (कागुन) के साथ मिलाकर उसका धुआँ किया जाए तो वह भी तत्काल प्राणनाशक होता है ।

कृष्णसर्पप्रियंगुभिः , सद्यः प्राणहरो मतः । (कौ० अर्थ० पृष्ठ ९०४)

(३) हवा के साथ विष फैलाना : शतावरी, कर्दम (अगर आदि का लेप), केकड़ा, कनेर, कटुतुंबी और मछली का धुआँ, अरंड, ढाक और पुआल के साथ मिलाकर किया जाए और उसे हवा की दिशा में उड़ाया जाय तो जहाँ तक धुआँ जाएगा वहाँ तक लोगों को मार देगा ।

शतकर्दम .. प्रवातानुवाते प्रणीतो यावत् चरति तावत् मारयति ।

(कौ० अर्थ०पृष्ठ ९०५)

(४) अंधा करने वाला धूम : पूतिकीट (पात बिच्छी),. मछली, कड़वी तुंबी, शतावरी, कर्दम, ढाक की लकड़ी, इन्द्रगोप के चूर्ण को यदि बकरे के सींग और खुर के चूर्ण के साथ मिला दिया जाय तो उनका धुआँ अन्धा बना देता है ।

पूतिकीट .... अन्धीकरो धूमः । (कौ०अर्थ० पृष्ठ ९०५)

(५) अन्धीकरण : साँप की केंचुली, गाय का गोबर, घोड़े की लीद और दो मुँह वाले साँप का मस्तक, इनके चूर्ण का धूम भी लोगों को अंधा कर देता है ।

सर्पनिर्मोकं ... अन्धीकरो धूमः । (कौ० अर्थ० पृष्ठ ९०५)

(६) जल को विषाक्त करना : मैना, कबूतर, बगुला और बगुली की विष्ठा को आक, अक्षि, पीलु और सेंहुड़ के दूध में पीस कर अंजन तैयार करें तो वह लोगों को अंधा कर देता है और जल को जहरीला बना देता है ।

शारिका .. अन्धीकरणम् अंजनम् उदकदूषणं च ।

(कौ०अर्थ० पृष्ठ ९०६)

(७) रोगोत्पादक योग : कुछ ऐसे योग हैं, जिनके प्रयोग से बीमारियाँ फैलाई जाती हैं । कुछ योग ये हैं :

(क) गिरगिट, छिपकली और अंधअहिक का धुआँ नेत्रज्योति को नष्ट करता है और पागल बना देता है ।

(ख) गिरगिट और छिपकली के योग से बना धुआँ कोढ़ उत्पन्न करता है ।

(ग) यदि गिरगिट और छिपकली के उक्त योग में चितकबरा मेढ़क और शहद मिला दिया जाय तो प्रमेह उत्पन्न करता है ।

(घ) कूट वृक्ष के पांचों अंग, कौडिन्य कीड़ा, अमलतास, शहद और महुआ इन चीजों का योग ज्वर उत्पन्न करता है । (कौ०अर्थ० पृष्ठ ९०७ और ९०८)

(ख) वास्तु-शास्त्र (Architecture)

ऋग्वेद और अथर्ववेद में वास्तुशास्त्र या स्थापत्यकला से संबद्ध कुछ मंत्र मिलते हैं, जिनसे उस समय की प्रोन्नत शिल्प-व्यवस्था का ज्ञान होता है । वेदों में वसति, दुर्ग, पुर एवं भवन सम्बन्धी विभिन्न संकेतों से प्रोन्नत वास्तु- विकास का

ज्ञान होता है । प्रो० विनोद विहारी दत्त ने 'टाइन प्लानिंग इन एंसेंट इंडिया' में कहा है कि 'निश्चय ही वे लोग जो लोह दुर्गों का निर्माण कर सकते थे, स्तम्भबहुल विशाल भवनों के निवेश में दक्ष थे तथा बड़े नगरों का विन्यास कर सकते थे, वे निश्चय ही नागरिक कलाओं के वैज्ञानिक ज्ञान से शून्य नहीं थे ।'

विशाल भवन : ऋग्वेद में वर्णन है कि राजा मित्र और वरुण के राजद्वार में हजार खंभे थे ।

राजानौ .. ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आसाते । ऋग्० २.४१.५

राजद्वार या सभागृह के लिए मंत्र में सदस् शब्द है । एक अन्य मंत्र (ऋग्० ५.६२.६) में भी 'सहस्रस्थूणम्' हजार खम्भे वाले घर का उल्लेख है ।

ऋग्वेद के एक मंत्र में राजा वरुण के एक हजार द्वार वाले बड़े महल का उल्लेख है ।

बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः
सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते । ऋग्० ७.८८.५

मंत्र में 'बृहन्तं मानम्' के द्वारा विशाल परिमाण वाले भवन को सूचित किया गया है ।

ऋग्वेद में त्रिधातु अर्थात् तिमंजिले (त्रिभूमिक) भवन का उल्लेख है । भवन की विशेषता बनाई गई है कि यह भद्र (सुखद) और अनातुरम् (किसी प्रकार के रोगाणु से रहित) हो । इसमें सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था हो ।

यद् भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद् वरूथ्यम् । ऋग्० ८.४७.५

ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में त्रिधातु (तिमंजिले) भवन की विशेषताएँ बताई गईं हैं कि वह त्रिवरूथ हो, उसमें तीन प्रकार की सुरक्षा की व्यवस्था हो, अर्थात् गर्मी, सर्दी और वर्षा तीनों ऋतुओं में इसमें सुरक्षित रह सकें ।

स्वस्तिमत् का अभिप्राय है कि वह सभी सुविधाओं से युक्त हो । साथ ही उसकी छत (छर्दि) ऊँची हो ।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यः । ऋग्० ६.४६.९

एक अन्य मंत्र (ऋग्० ७.१०१.२) में सुखद तिमंजिले भवन की प्रार्थना की गई है ।

लोह-निर्मित नगर : ऋग्वेद और अथर्ववेद के कई मंत्रों में लोह-निर्मित नगर या किले का वर्णन है । मंत्र का कथन है कि ये लोहे के बने दुर्ग अज़ेय हों ।

पुरः कृणुध्वम् आयसीरधृष्टाः । अथर्व० १९.५८.४

ऋग्वेद का कथन है कि इन्द्र ने असुरों के लोहे के किलों को नष्ट किया और उन्हें मारा ।

हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत् । ऋग्० २.२०.८

एक अन्य मंत्र में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह सौ लोहे की नगरी दे और हमारी रक्षा करे ।

शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि । ऋग्० ७.३.७

पत्थर के नगर : ऋग्वेद में वर्णन है कि पत्थर के बड़े नगर बनाए जाते थे । इन्द्र ने ऐसे सौ पत्थर के नगर भक्त दिवोदास को दिए ।

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । ऋग्० ४.३०.२०

वातानुकूलित भवन (Air-conditioned House) : अथर्ववेद और यजुर्वेद में एक वातानुकूलित भवन का वर्णन किया गया है । इसके लिए बताया गया है कि इसमें बर्फ की पतली परत भवन के चारों ओर लगाई जाए । बड़े तालाब के बीच में ऐसा भवन बनाया जाए । बाहर सुन्दर घास का मैदान हो या एक तालाब की व्यवस्था की जाए, जिसमें कमल खिले हों । घर के द्वार आमने-सामने हों, जिससे वायु का अबाध प्रवेश हो । ऐसे भवन में ठंड से बचने के लिए अग्नि की भी व्यवस्था हो ।

आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणीः ।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ।
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ।। अथर्व० ६.१०६.१ से ३

यजुर्वेद (१७.५ और १७.७) में भी इसी प्रकार के वातानुकूलित भवन और उसमें तालाब (Tank) बनाने का उल्लेख है । ऋग्वेद में भी इसी प्रकार सुन्दर भवन में बड़े जलाशय और सुन्दर दूब वाले मैदान के होने का उल्लेख है । साथ ही समुद्र के किनारे भवन बनाने का भी वर्णन है ।

आयने ते परायणे, दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि, समुद्रस्य गृहा इमे ।। ऋग्० १०.१४२.८

शालानिर्माण : अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त गृह-निर्माण विषय पर है । इसमें मकान के बनाने, कमरों की व्यवस्था, आँगन आदि का उल्लेख है । दो कमरे से लेकर दस कमरे वाले भवन के निर्माण का उल्लेख है । किस-किस कार्य के लिए कौन से कमरे हों, इसका भी संकेत है । द्वार, खिड़कियाँ, छत आदि कैसी हों, इसका भी वर्णन है ।

अथर्ववद ने इस बात पर बल दिया है कि मकान नक्शे के अनुसार बनाया जाय। विशेषज्ञों के द्वारा नक्शा बनवाया जाय और नक्शे में निर्दिष्ट लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई आदि का पूरा ध्यान रखा जाय। अथर्ववेद का कथन है कि भवन उपमित (नक्शे के अनुसार) हो। यह प्रतिमित हो अर्थात् इसका नापतोल सर्वथा ठीक हो। यह परिमित हो अर्थात् इसके खंभे, द्वार, खिड़कियाँ आदि यथास्थान लगाये गए हों। इसके जोड़ सुदृढ़ हों। यह विश्ववार हो अर्थात् सर्वसुविधायुक्त हो।

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामस्ति ।। अ० ९.३.१

एक मंत्र में संकेत है कि भवन का नक्शा किसी ब्रह्मा (विद्वान् या इंजोनियर) से बनवाया जाय और कुशल कारीगर के द्वारा ठीक नाप से भवन का निर्माण कराया जाय। मंत्र में मित और निर्मित शब्द ठीक नाप से भवन-निर्माण के द्योतक हैं।

ब्रह्मणा शालां निर्मितां कविभिर्निर्मितां मिताम् । अ० ९.३.१९

मकान में कितने कमरे हों ? इस विषय में उल्लेख है कि आवश्यकतानुसार २ कमरे से लेकर १० कमरे वाला मकान बनवाया जाय।

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा ....।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीम्०। अ० ९.३.२१

घर में दो, चार, छह, आठ या दस कमरे हों। मंत्र में मानपति शब्द नक्शा बनाने वाले इंजीनियर के लिए है। इंजीनियर को 'सूत्रधार' भी कहते हैं, क्योंकि वह सूत्र (धागा या फीता) के द्वारा सब नाप करता है। मानपति द्वारा बनाई होने के कारण शाला को 'मानपत्नी' कहा गया है।

मकान की ऊँचाई के संबन्ध में मंत्र में कहा गया है कि वह ऊँचाई पर हो और ऊँचा हो। मकान के खंभों की आधारशिला (Plinth) ऊँची होनी चाहिए, जिससे बाहर का जल आदि अन्दर न जावे। इसी प्रकार छत, दरवाजे आदि ऊँचें होने चाहिएँ। जिससे शुद्ध वायु का अबाध प्रवेश हो सके। मंत्र का कथन है कि ऊँचाई वाला मकान शरीर और स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।

शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव । अ० ९.३.६

उद्धिता शब्द ऊँचाई के लिए है और ऐसे मकान को शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए शिव अर्थात् शुभ एवं हितकर बताया गया है।

एक मंत्र में दरवाजे और खिड़कियों के लिए कहा गया है कि वे बड़े और अनेक हों। इनका लिंटर (Slab) समान रेखा पर हो। साथ ही मकान को बाहर से सजाया गया हो।

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति । अथर्व० ९.३.८

ओपश शब्द सजावट और शृंगार के लिए है। विषूवत् शब्द समरेखा के लिए है।

कमरों के विषय में कहा गया है कि मकान में एक कमरा राशन का सामान रखने के लिए चाहिए (हविर्धान)। एक कमरा रसोई के लिए और एक यज्ञशाला के लिए हो। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के लिए अलग-अलग कमरे होने चाहिएँ। एक बैठक या ड्राइंग रूम (Drawing Room) चाहिए तथा एक अतिथि कक्ष (Guest Room) भी होना चाहिए।

हविर्धानम् अग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले । अथर्व० ९.३.७

हविर्धान (राशन का कमरा), अग्निशाला (यज्ञशाला और रसोई), पत्नी-सदन (पत्नीकक्ष), सदस् (ड्राइंग रूम), देवसदन (अतिथि कक्ष)।

एक मंत्र में कहा गया है कि घर के बाहर खुला मैदान (Lawn) होना चाहिए, जिसमें धूप आती हो। इसी मंत्र में यह भी कहा गया है कि मकान में एक सुदृढ़ कोषगृह भी हो, जहाँ आभूषण आदि सुरक्षित रखे जा सकें।

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचः ...... ।
तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः । अथर्व० ९.३.१५

कई मंजिले मकान का भी उल्लेख किया गया है और इनके खंभों के लिए कहा गया है कि वे हथिनी के पैर की तरह मजबूत हों, जिससे ऊपर की मंजिल का पूरा भार संभाल सकें।

कुलायेऽधि कुलायं, कोशे कोशः समुब्जितः । अथर्व० ९.३.२०

मकान में अग्नि और जल की सुन्दर व्यवस्था होनी चाहिए, क्योंकि इन पर ही घर की व्यवस्था निर्भर है, (अथर्व० ९.३.२२)। साथ ही यह भी कहा गया है कि जल शुद्ध होना चाहिए, रोगाणुओं से मुक्त हो। अन्यथा दूषित जल से अनेक रोग उत्पन्न होंगे, (मंत्र २३)। गोशाला की भी व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें पशु सुरक्षित रहें (मंत्र १३)।

अथर्ववेद के एक मंत्र में यह भी संकेत है कि कुछ मकान छोटे हल्के होने चाहिएँ, जिनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाया जा सके। इस मंत्र में मकानों के स्थानान्तरण का संकेत है। ये छोटे मकान टेंट-टाइप या शेड-टाइप के हों, जिन्हें आवश्यकतानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सके। मंत्र का कथन है कि हम भवन के बन्धनों को न तोड़ें। उसका भार हलका हो जाय और वधू के तुल्य उसे इच्छानुसार दूसरे स्थान पर ले जा सकें।

मा नः पाशं प्रति मुचो, गुरुर्भारसे लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले, यत्रकामं भरामसि ।। अ० ९.३.२४

कभी न छूटने वाला प्लास्टर (Plaster) : वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में वज्रलेप (प्लास्टर) बनाने की चार विधियाँ दी हैं और कहा है कि यह प्लास्टर एक करोड़ वर्ष तक भी नहीं छूटता है । एक धातु-निर्मित प्लास्टर है और तीन विभिन्न द्रव्यों से बने प्लास्टर हैं । इनकी विधि निम्न है :

(१) वज्रलेप (क) : धातुनिर्मित प्लास्टर में आठ भाग सीसा, दो भाग काँसा, एक भाग पीतल, इन सबको एक जगह गलावे । इस प्रकार यह वज्र या वज्रसंघात नामक लेप तैयार हो जाता है ।

अष्टौ सीसकभागाः कांसस्य द्वौ तु रीतिकाभागः ।
मयकथितो योगोऽयं विज्ञेयो वज्रसंघातः ।। बृहत्संहिता, वज्रलेप श्लोक ८

(२) वज्रलेप (ख) : तेन्दु के कच्चे फल, कैथ के कच्चे फल, सेमर के फूल, शल्लकी (सालई) वृक्ष के बीज, धन्वन वृक्ष की छाल, वच, इन सबसे एक द्रोण (१० सेर) जल में डालकर काढ़ा बनावें । जब यह अष्टमांश रह जाय तब उसको उतार लें । बाद में उसमें श्रीवासक (सरल, चीड़) वृक्ष का गोंद, गूगल, भिलावा, कुन्दुरू (देवदार वृक्ष का गोंद), सर्ज (संखुआ) का गोंद, अलसी, बेल की गिरी, इन सबको पीसकर डालें । इस प्रकार यह वज्रलेप नामक काढ़ा बन जायगा ।

गर्म किए हुए वज्रलेप को प्रासाद, देवमन्दिर, दीवार और कूप आदि में लगावें तो यह एक करोड़ वर्ष तक भी नहीं छूटता है ।

आमं तिन्दुकमामं कपित्थं पुष्पमपि शाल्मल्याः ।
अतसी बिल्वैश्च युतः कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः ।।
प्रासाद-हर्म्यवलभी- लिंगप्रतिमासु कुड्यकूपेषु ।
संतप्तो दातव्यो वर्षसहस्रायुतस्थायी ।।

बृहत्संहिता, वज्रलेप, श्लोक १ से ४

(३) वज्रलेप का दूसरा प्रकार : पहले बनाए हुए वज्रलेप में इन वस्तुओं को और डालने से दूसरे प्रकार का वज्रलेप तैयार हो जाएगा - लाख, कुन्दुरू (देवदार वृक्ष का गोंद), गूगल, घर के धुएँ का जाला, कैथ का फल, बेल की गिरी, नागबला का फल, महुए का फल, मँजीठ, राल, बोल, आँवला, इन सबको पीसकर डालें ।

लाक्षा-कुन्दुरुगुग्गुलु - गृहधूम कपित्थबिल्वमध्यानि । ....
वज्राख्यः प्रथमगुणैरयमपि तेष्वेव कार्येषु ।।

बृहत्संहिता, वज्रलेप, श्लोक ५-६

(४) वज्रलेप का तीसरा प्रकार : पहले बनाए हुए वज्रलेप में इन वस्तुओं को और डालने से तीसरे प्रकार का वज्रतल नामक लेप तैयार हो जाएगा : - गाय भैंस और बकरे के सींग, गदहे के बाल, भैंस का चमड़ा, गोबर, नीम का फल, कैथ का फल, बोल, इन सबको पीसकर मिलावें ।

गोमहिषाजविषाणैः खररोम्णा महिषचर्मगव्यैश्च ।
निम्बकपित्थरसैः सह वज्रतलो नाम कल्कोऽन्यः ।।

बृहत्संहिता, वज्रलेप, श्लोक ७

वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ[१]**:** वास्तुशास्त्र या स्थापत्यकला पर विशाल साहित्य उपलब्ध है । इसका संक्षिप्त परिचय निम्न है :-

(क) पुराण : इन पुराणों में वास्तुशास्त्र का पारिभाषिक और वैज्ञानिक विवेचन हुआ है । अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, भविष्यपुराण, स्कन्दपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, ब्रह्मांडपुराण, लिंगपुराण और वायुपुराण ।

(ख) ज्योतिष एवं नीतिग्रन्थ : वराहमिहिर की बृहत्संहिता, कौटिल्य का अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीतिसार ।

(ग) वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ : वास्तुशास्त्र पर उपलब्ध २४ ग्रन्थ हैं । इनमें भी प्रमुख ग्रन्थ ये हैं :-

१. राजा भोजदेव-कृत समरांगणसूत्रधार, २. मानसार, ३. मयमत, ४. बृहत् शिल्पशास्त्र, ५. वास्तुशास्त्र (विश्वकर्मा) । [१]

विविध

समरांगण-सूत्रधार, बृहत्संहिता और मानसार आदि में वास्तुशास्त्र से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य दिए गए हैं । उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :-

१. प्रासाद : प्रासाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग शांखायन श्रौतसूत्र में उच्च स्थान या चबूतरा के लिए हुआ है । यही कालान्तर में भवन और महल के लिए प्रयुक्त हुआ ।

संस्थिते मध्यमेऽहनि आहवनीयमभितो दिक्षु प्रासादान् वितन्वन्ति ।

शांखा० श्रौत० १६.१८,१३

२. प्रासाद और विमान : भारतीय स्थापत्य की दो प्रमुख शैलियाँ हैं - नागर और द्राविड या उत्तर भारत की परंपरा और दक्षिण भारत की परंपरा । उत्तर भारत के मन्दिरों की संज्ञा प्रासाद है और दक्षिण भारत के मन्दिरों की संज्ञा विमान ।

---

१. विस्तृत विवरण के लिए देखें - डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल-कृत भारतीय-स्थापत्य (हिन्दी समिति उ०प्र० लखनऊ) पृष्ठ ६३५-६३९

प्रासाद शब्द का प्रयोग देवमन्दिर के अतिरिक्त राजभवन, विशाल भवन आदि के लिए हुआ है। समरांगण-सूत्रधार (अध्याय ४९) में प्रासादों की उत्पत्ति आदि का विस्तृत वर्णन है। सर्वप्रथम ब्रह्मा ने ५ गगनचुंबी प्रासाद (विमान) बनाये थे। ये सोने के बने थे और मणियों से जड़ित थे।

३. १२ मंजिले भवन : मानसार ने (अध्याय १८ से ३०) १३ अध्यायों में एक से लेकर बारह भूमिका (मंजिले, स्टोरीज़) वाले भवनों का विस्तृत विवरण दिया है। इसमें भवनों के आकार-प्रकार आदि में भेद के कारण प्रत्येक मंजिल वाले भवनों की अनेक विधाएँ दी हैं। अत्रिसंहिता ने भी ५० से अधिक प्रकार के भवनों की रचना का वर्णन किया है।

४. ४१ प्रकार के भवन : समरांगण-सूत्रधार वास्तुशास्त्र का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसमें पेशे के हिसाब से ४१ प्रकार (डिज़ाइन) के भवनों के निर्माण की विधि दी गई है। राजा, सेनापति, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सुनार, नाई, दर्जी, माली आदि के विभिन्न डिज़ाइन के भवनों का वर्णन है।

इसमें विधान है कि शूद्र ३ मंजिल, वैश्य ५ मंजिल, क्षत्रिय ६ मंजिल, ब्राह्मण ७ मंजिल और राजा ८ मंजिल से अधिक ऊँचा भवन न बनावें।

समरांगण-सूत्रधार ने राजभवन में विविध कार्यों हेतु ८१ कमरों (कक्षों) की व्यवस्था का उल्लेख किया है।

५. नगर-निवेश (Town-planning) : प्रो० हाप्किंस ने लिखा है कि महाभारत और रामायण में वर्णित नगर-निवेश के परिशीलन से स्पष्ट है कि वहाँ राजा, राजकुमारों, प्रधान अमात्यों, पुरोहितों और सेनानायकों के महल तो निर्मित होते ही थे, साथ ही साथ मध्यमवर्गीय नागरिकों के लिए साधारण आवास भवन थे। इन विशाल प्रासादों के अतिरिक्त विभिन्न सभागृह, स्थानक-मण्डप तथा व्यवसाय-वीथियाँ (स्वर्णकार आदि की कार्यशालाएँ) भी विद्यमान थीं। (देखो जे०ए०ओ०एस० १३ 'नगर')

६. मार्ग-विनिवेश (सड़कें) : राजमार्ग (या केन्द्रमार्ग) पक्का होना चाहिए। राजमार्ग की चौड़ाई नगर के अनुसार २४,२० या १६ हस्त (अर्थात् ३६,३० या २४ फीट) होनी चाहिए। समरांगण० के अनुसार आदर्श नगर में कम से कम २ महारथ्याएँ (बड़ी सड़कें) भी अवश्य होनी चाहिएँ। इनकी चौड़ाई नगर के अनुसार १८, १५ या १२ फीट होनी चाहिए। देवीपुराण में राजमार्ग की चौड़ाई दस धनुष (६० फीट) बताई गई है। देवीपुराण के अनुसार नगर के चौराहे (दिशामार्ग) १३५ फीट चौड़े होने चाहिएँ। समरांगण० ने निर्देश दिया है कि प्रत्येक यानमार्ग के दोनों ओर जंघापथ (फुटपाथ) अवश्य होने चाहिएँ। इनकी चौड़ाई ५ फीट हो।

समरांगण० (अध्याय १०.५२) ने स्पष्ट लिखा है कि जल-निकासी के लिए नगर में नालियों की व्यवस्था होनी चाहिए। ये नालियाँ ३ फीट या डेढ़ फुट चौड़ी हों। इनको सदा ढककर रखा जाए। प्रो० अय्यर ने लिखा है कि मार्गों पर कूड़ाघरों का भी प्रबन्ध रहता था। (टाउन प्लानिंग इन एंसेंट डेकन, पृष्ठ ६१-६२)।

७. भवन और देवमन्दिर : वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में 'वास्तुविद्याध्याय' (१२५ श्लोक) में राजा, मंत्री, सेनापति, ज्योतिषी, वैद्य, पुरोहित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि के मकानों का विवरण दिया है। इसमें प्रत्येक भवन की लंबाई-चौड़ाई का नाप भी दिया है। राजा के भवन की लम्बाई २२४ फीट और चौड़ाई १६२ फीट दी है। मंत्री आदि के भवनों की नाप कम होती गई हैं, (श्लोक ४ से ९)। इसी प्रकार ब्राह्मण के भवन की लंबाई ५४ फीट तथा चौड़ाई ४८ फीट दी है। क्षत्रिय आदि के भवन की नाप कम होती गई है। शूद्र के भवन की लम्बाई ३८ फीट और चौड़ाई ३० फीट दी है।

भवन की ऊँचाई के विषय में उल्लेख है कि चार मंजिले मकान तक की ऊँचाई १५० फीट से अधिक नहीं होनी चाहिए, (श्लोक १६)। भवन में पशुशाला, क्रीडागृह, रसोई, राशन का कमरा, स्टोर रूम (धान्य गृह) और आयुधगृह भी होने चाहिएँ। (श्लोक १६)

कौन सा कमरा किस दिशा में रखा जाय, इसका भी निर्देश है। ईशान कोण (पूर्व और उत्तर के मध्य का कोण) में पूजागृह, आग्नेय कोण (पूर्व और दक्षिण के मध्य का कोण) में रसोई, नैर्ऋत्य कोण (दक्षिण और पश्चिम के मध्य का कोण) में राशन सामग्री आदि, वायव्य कोण (उत्तर और पश्चिम के मध्य का कोण) में अन्न का स्टोर, (श्लोक ११८)

बृहत्संहिता के प्रासाद-लक्षणाध्याय (श्लोक ३१) में २० प्रकार के प्रासादों (देवमन्दिरों) के निर्माण की विधि दी है। इन सबके डिज़ाइन पृथक् - पृथक् हैं।

(ग) वेदों में विमान और अन्तरिक्षयात्रा

वेदों में विमान शब्द : वेदों में विमान शब्द अनेक बार आया है, परन्तु वहाँ इसका अर्थ विमान या वायुयान नहीं है। यह अधिष्ठाता, व्यवस्थापक, नापने वाला या पार जाने वाला अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। 'रजसो विमानः' (ऋग्० ३.२६.७) लोकों का अधिष्ठाता या नापने वाला अर्थ है। 'रजसो विमानं रथम्' (ऋग्० २.४०.३) का अर्थ है - लोकों के पार जाने वाला रथ। वायुयान के अर्थ में विमान शब्द का प्रयोग नहीं है।

अन्तरिक्ष-यात्रा : वेदों के अनेक मंत्रों में अन्तरिक्ष-यात्रा का उल्लेख है । विमान के लिए दिव्य रथ या आकाशीय नौका (Air-ship) आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । एक मंत्र मे आकाश में विचरण करने वाली आकाशीय नौका का उल्लेख है । इसमें 'अपोदकाभिः' शब्द से संकेत किया गया है कि इस पर जल का प्रभाव नहीं होता । ऐसी आकाशचारी नौकाओं को 'अन्तरिक्षप्रुत्' कहते थे । तैत्तिरीय आरण्यक (१.१०.२) में इन्हें 'अन्तरिक्षप्रुट्' कहा गया है ।

नौभिः - अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः । ऋग्० १.११६.३

ऋग्वेद में वर्णन है कि राजा सोम अपनी बुद्धि के बल से अन्तरिक्ष-यात्रा की व्यवस्था करता है ।

राजा मेधाभिरीयते, अन्तरिक्षेण यातवे । ऋग्० ९.६५.१६

इसी प्रकार एक अन्य मंत्र में (ऋग्० ९.६३.८) में भी अन्तरिक्ष-यात्रा का उल्लेख है ।

अथर्ववेद में अन्तरिक्ष-मार्ग के लिए देवयान शब्द का प्रयोग है और कहा गया है कि द्यावापृथिवी के बीच में बहुत से देवयान मार्ग हैं । इनसे व्यापारिक यात्रा करके धन-लाभ करें ।

ये पन्थानो बहवो देवयाना
अन्तरा द्यापृथिवी संचरन्ति । अथर्व० ३.१५.२

विमान की रचना : ऋग्वेद में विमान की रचना से संबद्ध कुछ स्पष्ट संकेत मिलते हैं, जिनसे उसके आकार-प्रकार और यन्त्रों आदि का ज्ञान होता है । ऋग्वेद में विमान के लिए रथ या दिव्य रथ शब्द का प्रयोग हुआ है । एक मंत्र में संकेत है कि विमान में तीन सीट होती थीं । यह त्रिकोण आकार का होता था और इसमें तीन पहिए होते थे ।

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन,
त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।। ऋग्० १.११८.२

त्रिबन्धुरेण - तीन सीट वाले, त्रिवृता - त्रिकोण, त्रिचक्रेण - तीन पहिए वाले दिव्य रथ से अश्विनी देव यहाँ आवें ।

एक अन्य मंत्र में सब लोकों में जाने वाले, सात पहिए वाले, बहुत विशाल, चारों ओर मुड़ सकने वाले, संकेत से चलने वाले तथा पाँच इंजन (रश्मि) वाले दिव्य रथ (Air-ship) का उल्लेख है ।

सोमापूषणा रजसो विमानं, सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं ... पंचरश्मिम् ।। ऋग्० २.४०.३

एक अन्य मंत्र में ऋभु देवों के दिव्य रथ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसमें घोड़े नहीं हैं, कोई लगाम नहीं है, इसमें तीन पहिए हैं और यह अन्तरिक्ष में सर्वत्र घूमता है ।

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो
रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।। ऋग्० ४.३६.१

एक मंत्र में संकेत प्राप्त होता है कि दिव्य रथ (विमान) में प्रकाश की व्यवस्था होती थी, (ज्योतिष्मान्) । अपनी पहचान के लिए इस पर अपना झंडा होता था, (केतुमान्) । इसकी सीटें अच्छी और सुखद होती थीं, (सुखम्, सुषदम्) और अपनी सुविधाओं के कारण यह लोकप्रिय था, (भूरिवारम्) । इसमें तीन पहिए थे ।

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं
सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् । ऋग्० ८.५८.३

एक अन्य मंत्र में अश्विनी देवों के दिव्य रथ (विमान) को 'विश्वसौभगः' अर्थात् सारी सुविधाओं से युक्त कहा गया है । इसमें तीन सीट और तीन पहिए थे । 'मधुवाहनः ' शब्द से संकेत है कि इसमें झटका नहीं लगता था ।

त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो .....
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः ।। ऋग्० १.१५७.३

दिव्य रथ (विमान) की रचना में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि इसमें कोई त्रुटि न रहने पावे (अविह्वरन्तम्), यह आसानी से चारों ओर मुड़ सके (सुवृतम्) और यात्री सुविधानुसार बैठ सकें (नरेष्ठाम्) । ये रथ अनेक रंग के होते थे (विश्वरूपाम्) ।

रथं ये चक्रुः सुवृतं .. अविह्वरन्तम् । ऋग्० ४.३६.२
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां .. विश्वरूपाम् । ऋग्० ४.३३.८

एक मंत्र में उल्लेख है कि अश्विनी देवों के रथ में आकर्षण-शक्ति वाला यंत्र भी होता था ।

युवोर्हि यन्त्रं ... अभ्यायंसेन्या० । ऋग्० १.३४.१

आकर्षणशक्ति वाले यंत्र के लिए 'अभ्यायंसेन्या' शब्द है ।

स्वचालित यान (विमान) : ऋग्वेद में मरुत् देवों के एक स्वचालित अन्तरिक्षगामी यान (Automatic Air-bus) का उल्लेख है । इसमें कोई घोड़ा नहीं होता था (अनश्वः), इसमें कोई चालक भी नहीं होता था (अरथी), यह बिना रुके (Non-stop) चलता था (अनवस्), इसमें कोई लगाम भी नहीं होती थी (अनभीशु), यह आकाश में उड़ता था (रजस्तूः) । यह द्यावापृथिवी के मध्य में विचरण करता था ।

अनेनो वो मरुतो यामो अस्तु,
अनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूः
वि रोदसी पथ्या याति साधन् ।। ऋग्० ६.६६.७

अन्तरिक्ष और समुद्र में चलने वाला यान : ऋग्वेद में वर्णन है कि अश्विनी देवों के पास ऐसा यान (नौका) था, जो अन्तरिक्ष और समुद्र दोनों में चल सकता था । इसमें कोई यन्त्र लगा होता था, जिससे यह सचेतन के तुल्य चलता था । इस पर पानी का कोई असर नहीं होता था । ऐसे यान से अश्विनीकुमारों ने समुद्र में डूबते हुए एक व्यापारी का उद्धार किया था ।

तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिः ,
अन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः । ऋग्० १.११६.३

इसमें आत्मन्वती शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है । यह यान सजीव की तरह चलता था । इससे ज्ञात होता है कि इसमें कोई मशीन लगी होती थी , जिससे यह सजीव की तरह चलता था । यही भाव ऋग्वेद (१.१८२.५) में भी दिया गया है ।

पृथिवी और आकाश में चलने वाला यान : अश्विनीकुमारों के रथ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनका रथ द्युलोक और पृथिवी दोनों जगह चारों ओर भ्रमण करता था ।

रथो ह वाम् ... परि द्यावापृथिवी याति सद्यः । ऋग्० ३.५८.८

विमान में सुरक्षा के साधन : अश्विनी देवों के रथ (विमान) के विषय में उल्लेख है कि इसमें सुरक्षा की सैकड़ों व्यवस्था की गई थी । यह मन के तुल्य वेग वाला था और अन्तरिक्ष में इधर से उधर विचरण करता था ।

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति
तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः । ऋग्० ७.६८.३

मंत्र में शतोति शब्द सौ रक्षा-साधनों के लिए है ।

मधुवाहन रथ : ऋग्वेद में मधुवाहन रथ संभवतः विशेष सुविधा- संपन्न विमान (De-luxe Air-bus) के लिए है । अश्विनीकुमारों के इस विमान में तीन वज्रतुल्य ठोस इंजन (पवि) थे । इन विमान से वे तीन दिन, तीन रात लगातार यात्रा कर सकते थे ।

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे ।
त्रिर्नक्तं याथः त्रिर्वश्विना दिवा ।। ऋग्० १.३४.२

पक्षिवत् उड़ने वाला यान : अश्विनीकुमारों का रथ (विमान) आकाश में पक्षी के तुल्य उड़ता था ।

अधि विष्टपि, यद् वां रथो विभिष्पतात् । ऋग्० १.४६.३

मनोवेग यान (विमान) : ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में मन के तुल्य तीव्र गति वाले अश्विनीकुमारों के रथ का वर्णन है। इनमें 'मनसो जवीयान्' के द्वारा मन से भी तीव्र गति वाले यानों का वर्णन है। इनको 'श्येनपत्वा' अर्थात् गरुड़ की तरह उड़ने वाला भी कहा गया है। (ऋग्० १.१८१.३ ; ६.६३.७ ; १०.११२.२)।

यो वां रथो अश्विना श्येनपत्वा, ...
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् । ऋग्० १.११८.१

अनेक मंत्रों में यह भाव दिया गया है कि अश्विनीकुमारों का रथ (विमान) आकाश में सर्वत्र विचरण करता था।

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी । ऋग्० ८.७३.१३

तीन अंग वाला विमान : ऋग्वेद में 'त्रिधातु' शब्द से तीन हिस्से (ढ़ै) वाले विमान का उल्लेख है। अश्विनीकुमारों का यह तीन पहियों वाला रथ (विमान) आकाश में पक्षी की तरह उड़ता था। मंत्र में त्रिधातु शब्द त्रिपुर विमान के तुल्य तीन हिस्सों में बँटे विमान का सूचक है। यह विमान मन के तुल्य तीव्र गति से चलता था।

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् ....
त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः । ऋग्० १.१८३.१

अश्विनीकुमारों के ऐसे ही विमान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसमें घोड़े नहीं जुतते थे, अर्थात् यह इंजन से चलता था।

अश्विनोरसनं रथम् अनश्वम्० । ऋग्० १.१२०.१०

विमान-निर्माता ऋभु देव : ऋग्वेद में वर्णन है कि ऐसे रथ (विमान) ऋभु नामक शिल्पी बनाते थे। इनके इन गुणों के कारण ऋभुओं को देवता की उपाधि दी गई।

तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस : ... ऋभवः । ऋग्० १.१११.१
तेन देवत्वमृभवः समानश । ऋग्० ३.६०.२

इस मंत्र में 'विद्मनापस्' शब्द विज्ञानवेत्ता कुशल कारीगर के लिए है। इनकी योग्यता का संमान करते हुए इन्हें देवत्व की उपाधि से विभूषित किया गया था।

आकाश और समुद्र में चलने वाला रथ (विमान) : ऋग्वेद में वर्णन है कि अश्विनी देवों का रथ द्युलोक और समुद्र में सर्वत्र भ्रमण करता है।

उरु वां रथः परि नक्षति द्याम्
आ यत् समुद्रादभि वर्तते वाम् । ऋग्० ४.४३.५

एक अन्य मंत्र में भी उल्लेख है कि अश्विनी देवों का रथ समुद्र में भी चलता था। मंत्र में रथ का विशेषण 'अमर्त्यः' दिया है, जिसका अभिप्राय है कि यह किसी प्रकार टूटने वाला नहीं था।

रथो दस्त्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते । ऋग्० १.३०.१८

इसी प्रसंग में वर्णन किया गय है कि अश्विनी कुमारों का यह रथ द्युलोक में भ्रमण करता था और पर्वत की चोटियों पर भी उतर सकता था ।

न्यघ्न्यस्य मूर्धनि ... परि द्यामन्यदीयते । ऋग्० १.३०.१९

अन्य मंत्र में भी पर्वतों के पार जानेवाले अश्विनीकुमारों के रथ का उल्लेख है ।

नासत्या रथेन वि पर्वतान् ... अयातम् । ऋग्० १.११६.२०

यही भाव एक अन्य मंत्र में भी दिया गया है कि अश्विनीकुमारों का रथ समुद्र और पर्वत सभी जगह यात्रा कर सकता था । (ऋग्० २.१६.३)

विमान में इंजन और तेल : ऋग्वेद के एक मंत्र में संकेत है कि अश्विनीकुमारों का रथ (विमान) द्यावापृथिवी में सर्वत्र जा सकता था । इसमें पवि (इंजन) और तेल (पारा या पैट्रोल जैसी चीज) की व्यवस्था थी । पवि के द्वारा वज्रवत् सुदृढ़ इंजन का संकेत है और 'घृतवर्तनि' शब्द द्वारा घी के तुल्य चिकने किसी पदार्थ का संकेत है ।

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो ....
घृतवर्तनिः पविभी रुचान : । ऋग्० ७.६९.१

एक अन्य मंत्र (ऋग्० ५.७७.३) में घृतवर्तनि के स्थान पर 'घृतस्नु' शब्द का प्रयोग है । यह भी यही संकेत करता है कि विमान-चालन के लिए घृत जैसी किसी चिकनी चीज का उपयोग किया जाता था ।

विमान से रक्षाकार्य : ऋग्वेद के कई मंत्रों में वर्णन है कि एक व्यापारी का बेड़ा बहुत गहरे समुद्र में टूट गया और वह असहाय हो गया । उस स्थिति में उसने अश्विनीदेवों से प्रार्थना की । अश्विनीकुमारों ने विशाल विमानों से उस व्यापारी की रक्षा की । विमानों का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा गया है कि इनमें ६ अश्वशक्ति वाले यंत्र (इंजन) लगे हुए थे । ये पक्षी की तरह उड़ सकते थे । इन आकाशगामी विमानों पर पानी का कोई असर नहीं होता था । ये विमान तीव्र गति से उड़ने वाले थे । ये सजीव के तुल्य थे (आत्मन्वत्) । लगातार तीन दिन तीन रात यात्रा करने पर वे समुद्र के इस पार पहुँचे । इन मंत्रों में कुछ विशेष उल्लेखनीय शब्द ये हैं :

१. वीडुपत्मभिः - आकाश में वेग से उड़ने वाले । **२. आशुहेमभिः** - शीघ्र गति वाले । **३. अन्तरिक्षप्रुद्भिः** - अन्तरिक्ष में उड़ने वाले । **४. आत्मन्वतीभिः** - सजीवतुल्य या चालकयंत्र से युक्त । **५. अपोदकाभिः** - जिन पर पानी का असर नहीं होता । **६. शतपद्भिः** - सौ पहिए वाले । **७. षडश्वैः** - ६ अश्वशक्ति

वाले यंत्रों (इंजन) से युक्त । **८. पतंगैः** - पक्षिवत् उड़ने वाले । (ऋग्० १.११६.२-५ ; १.११७.१४ ; ७.६९.७)

तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिः, अन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ।
नासत्या भुज्युमूहथुः पतंगैः । त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः ।।
ऋग्० १.११६.३ और ४

एक मंत्र में उल्लेख है कि अश्विनी के रथ में 'वाणीची' नामक ध्वनि-विस्तारक यंत्र भी था ।

रथे वाणीची-आहिता । ऋग्० ५.७५.५

विशाल समुद्री जहाज : ऋग्वेद में उल्लेख है कि राजा वरुण समुद्र में चलने वाली नौकाओं या पोतों को जानता है ।

वेद नावः समुद्रियः । ऋग्० १.२५.७

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है कि विशाल समुद्री जहाज होते थे और उनमें सौ या उससे अधिक पतवार (अरित्र) लगी होती थीं ।

शतारित्रां नावम् आतस्थिवांसम् । ऋग्० १.११६.५
सुनावम् आरुहेयम् .. शतारित्रां स्वस्तये । यजु० २१.७
सूर्य नावम् आरुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अथर्व० १७.१.२६

समुद्र के अन्दर चलने वाला जहाज : ऋग्वेद में समुद्र के अन्दर चलने वाली नौका (Submarine) का भी उल्लेख है । पूषा देव की सुनहरी नौकाएँ समुद्र के अन्दर और बाहर अन्तरिक्ष में भी चलती थीं ।

यास्ते पूषन् नावो अन्तः समुद्रे
हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति । ऋग्० ६.५८.३

जहाज के लिए नौका शब्द का प्रयोग है ।

विमानशास्त्र की संक्षिप्त रूपरेखा

विमानों की रचना आदि के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है । महाराज भोज (११वीं शताब्दी ई०) की रचना 'समरांगणसूत्रधार' है । इसके ३१वें अध्याय में विमान-यन्त्र का वर्णन है । इसमें विशालकाय विमान के वर्णन में कहा गया है कि यह हलकी कठोर लकड़ी का बना होता था, इसके दो बड़े पंख होते थे । इसके उदर भाग में रसयन्त्र (पारा, Mercury) से भरे चार बड़े दृढ घड़े रखे जाते थे । उसके नीचे अग्निपूर्ण कुम्भ (भट्टी) रखा जाता था । आग के द्वारा पारा तपता था और उसकी शक्ति से विमान चलता था ।

लघु दारुमयं महाविहंगं, दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य ।
उदरे रसयन्त्रमादधीत, ज्वलनाधारमधोऽस्य चाग्निपूर्णम् ।।
सुप्तस्यान्तः पारदस्यास्य शक्त्या, चित्रं कुर्वन् अम्बरे याति दूरम् ।
आदधीत विधिना चतुरोऽन्तस्तस्य पारदभृतान् दृढकुम्भान् ।।
अयःकपालाहितमन्दवह्नि-प्रतप्ततत्कुम्भभुवो गुणेन ।
व्योम्नो झगित्याभरणत्वमेति संतप्तगर्जद्रसराजशक्त्या ।।

(समरांगण० अध्याय ३१)

श्लोकों में पारे के लिए रसयन्त्र, रसराज और पारद शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

समरांगण० ने कहा है कि यन्त्रों का विवरण इसलिए नहीं दिया जा रहा है, क्योंकि यह यन्त्ररचना पारम्पर्यकौशल माना जाता है और गुरु-शिष्य- परम्परा से इसका अभ्यास किया जाता है । यह सबके लिए न बोधगम्य है और न बताने लायक । इसलिए जानते हुए भी यन्त्रघटना का विवरण गुप्त रखा जा रहा है ।

पारम्पर्यं कौशलं ... वेत्ति यन्त्राणि कर्तुम् ।
यन्त्राणां घटना नोक्ता, गुप्त्यर्थं नाज्ञतावशात् ।

इससे ज्ञात होता है कि पारे से उड़ने वाले विमानों की रचना होती थी । युक्तिकल्पतरु ग्रन्थ का भी कथन है कि प्राचीन समय में राजाओं के पास विमान थे ।

व्योमयानं विमानं वा पूर्वमासीद् महीभुजाम् ।

(युक्तिकल्प० यान० ५०)

महर्षि भरद्वाजकृत 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थ के अन्तर्गत 'वैमानिक प्रकरण' नामक एक अंश है । उसकी पांडुलिपि के आधार पर सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, दिल्ली ने 'बृहद् विमानशास्त्र' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है । इसके संपादक और अनुवादक श्री स्वामी ब्रह्ममुनि हैं ।

इस ग्रन्थ का रचनाकाल अज्ञात है । इसमें विमानों की रचना, विमानों के भेद, विमान के रहस्य, विमान के विविध यन्त्र, प्रत्येक के लिए स्थान-निर्देश, विमान-चालन-विधि आदि का बहुत विस्तार से वर्णन है । इसमें वर्णित कुछ यन्त्र आदि अत्यन्त अद्भुत हैं, इनकी तुलना आधुनिक रेडियो, वायरलेस, टेलीविज़न, टेलीपैथी आदि से की जा सकती है । ३४४ पृष्ठ के इस ग्रन्थ में पूर्ववर्ती वैज्ञानिक ग्रन्थों का यथास्थान सन्दर्भ दिया गया है । ऐसे वैज्ञानिक ग्रन्थों की संख्या ९७ है । इसमें वर्णित महत्त्वपूर्ण बातें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं ।

१. विमानशास्त्र विषय पर प्राचीन इन ६ ऋषियों के ये ग्रन्थ हैं : - (क) नारायण की विमानचन्द्रिका, (ख) शौनक का व्योमयानतन्त्र, (ग) गर्ग का यन्त्रकल्प,

(घ) वाचस्पति का यानबिन्दु, (ङ) चाक्रायणि की खेटयानप्रदीपिका, (च) धुण्डिनाथ का व्योमयानप्रकाश ।

२. इस विमान-शास्त्र में जिन प्राचीन वैज्ञानिक ग्रन्थों के सन्दर्भ दिए गए हैं, उनकी संख्या ९७ है । साथ ही ग्रन्थ में निर्देश है कि अमुक ग्रन्थ में निर्दिष्ट विधि के अनुसार यह कार्य किया जाय । इनमें से कुछ विशेष उल्लेखनीय ग्रन्थ ये हैं : (१) भरद्वाजकृत यन्त्रसर्वस्व, (२) लोहतन्त्र, (३) विमानचन्द्रिका, (४) शक्तितन्त्र, (५) यन्त्रप्रकरण, (६) शक्तिसर्वस्व, (७) गतिनिर्णयाध्याय, (८) ईश्वरकृत सौदामिनीकला, (९) खेटयन्त्र, (१०) शक्तिबीज, (११) शक्तिकौस्तुभ, (१२) लल्लकृत यन्त्रकल्पतरु, (१३) लोहरहस्य, (१४) अगस्त्यकृत शक्तिसूत्र, (१५) भरद्वाजकृत आकाशतन्त्र,(१६) नारदकृत धूमप्रकरण, (१७) वाल्मीकिकृत वाल्मीकिगणित, (१८) शाकटायनकृत लोहशास्त्र ।

३. महर्षि भरद्वाज ने स्वीकार किया है कि यह विमानविद्या वेदों से प्राप्त की गई है । यह वेदों का सार है ।

त्रयीहृदयसन्दोह - साररूपं सुखप्रदम् ।
अनायासाद् व्योमयान-स्वरूपज्ञानसाधनम् ।
वैमानिकं प्रकरणं कथ्यतेऽस्मिन् यथाविधि ।। (पृष्ठ १)

भरद्वाज का कथन है कि वेदरूपी समुद्र के मन्थन से जो नवनीत प्राप्त हुआ है, उसके आधार पर ५०० सूत्रों वाला 'वैमानिक प्रकरण' प्रस्तुत किया जा रहा है ।

निर्मथ्य वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः ।
नवनीतं समुद्धृत्य, यन्त्रसर्वस्वरूपकम् ।।
सूत्रैः पंचशतैर्युक्तं व्योमयानप्रधानकम् ।
वैमानिकप्रकरणमुक्तं भगवता स्फुटम् ।। (पृष्ठ २-३)

(४) विमान का अर्थ : नारायण, शंख, विश्वंभर आदि आचार्यों ने विमान की व्याख्या की है कि ये विमान पृथिवी, जल और अन्तरिक्ष तीनों में चल सकते हैं । इनके द्वारा देश-देशान्तर, द्वीप-द्वीपान्तर और विभिन्न लोकों तक यात्रा की जा सकती है ।

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु, खगवद् वेगतः स्वयम् ।
यः समर्थो भवेद् गन्तुं, स विमान इति स्मृतः ।। (पृष्ठ ७)
देशाद् देशान्तरं तद्वद्, द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा ।
लोकात् लोकान्तरं चापि, योऽम्बरे गन्तुमर्हति ।
स विमान इति प्रोक्तः, खेटशास्त्रविशारदैः ।। (पृष्ठ ७)

विमान को व्योमयान और खेट भी कहते हैं। खेट का अर्थ है - खे - आकाश में, अट- चलने वाला अर्थात् विमान।

(५) विमान-चालक : विमानचालक के लिए आवश्यक बताया गया है कि यह विमान के ३२ रहस्यों को जानने वाला हो। इनमें कुछ मुख्य बातें हैं - विमान की रचना, आकाश में चढ़ना, उतरना, रोकना, आकाशीय वायुमंडल का ज्ञान, दिशा का ज्ञान आदि। इसमें कुछ विचित्र रहस्य वाले कार्य भी हैं। जैसे : **सार्पगमनरहस्य** - विमान को साँप की तरह चलाना। **सर्वतोमुखरहस्य :** विमान को जिधर चाहना, उधर मोड़ना। **परशब्दग्राहक रहस्य :** दूसरे विमानस्थ व्यक्तियों की बात सुनना। **रूपाकर्षणरहस्य :** परविमानस्थ वस्तुओं का चित्र लेना। **क्रियाग्रहणरहस्य :** दूरस्थ वस्तुओं की क्रियाओं का चित्र लेना। **दिक्प्रदर्शनरहस्य :** दूसरे विमान के आने की दिशा का ज्ञान करना आदि।

रहस्यज्ञोऽधिकारी। (पृष्ठ ७)

(६) आकाशीय मार्गों का ज्ञान : पाँच आकाशीय मार्ग हैं - रेखापथ, मण्डलपथ, कक्षापथ, शक्तिपथ और केन्द्रपथ, इनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना।

पंचज्ञश्च। (पृष्ठ १८)

(७) आकाशीय आवर्त (भँवर) : दो शक्तियों के संघर्ष से आवर्त उत्पन्न होते हैं, इनसे विमानों के नष्ट होने का भय रहता है। रेखापथ आदि पर क्रमशः ये पाँच आवर्त हैं :- शक्त्यावर्त, वातावर्त, किरणावर्त, शैत्यावर्त और घर्षणावर्त। इनसे विमानों को बचावें। **आवर्ताश्च।** (पृष्ठ २०)

(८) सौर ऊर्जा (Solar Energy) से विमान-चालन : विमान को सूर्य की ऊर्जा से चलाने के लिए विमान के ऊपर शक्त्याकर्षक पंजर लगाया जाता था। यह एक तारों का जालीदार खटोला सा होता था। इसमें सूर्यकान्त मणि आदि अनेक मणियाँ लगी होती थीं, जो सूर्य की ऊष्मा को खींचती थीं। इस सौर ऊर्जा को एकत्र करने के लिए यन्त्र था। इस ऊर्जा के द्वारा विमान का चालन होता था।

विमानस्योपरि सूर्यस्य शक्त्याकर्षणपंजरम्। (पृष्ठ २४)
अंशुमित्रमणिश्चैव तच्छक्तिमपकर्षति। (पृष्ठ ३४१)
अथ यन्त्रमुखाद् विद्युच्छक्तिं सूर्यांशुभिः क्रमात्। (पृष्ठ २४०)
ते समाकृष्य तच्छक्तिं पिबन्त्यतिवेगतः। (पृष्ठ ३४४)

सूर्यकान्तमणि के लिए अंशुमित्रमणि नाम दिया है। सूर्य की किरणें पड़ने पर इस मणि से तीव्र ऊष्मा निकलती है।

(९) शिरःकीलक यंत्र : बिजली गिरने से विमान नष्ट न हो, इसके लिए

शिर:कीलक यंत्र विमान के शिरोभाग पर लगाया जाता था। इससे विमान सुरक्षित रहता था। यंत्र लगाने की विधि विस्तार से दी गई है।

विमानस्योपरि- अशनिपातं मेघवृन्दाद् भवेद् यदा। ...
तस्मात् तत्परिहाराय शिर:कीलकयन्त्रकम्। (पृष्ठ १९३)

(१०) विमानों के भेद : विमानों के तीन भेद किए गए हैं : मान्त्रिक, तान्त्रिक और कृतक। मन्त्रशक्ति से चलने वाले विमानों को मान्त्रिक कहते थे। ये २५ प्रकार से थे। पुष्पक, भीष्म, शंकर आदि। तंत्रशक्ति से चलने वाले विमान ५६ प्रकार के थे : भैरव, नन्दन, व्याघ्रमुख आदि। सामान्य विमानों को कृतक कहा गया है। ये २५ प्रकार के थे। इनमें से कुछ नाम ये हैं - शकुन, सुन्दर, रुक्मक, मण्डल, कुमुद, हंस, पुष्कर, पद्मक।

पंचविंशन्मान्त्रिका: पुष्पकादिभेदेन। (पृष्ठ २३४)
भैरवादिभेदात् तान्त्रिका: षट्पंचाशत्। (पृष्ठ २३७)
शकुनाद्या: पंचविंशत् कृतका:। (पृष्ठ २३९)

(११) राजलोह से विमानरचना : विमानरचना के लिए बताया गया है कि राजलोह सर्वोत्तम है। राजलोह बनाने की विधि का भी वर्णन है।

राजलोहाद् एतेषाम् आकाररचना। (पृष्ठ २४१)

(१२) विमान के २८ अंग : विमान की रचना का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। शकुन विमान में २८ अंग (Parts) होते हैं। इनको कहाँ किस प्रकार लगाया जाय, इसका भी विस्तृत विवरण दिया गया है। कुछ अंग ये हैं :- विमान को गति देने वाले चार औष्म्यक यन्त्र (इंजन), चुल्ली (भट्टी), विद्युद्यन्त्र, विमान को ऊपर उठाने वाला पुच्छभाग, वायु फेंकने वाला वातचोदनायंत्र, वायु को गर्म करने वाला तारों का गुच्छा वातपायन्त्र, दिशादर्शक यंत्र। (पृष्ठ २४० से २५२)

(१३) विमान की १२ गति : विद्युत् शक्ति के द्वारा विमान की १२ प्रकार की गतियाँ नियंत्रित होती हैं। ये हैं - चलना, ऊर्ध्वा, अधरा, तिर्यग् गति आदि। (पृष्ठ ७२ से ७७)

(१४) विमान में ३२ यंत्र : इनमें से कुछ यंत्रों के नाम हैं : विश्वक्रियादर्श यंत्र, शक्त्याकर्षण यन्त्र, विद्युद्यंत्र, शक्त्युद्गमयंत्र, शक्तिपंजरकीलक, सूर्यशक्त्यपकर्षण यंत्र, शब्दाकर्षणयन्त्र, स्तम्भन यन्त्र, दिशांपति यन्त्र आदि। (पृष्ठ ७८ से ८४)

(१५) विमान में पारद का प्रयोग : विश्वक्रियादर्शदर्पण के नीचे केन्द्र में पारद (पारा) रखे।

तन्मूले पारदद्रावं मध्यकेन्द्रसमं यथा।
कीलकात् संन्यसेत् तस्मिन्०। (पृष्ठ ८०)

(१६) शक्त्याकर्षण यन्त्र : सौर ऊर्जा (Solar-energy) के आकर्षण और संग्रह के लिए ६ मणियाँ शक्त्याकर्षण यन्त्र में लगाई जाती थीं। (पृष्ठ ८७)

(१७) विमान में १०३ मणियों का प्रयोग : विमान के शिरोभाग में विविध कार्यों के लिए १०३ मणियाँ लगाई जाती थीं और इनको विद्युद्यंत्रों से जोड़ा जाता था। (पृष्ठ १०७-११०)

व्योमयानोर्ध्वभागस्य शिरःकेन्द्रे यथाविधि ।
स्थापयेदुक्तमणिष्वेकैकं सुदृढं यथा ।। (पृष्ठ १०८)

(१८) भू-जल-अन्तरिक्षगामी विमान : विमानशास्त्र ने पृथिवी, जल और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों पर चलने वाले विमान की रचनाविधि बहुत विस्तार से दी है। इस विमान का नाम 'त्रिपुर विमान' है।

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु , स्वांगभेदात् स्वभावतः ।
यः समर्थो भवेद् गन्तुं , तमाहुस्त्रिपुरं बुधाः ।। (पृष्ठ ३०२)

१९. सौर-ऊर्जा से संचालन : त्रिपुर विमान की रचना के विषय में कहा है कि इसमें तीन आवरण (Apartments) होते हैं। एक-एक भाग को पुर कहा गया है। तीन पुरों से संयुक्त होने के कारण विमान का नाम त्रिपुर पड़ा है। यह विमान सूर्य की किरणों से प्राप्त शक्ति (Solar-energy) से प्रेरित होकर चलता है।

पुरत्रयेण संयुक्तं विमानं त्रिपुरं विदुः ।
भास्करांशुसमुद्भूत - शक्त्या संचोदितं भवेत् ।। (पृष्ठ ३०२)

२०. त्रिपुर विमान की रचना : त्रिपुर विमान के क्रमशः तीन भाग (Apartmentts) होते हैं। इनमें से एक भाग का संचार पृथिवी पर, दूसरे का जल के अन्दर और बाहर तथा तीसरे का आकाश में होता है। त्रिपुर विमान त्रिनेत्र नामक लोहे से ही तैयार किया जाय, अन्यथा निरर्थक होगा। त्रिनेत्र लोहा तैयार करने की पूरी विधि भी दी है। (पृष्ठ ३०३-३०४)

२१. शुद्ध अभ्रक (Mica) का प्रयोग : पूरे विमान के ऊपर शुद्ध अभ्रक का आवरण होना चाहिए, अन्यथा विमान निरर्थक हो जाएगा। शुद्ध अभ्रक (अबरक) तैयार करने की विधि भी दी गई है। (पृष्ठ ३०८ से ३१३)

विमानरचना शुद्धव्योमेनैव प्रकल्पयेत् । (पृष्ठ ३०८)

२२. विविध यन्त्र : इस विमान में ये यंत्र भी होते हैं :- भाषाकर्षणयन्त्र (दूर की बात सुनने वाला यन्त्र), दिक्प्रदर्शक यन्त्र (दिशाबोधक यन्त्र), कालमापक यन्त्र (समयबोधक यन्त्र), शीतोष्णप्रमापकयंत्र (गर्मी और ठंड नापने वाला यन्त्र), त्र्यास्य-वातनिरसन यन्त्र (तीन मुँह वाला वायु निकालने का यन्त्र), सूर्यातपोपसंहारयंत्र

(सूर्य की धूप रोकने वाला यन्त्र), अतिवर्षोपसंहारयन्त्र (अतिवर्षा को रोकने वाला यन्त्र)। त्र्यास्यवातनिरसनयन्त्र सुदृढ़ वारुण लोहे से ही बनाया जाय। इस लोहे को बनाने की विधि भी दी है। (पृष्ठ ३२३-३२५)

सूर्यकिरणों से शक्ति खींचने के लिए बीच के शिखर के ऊपर सूर्यकान्त मणि को लगावें। उसके अगल-बगल अन्य अंशुवाहक मणियों को लगावें। भू, जल, अन्तरिक्ष में जहाँ चलाना होगा, वहाँ वही भाग चालू किया जाएगा, शेष दो भाग निष्क्रिय रहेंगे।

अंशुमित्रमणिश्चैव तच्छक्तिमपकर्षति । (पृष्ठ ३४१)

(घ) विविध शिल्प एवं उद्योग

वेदों में विभिन्न शिल्पों और उद्योगों का विस्तार से वर्णन है। यजुर्वेद के ३०वें अध्याय में शिल्प और शिल्पियों का ही विशेष रूप से उल्लेख है। शिल्पी (Artisan) के लिए वेद में कारु शब्द है।

कारुरहं ततो भिषग्० । ऋग्० ९.११२.३

शिल्प का महत्त्व : यजुर्वेद में शिल्प को वैश्वदेव कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि इसमें सभी देवों अर्थात् पंचभूतों या पृथिवी, ज़ल, अग्नि, वायु और आकाश का उपयोग किया जाता है, अत: शिल्प सभी देवों का निवासस्थान है।

शिल्पो वैश्वदेवः । यजु० २९.५८

गोपथ ब्राह्मण में शिल्प की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि सभी प्रकार की कला-कृतियाँ इसमें आती हैं। हस्तशिल्प, चित्रकला, स्वर्णाभूषण आदि तथा रथ-निर्माण आदि इसमें संगृहीत हैं।

शिल्पानि शंसति । गोपथ० उत्तर० ६.७

ऋग्वेद में उत्तम कोटि की शिल्परचना के लिए सुशिल्प शब्द का भी प्रयोग है।

सुशिल्पे बृहती मही० । ऋग्० ९.५.६

शिल्प और यन्त्र : वेदों के अनेक मंत्रों में शिल्प से संबद्ध यन्त्रों का वर्णन है। यजुर्वेद में शरीर-रचना के ज्ञान के लिए कहा गया है कि हम शरीररूपी यन्त्र का ज्ञान प्राप्त करें।

तन्वो यन्त्रमशीय । यजु० ४.१८

तैत्तिरीय संहिता में विविध यन्त्रों का उल्लेख है। जैसे- वायुविज्ञान के लिए वातयन्त्र, ऋतुविज्ञान के लिए ऋतु-यंत्र, दिशा-विज्ञान के लिए दिग्यंत्र, प्रकाशयन्त्रों के लिए तेजोयंत्र और ऊर्जा-सम्बन्धी यंत्रों के लिए ओजोयन्त्र आदि।

वातानां यन्त्राय, ऋतूनां यन्त्राय, दिशां यन्त्राय,
तेजसे यन्त्राय, ओजसे यन्त्राय । तैत्ति० १.६.१.२

इसी प्रकार एक मंत्र में वाग्-यन्त्र का भी वर्णन है ।

वाचो यन्तुर्यन्त्रेण । तैत्ति० १.७.१०.३

इसमें 'यन्तुः यन्त्रेण' के द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया है कि यन्त्र का काम नियन्त्रण करना है ।

नवीन उद्योग लगाना : ऋग्वेद के एक मंत्र में ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए नवीन उद्योग लगाने का निर्देश है । इससे धन और यश दोनों की प्राप्ति होती है ।

अग्ने सनये धनानां, यशसं कारुं कृणुहि० ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन । ऋग्० १.३१.८

विविध उद्योग : ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में बड़े-छोटे सैकड़ों उद्योगों का उल्लेख है । उनमें से कुछ विशेष उद्योगों का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है ।

(क) वस्त्र उद्योग : ऋग्वेद में सूत की कताई का अनेक मंत्रों में उल्लेख है । इनमें तन्तुओं को बुनने का वर्णन है ।[१] वस्त्र बुनने वाले को वासोवाय कहते थे ।[२] वस्त्र बुनने वाली स्त्री को 'वय्या' कहते थे ।[३] बुनाई से संबद्ध कुछ पारिभाषिक शब्द ये प्राप्त होते हैं : **(१) तन्त्र** - करघा, **(२) तन्तु**- ताना, **(३) ओतु** - बाना, **(४) तसर**- बुनने की शटल (Shuttles), **(५) मयूख**- धागा तानने के लिए खूँटिया, **(६) प्र वय** - आगे की ओर बुनना, **(७) अप वय**- पीछे की ओर बुनना । **(८) तनुते** - फैलाता है, **(९) कृणत्ति** - समेटता है ।

ऋग्वेद के दो मंत्रों में बुनाई की विधि का उल्लेख है ।[४] अथर्ववेद में एक सुन्दर रूपक के द्वारा बुनाई का वर्णन है ।[५] इसमें कालचक्र को एक करघा माना गया है । उस पर दिन और रात्रिरूपी दो स्त्रियाँ वर्षरूपी वस्त्र बुनती हैं । इसमें ६ ऋतुएँ ६ खूंटियाँ हैं । रात्रि ताना है और दिन बाना । इनमें से एक धागे को फैलाती है और दूसरी उसे समेटती है । बुनने का काम अधिकतर स्त्रियाँ करती थीं, परन्तु एक मंत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि पुरुष भी बुनाई का काम करते थे ।[६] बुनी जाने वाली वस्तुओं

---

१. ऋग्० १.१४२.१
२. ऋग्० १०.२६.६
३. ऋग्० २.३.६
४. ऋग्० १०.१३०. १-२
५. अथर्व० १०.७.४२-४३
६. अथर्व० १०.७.४३

में सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्र मुख्य थे। सूती वस्त्रों के लिए वासस् शब्द का प्रयोग मिलता है।[७] ऊन के लिए ऊर्णा शब्द है और ऊनी वस्त्र के लिए ऊर्णायु शब्द।[८] ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि ऊन की कालीन (Carpet) भी बुनी जाती थी। इसे ऊर्णम्रदस् कहते थे।[९] रेशमी वस्त्र के लिए तार्प्य शब्द है।[१०] यह आधुनिक तसर के सदृश वस्त्र प्रतीत होता है। यह तृपानामक ओषधिविशेष के धागे से बनता था।

(ख). गृह-उद्योग एवं विविध शिल्प : इनमें कुछ विशेष उल्लेखनीय शिल्प ये हैं :

(१) मणिकार - जौहरी । यह सोना, चाँदी और रत्नों से आभूषण बनाता था।[११] स्वर्णाभूषण गले में पहना जाता था।[१२] कान में सोने का आभूषण पहना जाता था, उसे पहनने वाले को हिरण्यकर्ण कहते थे और गले में मोती की माला पहनने वाले को मणिग्रीव कहते थे।[१३] **(२) यान्त्रिक** - मिस्त्री या कारीगर।[१४] तैत्तिरीय संहिता में कुछ यन्त्रों का भी उल्लेख है। नियन्त्रण करने वाली मशीन को यन्त्र कहा गया है। जैसे - वायुयन्त्र (वायु की गति बताने वाला यंत्र), दिशाबोधक यन्त्र, तेज या प्रकाश का यंत्र।[१५] **(३) तक्षन्, तक्षा** - बढ़ई। यह गाड़ी आदि बनाने का कार्य करता था।[१६] **(४) रथकार** - यह सुन्दर रथों को बनाता था।[१७] वेदों में सुन्दर रथ बनाने को बहुत महत्त्व दिया गया है। युद्धों के लिए विशेष रथ बनाए जाते थे। **(५) कर्मार**- लोहार।[१८] यह लोहे को तपाकर विभिन्न शस्त्र-अस्त्र बनाता था। लोहे को तपाने के कारण इसे अयस्ताप भी कहते थे।[१९] इससे ज्ञात होता है कि लोहे

---

७. अथर्व० ९.५.२६
८. यजु० १३.५०
९. ऋग्० ५.५.४
१०. अ० १८.४.३१
११. मणिकारम्, यजु० ३०.७
१२. ऋग्० १.६४.४
१३. मणिग्रीवम्, ऋग्० १.१२२.१४
१४. यन्तुर्यन्त्रेण, यजु० १८.३७
१५. तैत्ति० सं० १.६.१.२
१६. यजु० ३०.६
१७. रथकारम् , यजु० ३०.६
१८. कर्मारम्, यजु० ३०.७
१९. अयस्तापम्, यजु० ३०.१४

को गलाने के लिए बड़ी-बड़ी भट्टियाँ बनाई जाती थी। **(६) स्थपति** - राज, मिस्त्री।[२०] ये उच्च कोटि के महल आदि भी बनाते थे। **(७) हिरण्यकार** - सुनार।[२१] यह सोना चाँदी आदि धातुओं को गलाकर विभिन्न प्रकार के आभूषण बनाता था। मणिकार और हिरण्यकार शब्दों से ज्ञात होता है कि आभूषणों में बहुमूल्य हीरा, पन्ना, नीलम आदि मणियाँ भी जड़ी जाती थीं। **(८) चर्मम्न, चर्मकार** - यह चमड़े का सामान बनाता था।[२२] चमड़ा उद्योग भारत का बहुत प्राचीन उद्योग ज्ञात होता है। वेदों में चमड़े के जूते (उपानह्), मशक (दृति), ढोल (दुन्दुभि), चाबुक (कशा), धनुर्ज्या (धनुष की डोरी), चमड़े के कवच (वर्म) आदि का उल्लेख है। चर्मम्न (Currier) का कार्य था - कच्ची खाल को साफ करके पक्का चमड़ा तैयार करना, उसको रंगना आदि।[२३] ऐतरेय ब्राह्मण में चमड़े से बने सामान के लिए 'चर्मण्य' शब्द है।[२४] **(९) धनुष्कार** - धनुष बनाने वाला।[२५] इसको धनुष्कृत् और धन्वकृत् भी कहा गया है। धनुष लचकदार लकड़ी से बनाया जाता था। ताँत की डोरी से इसके दोनों छोरों को मिलाया जाता था। **(१०) ज्याकार** - धनुष की डोरी या ताँत को ज्या कहते थे। इसके बनाने वाले को ज्याकार कहते थे।[२६] धनुष की डोरी बनाना एक विशेष कला थी, अतः इसका विशेष उल्लेख है। **(११) इषुकार** - बाण बनाने वाला।[२७] बाणों को रखने के लिए तरकश या तूणीर होता था, इसे इषुधि कहते थे। बाण दो प्रकार के होते थे - (क) विष में बुझे हुए। इन्हें आलाक्त, दिग्ध या विषाक्त कहते थे।[२८] (ख) अयोमुख अर्थात् लोहे या तांबे के मुख वाले।[२९] **(१२) पेशिता**- नक्काशी या कढ़ाई (Carving) का काम करने वाला।[३०] ये वस्त्रों पर

---

२०. स्थपतये, यजु० १६.१९
२१. हिरण्यकारम्, यजु० ३०.१७
२२. चर्मम्नम्, यजु० ३०.१५
२३. चर्मम्नाः, ऋग्० ८.५.३८
२४. ऐत० ब्रा० ५.३२
२५. धनुष्कारम्, यजु० ३०.७
२६. ज्याकारम्, यजु० ३०.७
२७. इषुकारम्, यजु० ३०.७
२८. आलाक्ता, ऋग्० ६.७५.१५
२९. अयोमुखम्, ऋग्० ६.७५.१५
३०. पेशितारम्, यजु० ३०.१२

बेल-बूटे या कसीदा काढ़ने का भी काम करते थे । **(१३) सूचीकर्म, सौचिक** - सिलाई (Tailoring) का काम करने वाला ।[३१] यह सूती, ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के वस्त्रों को सीता था । **(१४) रजयित्री** - वस्त्रों की रंगाई का काम करने वाली ।[३२] यह काम प्राय: स्त्रियाँ करती थीं । रंगने के लिए वृक्षों की छाल आदि से रंग तैयार किया जाता होगा । इसके लिए कुछ रासायनिक द्रव्यों का भी प्रयोग किया जाता होगा, जिससे रंग पक्का हो । **(१५) आंजनीकारी** - आँख के लिए अंजन, काजल या सुरमा बनाने वाली ।[३३] यह काम स्त्रियाँ करती थीं । **(१६) मधु-निर्माण** - मधु-निर्माण (Apiary) भी अच्छा व्यवसाय था । इसमें शहद की मक्खियों को पाला जाता था और उनके द्वारा शहद प्राप्त किया जाता था । वेदों में शहद की मक्खियों के लिए सरघा शब्द है और इनसे प्राप्त शहद को 'सारघ मधु' कहते थे ।[३४] अथर्ववेद में शहद की मक्खी के लिए मक्ष और मधुकृत् शब्द भी आए हैं ।[३५] इनके लिए कहा गया है कि ये मधुकोष (छत्ते) में मधु छोड़ती हैं ।[३६] मंत्र में मधुकोष के लिए 'मधावधि' शब्द है ।[३७] साधारण मक्खियों के लिए मक्षिका शब्द है ।[३८] **(१७) चीनी उद्योग** - वेदों में चीनी-उद्योग (Sugar Industry) का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है । अथर्ववेद में सर्वप्रथम इक्षु (ईख, गन्ना) का उल्लेख मिलता है ।[३९] इसमें इक्षु की मधुरता का वर्णन है । मैत्रायणी संहिता में इक्षुकाण्ड (गन्ना) का उल्लेख है ।[४०] इससे ज्ञात होता है कि गन्ने के रस से विविध प्रकार की वस्तुएँ बनती थीं । इनका विवरण अप्राप्य है । **(१८) सुराकार** - सुरा-निर्माण (Distillery) एक बड़ा व्यवसाय था । विभिन्न वस्तुओं का यांत्रिक विधि से अर्क निकाला जाता था ।[४१] सुराकार मदिरा या मादक पेय बनाना था ।[४२]

---

३१. सूच्या०, अ० ७.४८.१
३२. रजयित्रीम्, यजु० ३०.१२
३३. आंजनीकारीम्, यजु० ३०.१४
३४. मधुनः सारघस्य, यजु० ३८.६
३५. यथा मक्षाः, अ० ९.१.१७
३६. मधु मधुकृतः, अ० ९.१.१६
३७. मधावधि, अ० ९.१.१७
३८. मक्षिकाः, अ० ११.२.२
३९. इक्षुणा, अ० १.३४.५
४०. इक्षुकांडम्, मैत्रा० ३.७.९
४१. सुराकारम्, यजु० ३०.११
४२. नक्षत्रदर्शम्, यजु० ३०.१०

अन्य कुछ विशेष उल्लेखनीय व्यवसाय ये थे : -

(१) नक्षत्रदर्श - ज्योतिर्विद् या ज्योतिषी के लिए नक्षत्रदर्श शब्द है ।[४२] इसका संबन्ध गणित और फलित ज्योतिष (Astronomy & Astrology) दोनों से था । यह नक्षत्रों की गणना करता था और उनके शुभाशुभ फल बताता था । यजुर्वेद में 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्' कहकर इस विद्या को विज्ञान की कोटि में रखा गया है । छान्दोग्य उपनिषद् में अन्य विद्याओं के साथ नक्षत्रविद्या (गणित ज्योतिष) की भी गणना की गई है ।[४३] **(२) भिषक्** - वैद्य या चिकित्सक (Physician) के लिए है ।[४४] यह चिकित्सा के द्वारा रोगियों को स्वस्थ करता था । अथर्ववेद के सैकड़ों मंत्रों में आयुर्वेद और आयुर्वेदीय ओषधियों का वर्णन है । प्राचीन समय में वह बहुत बड़ा व्यवसाय था । **(३) प्रश्नविवाक** - न्यायाधीश के लिए है ।[४५] वह विवादास्पद विषयों पर अपना निर्णय देता था । न्यायालय से संबद्ध कुछ शब्द मिलते हैं । यजुर्वेद में वादी (प्रश्न पूछने वाले) के लिए प्रश्निन् शब्द है, और प्रतिवादी (उत्तर देने वाले) के लिए अभिप्रश्निन् शब्द है ।[४६] अथर्ववेद में दोनों के लिए क्रमश: प्राश् और प्रतिप्राश् शब्द हैं ।[४७] **(४) कलात्मक वृत्तियाँ** - इसमें नृत्य, गीत और वाद्य आते हैं । वेदों में इन तीनों का वर्णन है । नृत्त और नृत्य दोनों का वर्णन है ।[४८] गायक, वीणावादक, तूणवध्म (बीन बजाने वाले), शंखध्म (शंख बजाने वाले), पाणिघ्न (तबला या ढोलक बजाने वाले), तलव (तबला) आदि का भी उल्लेख है ।[४९] **(५) कृषिकर्म** - कृषिविद्या (Agriculture) का वेदों में विस्तार से वर्णन है । अनेक सूक्तों में इसका विस्तृत वर्णन है ।[५०] इसका विस्तृत विवेचन कृषि-विज्ञान

---

४३. नक्षत्रविद्याम्, छा०उप० ७.२.१
४४. भिषजम्, यजु० ३०.१०
४५. प्रश्नविवाकम्, यजु० ३०.१०
४६. यजु० ३०.१०
४७. अथर्व० २.२७.२
४८. यजु० ३०.६; अ० १२.१.४१
४९. यजु० ३०.६,१९,२०
५०. ऋग्० ४.५७; अ०३.१७, यजु० १२.६८ से ७२

में हुआ है । **(६) व्यापार और वाणिज्य (Trade and Commerce) :** वेदों में इससे संबद्ध पर्याप्त सामग्री मिलती है । अथर्ववेद में आठ मंत्रों का एक पूरा सूक्त वाणिज्य से संबद्ध है ।[५१] इसमें इन्द्र को एक व्यापारी (वणिक्) के रूप में प्रस्तुत किया गया है । व्यापार श्रीवृद्धि का साधन (धनदा) है । क्रय के लिए पण और प्रपण शब्द हैं तथा विक्रय के लिए विक्रय और प्रतिपण शब्द हैं । बिक्री का साधन वस्तुविनिमय और मूल्य दोनों था । समुद्री व्यापार भी प्रचलित था ।[५२] बौधायन धर्मसूत्र में समुद्री यातायात का उल्लेख है ।[५३] व्यापार के सम्बन्ध में देवयान (आकाशमार्ग) का भी उल्लेख है । [५४] परन्तु यह कहना कठिन है कि व्यापार के लिए वायुयानों का उपयोग होता था । [५५] **(७) सोने के सिक्के-** अथर्ववेद में सोने के सिक्कों का उल्लेख मिलता है ।[५६] इससे ज्ञात होता है कि व्यापार में कुछ सिक्कों का भी प्रचलन था ।

---

५१. अथर्व० ३.१५.१ से ८

५२. ऋग्० १.११६.४ और ५

५३. बौधा० १.२.४; २.२.२

५४. अथर्व० ३.१५.२

५५ विस्तृत विवरण के लिए देखो - लेखककृत - अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ १७९ से १८४

५६. शतं निष्का हिरण्यया: , अ० २०.१३१.५

अध्याय - ६

कृषि-विज्ञान (Agricultural Sciences)

कृषि का महत्त्व : मानव जीवन अन्न पर निर्भर है । अन्नों की प्राप्ति कृषि से होती है, अतः कृषि मानवमात्र के जीवन का आधार है । सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही अन्न की समस्या उत्पन्न हुई । इसके निवारण के लिए कृषि का आविष्कार हुआ । कृषि-कार्य गौरव का कार्य माना जाता था, इसलिए इन्द्र और पूषा देवों को इसमें लगाया गया ।[१] कवि और विद्वान् भी कृषि -कार्य करते थे ।[२] अथर्ववेद में वर्णन है कि विराट् ब्रह्म जब मनुष्यों के पास पहुँचा तो उन्होंने उसे इरावती (अन्नसमृद्धि) कहा । इस इरावती को दुहकर उन्होंने कृषि और सस्य (अन्न) प्राप्त किया । कृषि और अन्न से ही मनुष्यों का जीवन चलता है ।[३] जो कृषिविद्या में निपुण होते थे, उन्हें कृष्टराधि और उपजीवनीय (सफल आजीविका वाला) कहा जाता था ।[४] कृषि-विशेषज्ञों को 'अन्नविद्' नाम देते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम उन्होंने कृषि के नियम (याम) बनाये थे ।[५]

कृषि को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है । यजुर्वेद में राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया गया है कि वह कृषि की उन्नति करे, जन-कल्याण करे और धन-धान्य की वृद्धि करे ।[६]

शतपथ ब्राह्मण में पूरे कृषिकार्य को चार शब्दों में वर्णन किया गया है : **(१) कर्षण :** खेत की जुताई करना, **(२) वपन :** बीज बोना, **(३) लवन :** पके खेत की कटाई करना, **(४) मर्दन :** मड़ाई करके स्वच्छ अन्न को प्राप्त करना ।[७]

अथर्ववेद में कहा गया है कि अन्न मनुष्य के जीवन का आधार है । इसके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है ।[८] इसलिए वेद में अन्न को विश्व की प्रमुख समस्या बताया गया है ।[९]

---

१. इन्द्रः सीतां निगृह्णातु० । अ० ३.१७.४
२. अथर्व० ३.१७.१
३. ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति । अ० ८.१०.२४
४. कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति । अ० ८.१०.२४
५. यद् यामं चक्रुः - अन्नविदः । अ० ६.११६.१
६. कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा । यजु० ९.२२
७. कृषन्तः, वपन्तः लुनन्तः मृणन्तः । शत० १.६.१.३
८. जीवन्ति स्वधयाऽन्नेन मर्त्याः । अ० १२.१.२२
९. अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः । अ० २०.७६.४

कृषि का प्रारम्भ : पृथ्वी पर कृषिविद्या का किस प्रकार विकास हुआ, इस विषय में कुछ रोचक प्रसंग वेदों में प्राप्त होते हैं । ऋग्वेद का कथन है कि सर्वप्रथम देवगण (पुरुषार्थी विद्वान्) आगे आए । उनके पास अपनी-अपनी कुल्हाड़ियाँ (परशु) थीं । उन्होंने जंगलों को काटकर साफ किया । उनके साथ उनके कुछ सहयोगी परिजन या प्रजाजन (विश्) भी थे । उन्होंने उपयोगी लकड़ियों (बल्लियों आदि, सुद्रु) को नदियों के किनारे रख दिया और जहाँ कहीं घास-फूंस (कृपीट) थी, उसे जला दिया ।[१०] इससे ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक अवस्था में जंगलों की अधिकता थी । जंगलों को काटा गया, भूमि को समतल किया गया और फिर कृषि का कार्य प्रारम्भ हुआ ।

राजा पृथी (पृथु) कृषि का आविष्कारक : ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि राजा वेन का पुत्र राजा पृथी (पृथु) कृषिविद्या का प्रथम अविष्कारक है । उसने ही सर्वप्रथम कृषि-विद्या के द्वारा विविध प्रकार के अन्नों के उत्पादन का रहस्य ज्ञात किया । ऋग्वेद में वेन के पुत्र पृथी राजा (पृथी वैन्य) का केवल उल्लेख मात्र है ।[११] अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से पृथी वैन्य को कृषिविद्या का आविष्कारक माना गया है । अथर्ववेद का कथन है कि - वैवस्वत मनु की परम्परा में वेन का पुत्र पृथी राजा हुआ । उसने कृषि की और अन्न उत्पन्न किए ।[१२] कृषि और अन्न पर सभी मनुष्यों का जीवन निर्भर है । इसलिए कृषिविद्यावित् की शरण में सभी लोग जाते हैं ।[१३]

सर्वप्रथम कृषिकर्ता इन्द्र और मरुत् : अथर्ववेद का कथन है कि सरस्वती नदी के किनारे की उपजाऊ भूमि में माधुर्ययुक्त जौ की खेती हुई । इसमें इन्द्र कृषिकर्म के अधिष्ठाता थे और मरुत् देवों ने किसान का काम किया ।[१४] इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि कृषि के लिए सर्वप्रथम सरस्वती नदी के किनारे की भूमि चुनी गई । यह भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी । कृषिकार्य का नियन्ता राजा था और उसकी देखरेख में प्रजाजनों (मरुत्) ने जौ की खेती की । इससे ज्ञात होता है कि सबसे पहले जौ ही बोया गया ।

---

१०. देवास आयन् परशूंरबिभ्रन् , वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्रूवं दधतो वक्षणासु, यत्रा कृपीटमनु तद् दहन्ति । । ऋग्० १०.२८.८

११. पृथी यद् वां वैन्यः । ऋग्० ८.९.१०

१२. तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् , पृथिवी पात्रम् ।
तां पृथी वैन्योऽधोक् , तां कृषिं सस्यं चाधोक् ।। अथर्व० ८.१०(४).१० और ११

१३. ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति,
कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति ।। अ० ८.१० (४). १२

१४. इमं देवा मधुना संयुतं यवं, सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः ।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ।। अ० ६.३०.१

बीज कहाँ से आए, उनका किस प्रकार परीक्षण हुआ, कृषिकर्म का क्रमिक विकास किस प्रकार हुआ, कृषि के उपकरणों का किसने आविष्कार किया आदि के विषय में कोई सामग्री वेदों में उपलब्ध नहीं है। जिन्होंने भी इन परीक्षणों आदि के द्वारा कृषिकर्म का विकास किया, वे सारे संसार के लिए पूज्य हैं। कृषि की जो परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है, प्राय: वही परम्परा आज भी अक्षुण्ण है। केवल उपकरणों का आधुनिकीकरण हो गया है।

महाभारत और पुराणों में कृषि : महाभारत ने राजा का नाम पृथी के स्थान पर पृथु दिया है। महाभारत का कृषि के संबन्ध में वर्णन है कि - वेन का पुत्र पृथु एक प्रतापी राजा था। उसने ऊँची-नीची भूमि को सम बनाया। उसने विषम भूमि से पत्थरों को निकाला और उन्हें एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया।[१५] इस प्रकार भूमि को सम बनाकर कृषि की और १७ प्रकार के अन्न उत्पन्न किए।[१६]

भागवत पुराण आदि में भी पृथी (पृथु) वैन्य के इस आविष्कार की विस्तृत चर्चा है। इन्होंने ही सर्वप्रथम कृषि के लिए पथरीली भूमि को समतल बनाया और जोतकर कृषि की।[१७]

खेतों से चट्टानों आदि को निकालकर उन्हें एक स्थान पर रखना तथा भूमि को कृषियोग्य बनाने के उदाहरण आज भी मारीशस आदि द्वीपों में देखे जा सकते हैं। पूर्वोक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि कृषि के लिए वनों को काटा गया। भूमि से चट्टानों, कंकड़ों आदि को हटाया गया। तब कृषि के योग्य भूमि हुई। उसमें विविध अन्नों को बोया गया।

कृषिकर्म

कृषियोग्य भूमि : कृषि के लिए सबसे पहली आवश्यकता भूमि की है। यजुर्वेद में एक प्रश्न किया गया है कि बीज बोने के लिए सर्वोत्तम स्थान क्या है ? इसका उत्तर दिया गया है कि - भूमि ही बीज बोने के लिए सर्वोत्तम स्थान है।[१८] इसके

---

१५. राजा पृथुर्वैन्य: प्रतापवान्। समतां वसुधायाश्च स सम्यगुदपादयत्।
वैषम्यं हि परं भूमेरासीदिति च न: श्रुतम्॥
उज्जहार ततो वैन्य: शिलाजालान् समन्तत:॥ शान्ति० ५९. ११३-११५

१६. तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च॥ शान्ति० ५९. १२४

१७. भागवत पुराण स्कन्ध ५, अध्याय १६-२३

१८. किं वावपनं महत्। भूमिरावपनं महत्। यजु० २३.४५-४६

पश्चात् उत्तम बीज की आवश्यकता होती है, जिससे उत्कृष्ट कृषि हो सके । अतः यजुर्वेद का कथन है कि उत्तम अन्नों को देने वाली कृषि करो ।[१९]

कृषि, हल और बैल : कृषि के लिए उत्तम भूमि के साथ ही उत्तम बीज, हल, बैल और किसान की आवश्यकता होती है । अथर्ववेद में ९ मंत्रों का एक पूरा सूक्त कृषिकर्म से संबद्ध है । इनमें से अधिकांश मंत्र ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी आए हैं । अथर्ववेद का कथन है कि : -

(१) विद्वान् लोग सुख प्राप्ति के लिए हलों को जोतते हैं और जूओं को पृथक्-पृथक् बाँधते हैं ।[२०]

(२) हल को तैयार करो, जूए में बैलों को बाँधो । तैयार की हुई भूमि में बीज बोओ । अन्न की उपज हमारे लिए भरपूर हो । कृषि तैयार होने पर उसे हँसुओं से काटकर परिपक्व अन्न घर लावो ।[२१]

(३) हल वज्र के तुल्य कठोर, चलाने में सुखद और लकड़ी की मूठ वाला हो । यह हल ही अन्नसमृद्धि के द्वारा गाय, बैल, अश्व आदि को पुष्ट करता है ।[२२]

(४) इन्द्र वृष्टि के द्वारा जुती हुई भूमि को पुष्ट करे और पूषा (सूर्य) उसकी रक्षा करे । वह भूमि हमें प्रतिवर्ष उत्तम रसयुक्त धान्य दे ।[२३]

(५) हल की फाल भूमि को सरलता से खोदे । किसान बैलों के पीछे चलें । हवि से प्रसन्न होकर वायु और सूर्य (शुनासीर) उत्तम फलयुक्त धान्य उत्पन्न करें ।[२४]

---

१९. सुसस्याः कृषीस्कृधि । यजु० ४.१०

२०. सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥
अ० ३.१७.१ । ऋग्० १०.१०१.४ । यजु० १२.६७

२१. युनक्त सीरा वि युगा तनोत, कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो, नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥
अ० ३.१७.२, ऋग्० १०.१०१.३, यजु० १२.६८

२२. लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु० । अ० ३.१७.३, यजु० १२.७१

२३. इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु, तां पूषाऽभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहाम्, उत्तरामुत्तरां समाम् ॥ अ० ३.१७.४, ऋग्० ४.५७.७

२४. शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं, शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना, सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥
अ० ३.१७.५, ऋग्० ४.५७.८, यजु. १२.६९

(६) बैल सुखी रहें। मनुष्य सुखी रहें। हल सरलता से कृषि करें। रस्सियाँ ठीक ढंग से बाँधी जाएँ और चाबुक का ठीक उपयोग किया जाए।[२५]

(७) हे वायु और सूर्य (शुनासीर), हमारे यज्ञ को स्वीकार करो। आकाश में जो जल है,उसकी वृष्टि से पृथ्वी को सींचो।[२६]

(८) हे जुती हुई भूमि (सीता) हम तेरा अभिनन्दन करते हैं। तू हमारे लिए अनुकूल हो और हमें उत्तम धान्य दे।[२७]

(९) जब जुती हुई भूमि घी और शहद से सींची जाती है और जलवायु आदि देव अनुकूल होते हैं, तब वह भूमि रसयुक्त उत्तम धान्य देती है।[२८]

इन मंत्रों से कृषि-सम्बन्धी निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है -

(१) बीज बोने से पहले खेत को ठीक ढंग से तैयार किया जाए।

(२) कृषि हेतु कृषक, हल और बैलों की आवश्यकता होती है।

(३) हल की फाल बहुत अच्छी होनी चाहिए। यह कठोर और तीक्ष्ण हो।

(४) बैलों को जूओं में ठीक ढंग से रस्सी से बाँधा जाए, रस्सी मजबूत हो।

(५) ठीक ढंग से जुते हुए खेत में ही उत्तम कोटि का बीज बोया जाय।

(६) समयानुकूल वर्षा के लिए यज्ञ किया जाय।

(७) जलवायु की अनुकूलता हो। समय पर वर्षा हो, जिससे उत्तम खेती हो सके।

(८) खाद के रूप में घी, दूध और शहद का भी उपयोग किया जाए।

(९) खेती तैयार होने पर हँसिया से काटा जाय। उसे खलिहान में साफ करके घरों में ले जाया जाय।

(१०) कृषि उत्तम कार्य है। विद्वान् और राजा भी कृषिकार्य करते थे।

(११) कृषि से उत्पन्न अन्न सभी मनुष्यों और पशु-पक्षियों को पुष्ट करता है।

(१२) पृथिवी अन्नदात्री है, अतः उसका माता के तुल्य आदर करें।

---

२५. शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम्। शुनं वरत्रा बध्यन्तां, शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥
अ० ३.१७.६, ऋग्० ४.५७.४

२६. शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्। यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥
अ०३.१७.७, ऋग्० ४.५७.५

२७. सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव। यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥
अ० ३.१७.८, ऋग्० ४.५७.६

२८. घृतेन सीता मधुना समक्ता, विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। सा नः सीते पयसाऽभ्याववृत्स्व, ऊर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥ अ० ३.१७.९, यजु० १२.७०

भूमि के भेद : कृषि के योग्य उपजाऊ भूमि के लिए उर्वरा शब्द है । ऐसी भूमि को हल से जोता जाता है और उसमें उत्तम बीज बोया जाता है ।[२९] उर्वरा भूमि में उत्पन्न होने वाले अन्न को 'उर्वर्य' कहते हैं ।[३०] जिस भूमि में अन्न नहीं बोते हैं, उसे खल कहते हैं । यह बिना जुती हुई भूमि खलिहान का काम करती है । इसमें कृषि से उत्पन्न अन्न को साफ किया जाता है और भूसी आदि हटाकर भंडारण के योग्य बनाया जाता है ।[३१] खलिहान में रखे हुए अन्न के लिए 'खल्य' शब्द है ।[३२] खलिहान में नमी आदि के कारण कुछ कीड़े भी अन्न में लग जाते हैं, इन्हें 'खलज' कहा गया है और इनको मारने का विधान है ।[३३] जो भूमि कृषि के योग्य नहीं है, उसे ऊषर या इरिण (ऊसर) कहते हैं ।[३४] इसमें क्षारमृत्तिका (खारी मिट्टी) होती है । खारी मिट्टी के कणों के लिए शतपथ ब्राह्मण में 'ऊषरसिकता' शब्द है ।[३५]

बीज, भूमि और वर्षा : ऋग्वेद का कथन है कि उत्कृष्ट अन्न के लिए उत्तम कोटि का बीज बोना चाहिए । अतएव किसान उत्तम बीज बोते हैं ।[३६] अथर्ववेद में अन्न के लिए उत्तम भूमि और वर्षा की आवश्यकता बताई गई है । वर्षा से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है । यह अन्न ही सारी प्रजा के जीवन का आधार है ।[३७] इस मंत्र में भूमि को पर्जन्य की पत्नी अर्थात् वर्षा द्वारा पालित और 'वर्षमेदस् ' अर्थात् वर्षा से उर्वराशक्ति की वृद्धि का उल्लेख है ।

बीज बोने का प्रकार : बीज बोने से पहले भू-परिष्कार आवश्यक है, अर्थात् भूमि से घास-फूंस, कंकड़, पत्थर आदि को निकाला जाय और भूमि को सम किया जाय । इसके लिए यजुर्वेद में कहा गया है कि 'कृते योनौ' भू-परिष्कार के बाद ही बीज बोया जाय ।[३८]

---

२९. यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति । अ० १०.६.३३
३०. नम उर्वर्याय । यजु० १६.३३
३१. खले न पर्षान् । ऋग्० १०.४८.७
३२. खल्याय च । यजु० १६.३३
३३. खलजाः ...... तान् नाशय । अ० ८.६.१५
३४. असौ च या न उर्वरा । ऋग्० ८.९१.६ ।
ऊषरं क्षेत्रम् (सायण) । इरिणानु । अ० ४.१५.१२
३५. शतपथ ब्राह्मण कांड ६
३६. वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः । ऋग्० १०.९४.१३
३७. यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ।। अ० १२.१.४२
३८. कृते योनौ वपतेह बीजम् । यजु० १२.६८

यजुर्वेद और अथर्ववेद का कथन है कि बीज बोने से पूर्व जुती हुई भूमि में खाद के रूप में घी, दूध और मधु का प्रयोग किया जाय। इससे भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है।[३९] बीज के विषय में निर्देश है कि बीज को पानी में भिगोया जाए और उसमें ओषधियों को भी डाला जाय। इससे बीज में ओषधियों की शक्ति आ जाएगी और उसकी गुणवत्ता बढ़ जाएगी।[४०]

कौटिल्य और कृषि : कौटिल्य ने 'सीताध्यक्षः' प्रकरण में कृषि- संबन्धी अनेक उपयोगी बातें दी हैं।[४१] कौटिल्य का कथन है कि धान के बीजों को सात दिन तक रात की ओस और दिन की धूप में रखना चाहिए। मूंग, उड़द आदि के बीजों को इसी प्रकार तीन दिन-रात या पाँच दिन-रात ओस और धूप में रखना चाहिए।[४२] बोने से पहले प्रत्येक बीज को सुवर्ण से छुए हुए जल में भिगोना चाहिए।[४३] बोते समय बीज की पहली मुट्ठी भरकर इस मंत्र को पढ़कर बीज बोएँ।

प्रजापतये काश्यपाय देवाय नमः सदा।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च ।।

इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने इन बातों का भी उल्लेख किया है कि किस प्रकार की भूमि में कौन सा अन्न बोना चाहिए। किस ऋतु में कहाँ कौन सा अन्न बोया जाए। उत्तम फसल के लिए कितनी धूप और कितनी वर्षा आवश्यक है। सिंचाई की ठीक व्यवस्था की जाय। सिंचाई की सुविधा को देखकर ही बीज बोया जाय। किन अन्नों को वर्षा शुरू होने से पहले बोया जाय, किन्हें वर्षा के मध्य में और किन्हें वर्षा के अन्त में बोया जाय, इत्यादि। इसके साथ ही यह भी निर्देश दिया है कि वर्षा के अनुपात से ही बीज बोना चाहिए।[४४] सभी अन्नों को ऋतु के अनुसार जैसा उचित हो, बोना चाहिए।[४५] कौटिल्य का यह भी कथन है कि बीज जब अंकुरित हो जावें, तब उनमें छोटी मछलियों की खाद डलवा देनी चाहिए और उन्हें सेहुड़ (स्नुही) के दूध से सींचना चाहिए।[४६] साँप की केंचुली और बिनौलों को एक साथ मिलाकर जला

३९. घृतेन सीता मधुना समज्यताम्,
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना। यजु० १२.७०। अ० ३.१७.९
४०. सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन। यजु० १.२१
४१. कौ० अर्थशास्त्र, पृष्ठ २३८ से २४४
४२. तुषारपायनम् उष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धन्यबीजानाम्।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानाम्। कौ० अर्थ० पृष्ठ २४२
४३. सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेत्। कौ०अर्थ०पृ० २४३
४४ ततः प्रभूतोदकम् अल्पोदकं वा सस्यं वापयेत्। कौ०अर्थ० पृष्ठ २४०
४५. यथर्तुवशेन वा बीजवापाः। कौ० अर्थ० पृष्ठ २४०
४६. प्ररूढान् चाशुष्ककटुमत्स्यान् च स्नुहिक्षीरेण पाययेत्। कौ० अर्थ० पृ० २४२

दिया जाय, जहाँ तक उनका धुआँ फैलेगा, वहां तक कोई साँप नही रह सकेगा।[४७]

खलिहान में साफ किए हुए अन्न को सुरक्षित स्थान पर ले जाकर रखा जाय। खलिहान में पुआल, भूसा आदि कुछ न छोड़ें। खलिहान के पास आग न रखें। वहाँ जल का प्रबन्ध अवश्य होना चाहिए।[४८]

कृषि और यज्ञ : वेदों में कृषि के लिए यज्ञ को बहुत महत्त्व दिया गया है। यज्ञ को विष्णु (परमात्मा) का रूप माना गया है।[४९] उसे संसार का केन्द्र या नाभि कहा गया है।[५०] सारा सृष्टिचक्र यज्ञ के द्वारा चल रहा है। यह यज्ञ प्रकृति में स्वाभाविक रूप से हो रहा है। इसमें वसन्त ऋतु घी का कार्य कर रहा है, ग्रीष्म ऋतु समिधा का और शरद् ऋतु सामग्री (हवि) का।[५१]

यजुर्वेद के १८वें अध्याय में 'यज्ञेन कल्पन्ताम्' कहते हुए १ से २७ मंत्र तक यज्ञ से होने वाले लाभों का विस्तृत वर्णन है। इसमें कृषि से संबद्ध ये तथ्य दिए गए हैं :-

१. यज्ञ से अन्न और फल-फूल की वृद्धि।[५२]

२. बीज का अंकुरित होना और फल धारण करना। हल से धान्य की उत्पत्ति और अच्छी फसल के बाधक तत्त्वों का विनाश।[५३]

३. उत्तम कृषि और वृष्टि का होना।[५४]

४. अक्षय अन्न और धान्य आदि की प्राप्ति।[५५]

५. यज्ञ से जल और अग्नि की प्राप्ति। उससे वृक्ष-वनस्पतियों की वृद्धि। दो प्रकार की उपज - (१) कृषि के द्वारा उत्पन्न धान्य आदि। इन्हें कृष्टपच्य कहते हैं। (२) बिना कृषि के ही उत्पन्न होने वाले जंगली चावल (नीवार) आदि। इन्हें अकृष्टपच्य कहते हैं।[५६]

---

४७. कर्पाससारं निर्मोकं, सर्पस्य च समाहरेत्।
न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति, धूमो यत्रैव तिष्ठति ॥ कौ० अर्थ० पृ० २४२

४८. कौ० अर्थ० पृ० २४३-२४४

४९. यज्ञो वै विष्णुः। शत० १.१.२.१३

५०. यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः। तैत्ति० ब्रा० ३.९.५.५

५१. वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मं इध्मः शरद् हविः। यजु० ३१.१४

५२. वाजश्च मे प्रसवश्च मे। यजु० १८.१

५३. सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे। यजु० १८.७

५४. कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे। यजु० १८.९

५५. अक्षितं च मेऽन्नं च मे। यजु० १८.१०

५६. अग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे
कृष्टपच्याश्च मे अकृष्टपच्याश्च मे। यजु० १८.१४

६. यज्ञ के द्वारा इन्द्र (वर्षा) और मरुत् (वायु) का होना ।[५७] कृषि के लिएजिस प्रकार वर्षा की आवश्यकता है, उसी प्रकार वायु की आवश्यकता है ।

७. यज्ञ के द्वारा अग्नि की ऊष्मा, सूर्य की ऊष्मा, सूर्य की किरणों का प्रकाश और उत्तम भूमि का प्राप्त होना ।[५८] कृषि के लिए उत्तम भूमि, पृथिवी की आन्तरिक अग्नि या ऊष्मा और सूर्य का प्रकाश आवश्यक है । इनका मंत्र में संकेत है ।

धूम, अभ्र और मेघ : ऋग्वेद में उल्लेख है कि यज्ञ से मेघ (बादल) बनते हैं । वे मेघ आकाश में रहते हैं और वर्षा के रूप में भूमि पर लौटते हैं ।[५९] सायण ने मंत्र का अर्थ किया है - यज्ञ इन्द्र (मेघ) को बढ़ाता है । वे मेघ अन्तरिक्ष में पहुँच कर शयन करते हैं और भूमि पर वर्षा के रूप में लौटकर आते हैं । यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य कि किरणें ही वृष्टि के मुख्य कारण है । वे समुद्र से जल को धूम या भाप के रूप में ऊपर खींचती हैं और उसी से वृष्टि होती हैं ।[६०] यज्ञ को वर्षा का कारण बताते हुए यजुर्वेद में कहा गया है कि अग्निदेव इन्द्र (मेघ) को बढ़ाते हैं अर्थात् यज्ञ से मेघ बनते हैं ।[६१] यही भाव गीता में भी दिया गया है कि यज्ञ से बादल बनते हैं । बादलों से वृष्टि और उससे अन्न होते हैं । अन्न से ही प्राणिमात्र की उत्पत्ति होती है ।[६२]

यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य कि किरणों से समुद्र का जल धूम या भाप के रूप में अन्तरिक्ष में जाता है । उसमें प्रकाश का संश्लेषण होता है और वह बादल बनता है । वह वर्षा के रूप में पृथिवी को पुष्ट करता है ।[६३] यजुर्वेद में मेघ के निर्माण का क्रम दिया गया है कि वायु के द्वारा समुद्री जल भाप के रूप में ऊपर जाता है । उसका प्रथम रूप धूम या भाप है । वह भाप शीतलता के कारण कठोर होकर पहले अभ्र अर्थात् जल की छोटी बूँद के रूप में परिवर्तित होता है । फिर इनसे छोटी बूँदों वाले बादलों का समूह या संघात मेघ बनता है । इससे वृष्टि होती है ।[६४] वेद में छोटी बूँदों के लिए अभ्रप्रुष् शब्द है ।[६५]

---

५७. इन्द्रश्च मे मरुतश्च मे । यजु० १८.१७
५८. अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे, पृथिवी च मे । यजु० १८.२२
५९. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि । ऋग्० ८.१४.५
६०. सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये । यजु० ३८.६
६१. देवो अग्निः .... देवमिन्द्रम् अवर्धयत् । यजु० २८.२२
६२. अन्नाद् भवन्ति भूतानि, पर्जन्याद् अन्नसंभवः । यज्ञाद् भवति पर्जन्यः । गीता ३.१४
६३. दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण । यजु० ६.२१
६४. वाताय स्वाहा, धूमाय स्वाहा, अभ्राय स्वाहा, मेघाय स्वाहा । यजु० २२.२६
६५. अभ्रप्रुषो न । ऋग्० १०.७७.१

कृषि के लिए आवश्यक पदार्थ

कृषि के लिए निम्नलिखित पदार्थों की आवश्यकता होती है : -
१. उर्वरा भूमि, २. उत्तम बीज, ३. धूप (सूर्य की किरणें), ४. वायु, ५. जल, ६. खेत की सुरक्षा और कृषिनाशक कीटादि का निवारण ,७. खाद । वेदों में इनके लिए स्फुट निर्देश प्राप्त होते हैं ।

१. उर्वरा भूमि : कृषि के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता उर्वरा भूमि की है । उर्वरा भूमि में बोया गया बीज ठीक ढंग से निकलेगा और बढ़ेगा । अथर्ववेद का कथन है कि उर्वरा भूमि में बोया गया बीज ठीक ढंग से निकलता है ।[१] अतएव उर्वरा भूमि को नमस्कार किया गया है ।[२]

२. उत्तम बीज : भूमि के पश्चात् बीज का महत्त्व है । बीज उत्तम होगा तो कृषि भी अच्छी होगी । अतएव यजुर्वेद में कहा गया है कि भूमि को ठीक ढंग से परिष्कृत करके बीज बोना चाहिए ।[३] ऋग्वेद का कथन है कि किसान शुद्ध भूमि में बीज बोते हैं ।[४]

३. धूप : कृषि के लिए धूप आदि अनिवार्य है । यदि पेड़ों को घूप नहीं मिलेगी तो वे नहीं बढ़ेंगे । सूर्य कि किरणों से ही पेड़ों में ऊर्जा आती है और उन्हें ग्लुकोस के रूप में भोजन मिलता है । यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य की किरणें बीजों की उत्पत्ति और उनकी वृद्धि में कारण हैं ।[५] इसी भाव को अन्य मंत्र में स्पष्ट किया है कि सभी अग्नियों का सहयोग कृषि को प्राप्त हो ।[६] अर्थात् एक ओर सूर्य की किरणों से ऊर्जा प्राप्त हो, दूसरी ओर भूमि के अन्दर विद्यमान ऊष्मा (ताप) का सहयोग मिले । सूर्य की किरणें न केवल ऊर्जा देती हैं, अपितु कृषि के लिए अनिवार्य वृष्टि का भी कारण हैं ।[७]

४. वायु : कृषि के लिए वायु की भी अत्यन्त आवश्यकता है । वायु, विशेष रूप से कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) की आवश्यकता होती है । वायु (CO_2), सूर्य की किरणें, जल और वृक्ष का हरिततत्त्व (अवितत्त्व या Chlorophyll) इन चारों केसंश्लेषण से Photosynthesis (प्रकाश-संश्लेषण) क्रिया होती है । इससे सभी वृक्ष-वनस्पतियों को एक ओर ग्लुकोस मिलता है और दूसरी ओर Oxygen

१. यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति । अ० १०.६.३३
२. नम उर्वर्याय । यजु० १६.३३
३. कृते योनौ वपतेह बीजम् । यजु० १२.६८
४. वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः । ऋग्० १०.९४.१३
५. तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् । यजु० १८.३०
६. विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः । यजु० १८.३१
७. सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये । यजु० ३८.६

(आक्सीजन, प्राणवायु) मिलती है। यजुर्वेद में कृषि हेतु आवश्यक जल और वायु का एक साथ उल्लेख है। मंत्र में समुद्र और वायु तथा जल और वायु का उल्लेख है। इस मंत्र में ६ बार 'वाताय' (वायु) का उल्लेख है।[८]

यजुर्वेद में कृषि के लिए उपयोगी वर्षा (इन्द्र) और मरुत् (वायु) का एक साथ उल्लेख है।[९] एक अन्य मंत्र में सभी प्रकार की वायुओं (मरुत्) के सहयोग की प्रार्थना की गई है।[१०] इसमें प्राणवायु (Oxygen) के साथ अपान वायु (CO_2) का भी संकेत है।

अथर्ववेद के एक मंत्र में स्पष्ट रूप से अवितत्त्व (रक्षकतत्त्व,Chlorophyll) का उल्लेख है और इसके विषय में कहा गया है कि इसके कारण ही वृक्षों और वनस्पतियों में हरियाली है।[११]

५. जल और वर्षा : कृषि के लिए यथासमय वर्षा का होना अत्यावश्यक है। साथ ही सिंचाई के लिए अन्य साधनों - कुआँ, तालाब आदि से जल की सुविधा आवश्यक है। अतएव यजुर्वेद में राष्ट्रीय प्रार्थना 'आ ब्रह्मन्' में यथासमय वर्षा की प्रार्थना की गई है।[१२] अथर्ववेद में भूमि को 'पर्जन्यपत्नी' और 'वर्षमेदस्' कहा है।[१३] इसका अभिप्राय यह है कि मेघ और वृष्टि पृथ्वी के पालक हैं। वर्षा से पृथ्वी को जीवनी शक्ति मिलती है। भूमि कृषि के योग्य हो जाती है। 'वर्षमेदस्' का अभिप्राय है कि वर्षा से पृथ्वी की शक्ति बढ़ती है और वह अनुप्राणित होती है।

यजुर्वेद में कृषि के साथ ही वृष्टि का उल्लेख किया गया है।[१४] इसका अभिप्राय यह है कि कृषि और वृष्टि परस्पर सापेक्ष हैं। बिना वर्षा के कृषि सफल नहीं हो सकती है। उत्तम कृषि और उपज के लिए यजुर्वेद में जल और ओषधियों के उपयोग का निर्देश है।[१५]

---

८. समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा। सरिराय त्वा वाताय स्वाहा। यजु० ३८.७

९. इन्द्रश्च मे मरुतश्च मे। यजु० १८.१७

१०. विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती। यजु० १८.३१

११. अविर्वै नाम देवता ऋतेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥ अ० १०.८.३१

१२. निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। यजु० २२.२२

१३. भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे। अ० १२.१.४२

१४. कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे। यजु० १८.९

१५. सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः,सं मा सृजामि - अद्भिरोषधीभिः। यजु० १८.३५

६. खाद : वेदों में कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद के उपयोग का उल्लेख है । खाद के लिए करीष, शकन् और शकृत् (गोबर) शब्दों का प्रयोग है ।[१६] यह खाद प्राय: गाय या बैल के गोबर की खाद होती थी । अथर्ववेद में खाद को फलवती कहा है ।[१७] इससे स्पष्ट है कि खाद की उपयोगिता को ठीक समझा गया था । अत्युत्तम खेती के लिए घी, दूध, शहद और ओषधियों के रस के मिश्रण से बनी खाद डालने का विधान है ।[१८] घी, दूध और शहद आदि के मिश्रण से बनी खाद डालने से उत्तम कृषि होने के कुछ उदाहरण श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने अपने अथर्ववेद भाष्य में प्रस्तुत किए हैं ।[१९]

कौटिल्य ने छोटी मछलियों और स्नुही (सेंहुड़) के दूध आदि का खाद के रूप में उपयोग बताया है । कौटिल्य ने ईख के पोरों की कटी जगह पर शहद, घी या सूअर की चर्बी लगाने का विधान किया है । इसी प्रकार कन्दफलों, कपास, कटहल, आम आदि के लिए अलग-अलग खाद उपयोगी बताई है । इनके बीजों को गोबर, घी, शहद, एवं हड्डी के चूरे के साथ मिलाकर बोना उपयोगी बताया है ।[२०] इससे ज्ञात होता है कि कौटिल्य के समय में गोबर, हड्डी के चूरे आदि का खाद के रूप में प्रयोग होता था ।

शतपथ ब्राह्मण में गोमय शब्द का प्रयोग गोबर के अर्थ में हुआ है ।[२१] वहाँ गोमय का प्रयोग गोबर से भूमि को लीपने के लिए है ।

७. सुरक्षा एवं कृमिनाशन : उत्तम भूमि और अच्छे बीज आदि के होने पर भी यदि खेत की सुरक्षा नहीं की जाएगी तो कृषि-उत्पाद ठीक नहीं हो सकेगा, अत: सुरक्षा अत्यावश्यक है । सुरक्षा से ही उत्तम कृषि हो सकेगी । यजुर्वेद में अतएव कहा गया है कि हमारी कृषि उत्तम फल से युक्त हो ।[२२] यजुर्वेद में अन्यत्र एक मंत्र में चार शब्दों से कृषि की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है - सू, प्रसू, सीर

---

१६. गोष्ठे करीषिणी: अ० ३.१४.३ । शकमयं धूमम् , ऋग्०१.१६४.४३ । शकधूम, अ० ६.१२८.३ । शकृत् , ऋग्० १.१६१.१०
१७. करीषिणीं फलवतीं स्वधाम्०, अथर्व० १९.३१.३
१८. घृतेन सीता मधुना समज्यताम् ।...... पयसा पिन्वमाना । यजु० १२.७० सं वपामि समाप ओषधीभि: समोषधयो रसेन । यजु० १.२१
१९. सातवलेकर, अथर्ववेदभाष्य, कांड ३, पृष्ठ १२८
२०. आशुष्ककटुमत्स्यान् च स्नुहिक्षीरेण पाययेत् । कौटि० अर्थ० पृष्ठ २४२
२१. गोमयेनालिप्य । शत० १२.४.४.१
२२. फलवत्यो न ओषधय: पच्यन्ताम् । यजु० २२.२२

और लय ।[२३] सू का अर्थ है - उत्पादन की क्षमता वाला अर्थात् उत्तम बीज । प्रसू का अर्थ है - प्रसव, उत्पादन और फलयुक्त धान्य अर्थात् उत्तम उत्पादन । सीर का अर्थ है - हल अर्थात् हल के प्रयोग से उत्पन्न धान्य । लय का अर्थ है - कृषि-नाशक तत्त्वों को नष्ट करना । इस प्रकार कृषि के लिए आवश्यक हैं - उत्तम बीज, उत्तम उत्पाद, सफल कृषि और कृमि-कीट आदि का नाशन ।

कृषिनाशक तत्त्व (ईति) : कृषि को हानि पहुँचाने वाले तत्त्वों को 'ईति' कहते हैं । अथर्ववेद के एक सूक्त तीन मंत्रों में कृषि-नाशक तत्त्वों का उल्लेख है और इन्हें सर्वथा नष्ट करने का विधान है । मंत्र का कथन है कि तर्द (कृषि के नाशक कीट पतंगों) को नष्ट करो । बिल में रहने वाले चूहों को नष्ट करो । इनका सिर और इनकी पीठ तोड़ दो । इनका मुँह बाँध दो, जिससे ये जौ को न खा सकें । इस प्रकार धान्य की रक्षा करो ।[२४] अन्य दो मंत्रों में पतंग और वघापति शब्दों से कीड़ों और टिड्डियों को नष्ट करने का विधान है । जिससे ये जौ आदि की खेती को हानि न पहुँचा सकें । 'व्यद्वर' शब्द से विशेष हानि पहुँचाने वाले कीट आदि का उल्लेख है । इनके लिए कहा गया है कि - 'सर्वान् जम्भयामसि' इन सबको पूर्णतया नष्ट करते हैं ।[२५] इस प्रकार इन मंत्रों में तर्द, आखु, पतंग, जभ्य, उपक्वस, तर्दापति, वघापति आदि शब्दों से चूहा, कीट-पतंगे और टिड्डी आदि सभी कीटनाशक तत्त्वों को नष्ट करने की शिक्षा दी गयी है ।

इनके अतिरिक्त अतिवृष्टि और अनावृष्टि को भी खेती के लिए हानिकारक होने का संकेत किया गया है । मंत्र में कहा गया है कि बिजली खेत पर न गिरे और सूर्य की तीव्र किरणें खेती को नष्ट न करें ।[२६] अतिवृष्टि के साथ बिजली भी गिरती है तथा वर्षा के अभाव में सूर्य की तीव्र किरणें खेती को नष्ट करती हैं । एक अन्य मंत्र में अवृष्टि को दूर करने के लिए वर्षा की प्रार्थना की गई है ।[२७] तीव्र धूप और हिमपात (पाला पड़ना) को भी खेती के लिए हानिकारक बताया गया है ।[२८]

---

२३. सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे । यजु० १८.७

२४. हतं तर्दं समङ्कमाखुम् अश्विना छिन्तं शिर: ० ।
अथाभयं कृणुतं धान्याय । अ० ६.५०.१

२५. तर्द है पतंग है जभ्य हा उपक्वस । अ० ६.५०.२
तर्दापते वघापते .... सर्वान् जम्भयामसि । अ० ६.५०.३

२६. मा नो वधीर्विद्युता० । अ० ७.११.१

२७. अ० ७.१८.१

२८. अ० ७. १८.२

छान्दोग्य उपनिषद् में उल्लेख है कि एक बार टिड्डियों (मटची) ने पूरे कुरु जनपद की खेती नष्ट कर दी थी और वहाँ अकाल पड़ गया था ।[२९] टिड्डियों की गणना कृषिनाशक तत्त्वों में है ।

कृषि के साधन : वेदों में कृषि के साधनों का वर्णन मिलता है । ये हैं - **१. हल :** हल के लिए लांगल और सीर शब्द हैं ।[३०] **२. सीता, फाल :** हल के नुकीले भाग के लिए सीता और फाल शब्द हैं ।[३१] **३. ईषा, युग, वरत्रा :** हल में जो लंबी लकड़ी (हलस) लगी रहती है, उसके लिए ईषा शब्द है । इसके निचले भाग में लोहे की फाल होती है । इसके ऊपर जूआ (युग) रखा जाता है । हलस और जूए को रस्सी (वरत्रा) से बाँधा जाता है ।[३२] **४. अष्ट्रा :** किसान जिस चाबुक या छड़ी से बैलों को हाँकता है, उसके लिए अष्ट्रा शब्द है ।[३३] **५. बैल :** बैल के लिए 'वाह' शब्द है ।[३४] अथर्ववेद और काठक संहिता में ६,८ और १२ जूओं वाले बड़े हलों के वर्णन हैं । एक जूए में २ बैल लगते हैं । इस प्रकार १२,१६ और २४ बैल वाले बड़े हल भी काम में आते थे ।[३५]

सिंचाई के साधन : ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और तैत्तिरीय संहिता में सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विवरण मिलता है । (क) वर्षा के जल से सिंचाई,[३६] (ख) नहरों से सिंचाई,[३७] (ग) नदियों के जल से सिंचाई,[३८] (घ) तालाबों के जल से सिंचाई,[३९] (ङ) कुएँ आदि से सिंचाई ।[४०]

ऋग्वेद में सिंचाई के काम आने वाले चार प्रकार के जल का वर्णन है : **(क) दिव्याः** - वर्षा का जल, **(ख) खनित्रिमाः** - कुओं आदि का जल, **(ग) स्वयंजाः** - स्रोत आदि का जल, **(घ) समुद्रार्थाः** - समुद्र में मिलने वाली नदियों का जल ।[४१]

यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में सिंचाई के इन साधनों का उल्लेख है : कुआँ, नहर, तालाब, नदी, जलाशय और स्रोतों का जल ।[४२]

---

२९. मटचीहतेषु कुरुषु० । छा०उप०१.१०.१
३०. अथर्व० ३.१७.१ और ३
३१. अ० ३.१७.५. और ८
३२. अ० २.८.४ , ३.१७.६
३३. अ० ३.१७.६
३४. अ० ३.१७.६
३५. अ० ६.९१.१, काठक० १५.२
३६. अ० ४.१५.१ से १० ; २०.१७.७
३७. अ०२०.१७.७
३८. अ० १.४.३
३९. अ० १.६.४
४०. अ० १.६.४
४१. ऋग्० ७.४९.२
४२. यजु० २२.२५ ; तैत्ति० सं० ४.५.७.१ और २

अन्न के दो प्रकार : यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में अन्न दो प्रकार का बताया जाता है : - **१. कृष्टपच्य** - जो कृषि से उत्पन्न होता है । जैसे - गेहूँ, धान आदि । **२. अकृष्टपच्य** - जो बिना कृषि के उत्पन्न होता है । जैसे - जंगली धान्य आदि ।[४३] अन्न के और भेद दिये गए हैं : - **१. वर्ष्य** - वर्षा से उत्पन्न होने वाले । **२. अवर्ष्य** - जो कुएँ, नहर आदि की सिंचाई से होते हैं ।[४४]

सस्य या फसलें : तैत्तिरीय संहिता में अन्नों के कटने के हिसाब से चार फसलों का उल्लेख है ।[४५] १. ग्रीष्म में कटने वाली । इसमें जौ, गेंहू मुख्य हैं । २. वर्षा में कटने वाली । ३. शरद् में कटने वाली । इसमें धान मुख्य है । ४. हेमन्त और शिशिर में कटने वाली । इनमें माष (उड़द) और तिल (तिलहन) मुख्य हैं । आजकल ग्रीष्म में कटने वाली फसल 'रबी' और शरद् में कटने वाली फसल को 'खरीफ' कहते हैं । तैत्तिरीय संहिता में एक अन्य स्थान पर मुख्य दो फसलों का उल्लेख है ।[४६] इन्हें रबी और खरीफ की फसल समझना चाहिए ।

उर्वरक (Fertilizer) का प्रयोग : ऋग्वेद के एक मंत्र में उर्वरक के द्वारा कृषि की उपज में वृद्धि का उल्लेख है ।[४७] मंत्र का कथन है कि उर्वरक उत्कृष्ट उपज दें । उर्वरक के लिए 'क्षेत्रसाधस्' शब्द है । इसका अर्थ है - क्षेत्र की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने वाला ।

अन्नों के नाम : यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में बारह अनाजों के नाम प्राप्त होते हैं ।[४८] ये हैं - १. व्रीहि (धान), २. यव (जौ), ३. माष (उड़द), ४. तिल (तिल), ५. मुद्ग (मूँग), ६. खल्व (चना), ७. प्रियंगु (कंगुनी), ८. अणु (पतला या छोटा चावल), ९. श्यामाक (साँवा), १०. नीवार (कोदों या तिन्नी धान), ११. गोधूम (गेहूँ), १२. मसूर (मसूर) । तैत्तिरीय संहिता में कुछ अन्य अनाजों के भी नाम मिलते हैं ।[४९] ये हैं :- १. कृष्ण व्रीहि - काला धान । यह संभवत: बगरी धान है । इसका छिलका काला होता है, परन्तु चावल लाल होता है । २. आशु व्रीहि - जल्दी पकने वाला धान । यह संभवत: साठी धान है । पाणिनि ने इसको षष्टिका (६० दिन

---

४३. यजु० १८.१४ ; तैत्ति० सं० ४.७.५

४४. यजु० १६.३८

४५. यवं ग्रीष्माय, व्रीहीन् शरदे० । तैत्ति० ७.२.१०.२

४६. द्विः संवत्सरस्य सस्यं पच्यते । तैत्ति० ५.१.७.२

४७. ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः । ऋग्० ३.८.७

४८. व्रीहयश्च मे यवाश्च मे । यजु० १८.१२ ; तैत्ति० ४.७.४.२

४९. कृष्णानां व्रीहीणाम्० । तैत्ति० १.८.१०.१

में पकने वाला) कहा है ।[५०] ३. महाव्रीहि - यह बड़े दाने वाला चावल है । यह बासमती चावल कहा जा सकता है । ४. गवीधुक - यह जंगली गेहूँ है । शतपथ ब्राह्मण में इसे गवेधुक कहा गया है ।[५१] इसको हिन्दी में गड़हेरुआ या गोभी कहते हैं । बृहदारण्यक उपनिषद् में दस प्रकार के ग्राम्य धान्यों का वर्णन है ।[५२] ये हैं - व्रीहि, यव, तिल, माष, अणु, प्रियंगु, गोधूम (गेहूँ), मसूर, खल्व (चना), खलकुल (कुलत्थ, कुलथी) ।

अन्नों को अन्न, दाल, तिलहन इन भागों में बाँटा जाता है । इन तीनों के प्रतीक हमें यजुर्वेद की सूची में मिलते हैं । १. अन्न - चावल, गेहूँ और जौ । २. दाल - मूँग, उड़द और मसूर । ३. तिलहन - तिल ।

पशुपालन-विज्ञान (Animal Husbandry)

ऋग्वेद और अथर्ववेद में पशु-पालन और पशु-संवर्धन पर विशेष बल दिया गया है । अथर्ववेद में दो सूक्त पशु-संवर्धन और गोशाला से ही संबद्ध हैं ।[१]

ऋग्वेद का कथन है कि पशु-संवर्धन के लिए व्रज (गोशाला) बनावो ।[२] इनमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे गाय अश्व आदि पशु इनमें पूरी सुविधा के साथ रह सकें ।[३] व्रज मनुष्यों की दुग्ध आदि की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं । अतः उन्हें 'नृपाणः' (दुग्धादि का दाता) कहा गया है ।[४] प्राचीन काल में व्रज दुग्धादि की पूर्ति के साधन थे । अतः वे एक प्रकार से Dairy Farm का काम करते थे ।

व्रज गोशाला के रूप में होते थे, अतः उन्हें ग्रोष्ठ कहते थे ।[५] यजुर्वेद में गोशाला के लिए गोष्ठान शब्द भी आया है ।[६] यह घिरे हुए बाड़े के रूप में होता था, अतः इसे व्रज (बाड़ा) कहते थे । व्रज पशुशाला होते थे । इनमें बैल, अश्व आदि पशु भी बाँधे जाते थे ।[७]

---

५०. अष्टाध्यायी ५.१.९०
५१. शत० ब्रा० ९.१.१.८
५२. दश ग्राम्याणि धान्यानि० । बृह० उप० ६.३.१३

•

१. अथर्व० २.२६ और ३.१४ २. व्रजं न पशुवर्धनाय । ऋग्० ९.९४.१
३. शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत । ऋग्० ८.३०.४
४. व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः । ऋग्० १०.१०१.४
५. गोष्ठः , अ० ३.१४.५ ६. यजु० १.२५
७. अ० ७.५३.५

अथर्ववेद में गोशाला के विषय में मुख्य रूप से ये बातें कही गई हैं : १. इनमें गायों आदि के बैठने के लिए सुन्दर स्थान हो । अन्न-जल (दाना-पानी) की व्यवस्था हो । प्रकाश की व्यवस्था हो तथा दिन में जो सुविधाएँ प्राप्त हैं, वे रात्रि में भी हों ।[८] २. वे इकट्ठे होकर चारागाह में घूम सकें । उन्हें किसी प्रकार का भय न हो । उन्हें कोई रोग न होने पावे । वे मधुर दूध दें ।[९] ३. गोशाला में नई गायें भी आती रहें । गोशाला में सभी पशु हृष्ट-पुष्ट हों । वे बच्चों को जन्म दें । गोशाला उनके लिए सुखद हो ।[१०] ४. गोशाला में उनके पालन-पोषण की पूर्ण सुविधा हो , जिससे उनकी निरन्तर वृद्धि हो । वे नीरोग रहते हुए दीर्घायु हों और उन्हें रायस्पोष (पोषण, संवर्धन) प्राप्त हो ।[११]

पशु-संवर्धन : कुछ अन्य मंत्रों में पशुपालन के विषय में कहा गया है कि - १. पशुओं के लिए चारे की सुन्दर व्यवस्था हो, जिससे वे हृष्ट-पुष्ट हो सकें । वे घास खावें और शुद्ध जल पीवें । घूमने के लिए बाहर जावें और गोधन से श्रीवृद्धि हो ।[१२] २. गायों के सुन्दर बछड़े हों । हौज में शुद्ध जल पीवें । उन्हें चोरों का कोई भय न हो । वे घी से घर को भर दें ।[१३] ३. पशुओं को शुद्ध वायु मिले । वे अधिक संख्या में गोशाला में आवें । सूर्य का प्रकाश उनको शक्ति दे ।[१४] ४. पशु इकट्ठे होकर चलें, घूमें और रहें । इनके कारण धन-धान्य की वृद्धि हो ।[१५] ५. पशु-संरक्षण के द्वारा दूध और घी प्राप्त हो । पशुधन की वृद्धि हो ।[१६] ६. जहाँ गाय आदि पशुओं का संरक्षण होता है, वहाँ धन-धान्य एवं श्री की वृद्धि होती है ।[१७] ७. जहाँ गाय का संरक्षण होता है, वहाँ सौभाग्य की वृद्धि होती है ।[१८]

---

८. अ० ३.१४.१
९. अ० ३.१४.३
१०. अ० ३.१४.४
११. अ० ३.१४.६
१२. अथर्व० ७.७३.११
१३. अ० ७.७५. १ और २
१४. अ० २.२६.१
१५. अ० २.२६.३
१६. अ० २.२६.४
१७. अ० ४.२१.१
१८. अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय । अ० ७.७३.८

गोमहिमा : वेदों में गाय का बहुत महत्त्व बताया गया है । गाय को विराट् ब्रह्म का रूप माना गया है । इसमें सभी देवों का निवास बताया गया है ।[१९] 'गावो भग:' कहकर गाय को सौभाग्य का रूप बताया गया है ।[२०] गाय दूध, घी एवं मधुर पदार्थों को देती है ।[२१] गाय का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि ये कृश को हृष्ट-पुष्ट और निस्तेज को तेजस्वी बना देती हैं, अत: सभाओं में भी इनका गुणगान होता है ।[२२] गाय के लिए कहा गया है कि इनमें वर्चस् (कान्ति), तेज, भग (ऐश्वर्य), यश, दूध और सरसता का निवास है ।[२३] घर में गाय का होना सौभाग्य का प्रतीक बताया गया है ।[२४]

पशुहत्या का निषेध : वेदों के अनेक मंत्रों में पशुहत्या और विशेष रूप से गोहत्या का कड़े शब्दों में निषेध किया गया है तथा इसे दंडनीय अपराध बताया गया है । गाय को अघ्न्या अर्थात् अवध्य कहा गया है ।[२५] गाय को विराट् ब्रह्म का प्रतीक बताते हुए उसकी हत्या का निषेध किया गया है ।[२६] गाय घी-दूध आदि का साधन है, अत: उसे न मारो ।[२७] गोहत्या करने वाले को समाज से बहिष्कृत करने का विधान है ।[२८] गायों और घोड़ों को हानि न पहुँचाओ ।[२९] अथर्ववेद में कहा गया है कि द्विपाद् (दो पैर वाले) और चतुष्पाद् (चार पैर वाले) पशुओं की हत्या न करो ।[३०] गाय, घोड़े और मनुष्य की हत्या न करो । निरपराध की हत्या करना दंडनीय अपराध है ।[३१] यजुर्वेद में पशुओं का नाम लेते हुए कहा गया है कि - गाय, नील गाय, ऊँट, भेड़, शरभ (आठ पैर वाला विशाल पशु), गौर (भैंसा), दो पैर वाले और चार पैर वाले पशुओं की हत्या न करो ।[३२] एक मंत्र में घोड़े की हत्या को दंडनीय अपराध बताया गया है ।[३३]

---

१९. अथर्व० ९.७.१ से २६
२०. अ० ४.२१.५
२१. अ० १०.९.१२
२२. अ० ४.२१.६
२३. अ० १४.२.५३ से ५८
२४. अ० ४.२१.१
२५. अघ्न्या, अ० ७.७३.८
२६. यजु० १३.४३
२७. यजु० १३.४९
२८. आरे ते गोघ्नम्, ऋग्० १.११४.१०
२९. ऋग्० १.११४.८
३०. अथर्व० ११.२.१
३१. अनागोहत्या भीमा, अ० १०.१.२९
३२. यजु० १३.४७ से ५१
३३. यजु० २२.५

पशुसंपदा की उपयोगिता : पशुसंपदा के अनेक लाभों का उल्लेख वेदों में है। कुछ विशेष उपयोग ये हैं : - १. दूध, घी, दही, मक्खन आदि की प्राप्ति। २. बैलों आदि का कृषि में उपयोग। ३. भारवाहक पशु के रूप में गर्दभ, बैल, ऊँट आदि का उपयोग। ४. अश्वों के द्वारा रथ-संचालन और युद्ध में जाना। ५. भेड़ आदि के ऊन से ऊनी वस्त्रों का निर्माण।[३४] ६. मृत पशुओं की खाल से चर्म उद्योग। जूते, मशक (दृति), वर्म (कवच) आदि का निर्माण।[३५] ७. पशुओं के गोबर (करीष) का खाद के रूप में उपयोग।[३६] ८. हाथी के दाँत का कलाकृतियों में उपयोग।[३७] ९. घोड़े, हाथी, ऊँट आदि का सवारी के लिए उपयोग।[३८]

कौटिल्य और पशुपालन : कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पशुपालन-विषयक कुछ उपयोगी बातें दी हैं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं : -

१. गाय, घोड़े, हाथी आदि पशुओं के पालन और संरक्षण के लिए इनके विभिन्न अध्यक्ष होते थे। गाय, भैंस आदि पालतू पशुओं की देखरेख करने वाले अधिकारी को गोऽध्यक्ष कहते थे। इसी प्रकार अश्वविभागाध्यक्ष को अश्वाध्यक्ष और हस्तिविभागाध्यक्ष को हस्त्यध्यक्ष कहते थे। (कौ० अर्थ० पृष्ठ २६६, गैरोला-संस्करण)

२. सौ-सौ गायों का एक यूथ (झुंड) होता था। प्रत्येक पर ये पाँच सेवक होते थे : - (क) गोपालक (गायों का रक्षक), (ख) पिंडारक (भैंसों का पालक), (ग) दोहक (दूध दुहने वाला), (घ) मन्थक (दही मथने वाला), (ङ) लुब्धक (जंगली पशुओं से रक्षा करने वाला शिकारी)। (पृष्ठ २६६)

३. मास या दो मास के बछड़े या बछिया को लोहे से दाग दें और उन पर अंक डाल दें। जिससे उन्हें पहचाना जा सके। इनके नंबर रजिस्टर में नोट करें। (पृष्ठ २६८)

४. गोहत्या पर मृत्युदंड : गाय को स्वयं मारने वाले या मरवाने वाले तथा हरण करने या करवाने वाले को मृत्युदंड दें। (स्वयं हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च वध्यः, पृष्ठ २६९)।

---

३४. इमम् ऊर्णायुम्, यजु० १३.५०

३५. त्वचं पशूनाम्, यजु० १३.५०

३६. करीषिणीः , अ० ३.१४.३

३७. हस्तिवर्चसम्, अ० ३.२२.१

३८. अश्वसादम् यजु० ३०.१३

५. गोपालकों का कर्तव्य है कि वह छोटे बछड़े, वृद्ध और बीमार गायों की पूरी देखरेख करें। (पृष्ठ २६९)

६. **पशुओं का भोजन :** कौटिल्य ने पशुओं के भोजन का विस्तृत वर्णन दिया है। आयु और श्रम आदि के अनुसार उनको कम या अधिक भोजन दिया जाय। पशुओं को चारे के साथ नमक देना आवश्यक बताया गया है। उनके भोजन में ये चीजें संमिलित हैं : - यवस (हरी घास), तृण (भूसा), पिण्याक (खली), कुट्टी (चारा), नमक, नस्य (नाक में डालने का तेल), पीने के लिए तेल, दही, पुलाव, दूध, गुड़ या राब, सोंठ। (पृष्ठ २७२)

७. सभी पशुओं को पेटभर तृण (चारा) और उदक (पानी) मिलना चाहिए। (पृष्ठ २७२)

८. **दूध और घी का संबन्ध :** गाय के एक सेर दूध में एक छटाँक घी निकालना चाहिए, भैंस के एक सेर दूध में सवा छटाँक। (पृष्ठ २७१)

अध्याय-७

गणितशास्त्र (Mathematics)

गणित का महत्त्व

गणित समस्त विज्ञान का मूल है । गणित ही सृष्टि-रचना के मूल में है । संसार की प्रत्येक वस्तु किसी नियम से बद्ध है, उसमें कोई क्रम है । उस नियम और क्रम का ज्ञान गणित का विषय है । सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में गति है । गति का संबन्ध गणना से है । यह गणना गणित का विषय है । सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह एवं पृथिवी की गति के ज्ञान से ही सूर्योदय, सूर्यास्त, सूर्य-ग्रहण, चन्द्रग्रहण, भू-परिक्रमा आदि का ज्ञान होता है । पूरा ज्योतिष-शास्त्र गणित पर निर्भर है । स्थान और समय का निर्धारण गणित के आधार पर ही होता है । गति की निरन्तरता का नाम समय (Time) है और गति का चतुर्दिक् प्रसार ही स्थान (Space) है । इनके ज्ञान के लिए गणित की आवश्यकता होती है । गणित के द्वारा गति का आकलन किया जाता है, अत: गणित विज्ञान की आधारशिला है ।

वेदांग-ज्योतिष में गणितशास्त्र का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार मयूरों की शिखाएँ और नागों (सर्पों) की मणियाँ सर्वोच्च स्थान पर रहती हैं, उसी प्रकार सारे वेदांगों में गणित का स्थान सर्वोपरि है ।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् । वेदांगज़्योतिष (याजुष) ४

प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ महावीराचार्य (लगभग ८५० ई०) ने अपने ग्रन्थ 'गणितसारसंग्रह' (अध्याय १, श्लोक ९-१९) में कहा है कि अधिक गुणगान से क्या लाभ । इस चराचर जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके मूल में गणित न हो । गणित ज्ञान और विज्ञान की सभी शाखाओं का आधार है ।

बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यत् किंचिद् वस्तु तत् सर्वं गणितेन विना न हि ।।

वेदों में छन्द-रचना के मूल में गणित है । इसी आधार पर गायत्री (८.८ । ८ = २४ वर्ण), अनुष्टुप् (८,८ । ८.८ = ३२ वर्ण), त्रिष्टुप् (११, ११ ११, ११ = ४४ वर्ण), जगती (१२,१२ । १२,१२ = ४८ वर्ण) आदि विभिन्न छन्दों की विशेषताओं की सृष्टि हुई है ।

गणितशास्त्र का उद्भव

वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें गणितशास्त्र से संबद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। उनमें एक संख्या से लेकर परार्ध संख्या तक का उल्लेख है। उनमें १० संख्या का महत्त्व, उसके गुणन, स्थानमान तथा भाग आदि का वर्णन है। इनका वर्णन आगे किया जाएगा।

वेदों में गणित शब्द का उल्लेख नहीं है। कुछ अन्य शब्द मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि गणना की विधि ज्ञात थी। यजुर्वेद (३०.२०) और तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.४.१५) में गणक (गणना करने वाला, ज्योतिषी) शब्द मिलता है। गणनासूचक गण, गणपति, गणश्रि, गणिन्, गण्य आदि शब्द ऋग्वेद और यजुर्वेद में अनेक मंत्रों में आये हैं।[१] ऋग्वेद में 'व्रातंव्रातम्, गणंगणम्' शब्द गणना के आधार पर किए गए समूहों या वर्गों के लिए हैं।[२] इसी प्रकार यजुर्वेद और अथर्ववेद में निधि, निधिपति, निधिपा शब्द कोष और कोषागार के अध्यक्ष के लिए हैं।[३] ये कोष की गणना करते थे। यजुर्वेद में वित्तध शब्द भी कोषागार के अध्यक्ष के लिए आया है।[४] यजुर्वेद में ज्योतिषी के लिए 'नक्षत्रदर्श' शब्द है और गणित-विद्या जानने के कारण उसके ज्ञान की प्रशंसा की गयी है।[५]

छान्दोग्य उपनिषद् में सर्वप्रथम गणितशास्त्र का 'राशिविद्या' और ज्योतिष का 'नक्षत्रविद्या' नाम से उल्लेख है।[६] सनत्कुमार के पूछने पर नारद ने बताया कि मैंने ये विद्याएँ पढ़ी हैं। उन विद्याओं में नारद ने चारों वेद, इतिहास, पुराण, ब्रह्मविद्या आदि के साथ राशिविद्या और नक्षत्रविद्या का भी उल्लेख किया है। राशिविद्या शब्द अंकगणित के लिए है और नक्षत्रविद्या ज्योतिष के लिए है। उक्त कथन से ज्ञात होता है कि अध्यात्म या पराविद्या के जिज्ञासु के लिए गणित और ज्योतिष का भी ज्ञान अपेक्षित है।

---

१. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। ऋग्० २.२३.१, यजु० २३.१९, तैत्ति० सं० २.३.१४.३
गण्या, ऋग्० ३.७.५। गणश्रिभिः। ऋग्० ५.६०.८

२. व्रातंव्रातं गणंगणम्। ऋग्० ३.२६.६। ५.५३.११

३. निधीनां त्वा निधिपतिम्। यजु० २३.१९। अथर्व० ७.१८.४।
निधिपा, अथर्व० १२.३.३४

४. वित्तधम्, यजु० ३०.११

५. प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्। यजु० ३०.१०

६. स होवाच - ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि .... राशिं दैवं निधिं .... नक्षत्रविद्याम् ..... अध्येमि। छान्दोग्य उप० ७.१.२

जैनियों ने भी अपने अनुयायियों के लिए गणित के ज्ञान पर बल दिया है । अत: गणितानुयोग और संख्यान को महत्त्व दिया गया है ।[७] बौद्धों ने भी गणना और संख्यान को प्रमुखता दी है ।[८] गौतम बुद्ध ने बचपन में गणित की शिक्षा प्राप्त की थी । कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने भी लिखा है कि शिक्षा का प्रारम्भ लिपि (वर्णमाला) और संख्यान (गणित) से होना चाहिए ।[९] हाथीगुम्फा के एक शिलालेख (१६३ वर्ष ईसापूर्व) में लेखा (लेखन और पठन), रूप (रेखागणित) और गणना (गणित) का उल्लेख है । वेदांगों में ज्योतिष एवं गणित के महत्त्व का वर्णन ऊपर दिया जा चुका है ।

प्राचीन बौद्ध साहित्य में तीन प्रकार के गणित का उल्लेख मिलता है : १. मुद्रा (अंगुलियों पर गिनना), २. गणना (सामान्य गणित, मौखिक गणना), ३. संख्यान (उच्च गणित) । दीर्घनिकाय,[१०] विनयपिटक[११], दिव्यावदान[१२], और मिलिन्दपञ्हो[१३] ग्रन्थों में इन तीनों का उल्लेख मिलता है । गणित के अर्थ में 'संख्यान' शब्द का प्रयोग अनेक ग्रन्थों में मिलता है ।[१४] प्राचीन गणित में ज्योतिष भी संमिलित था । क्षेत्रगणित या ज्यामिति (Geometry) का विवरण वेदांग के रूप में प्रचलित 'कल्पसूत्र' और शुल्बसूत्रों' में मिलता है । बाद में ज्योतिष स्वतंत्र विषय हो गया और क्षेत्रगणित या ज्यामिति गणित का अंग ओ गया । आगे चलकर अज्ञात राशि से संबन्ध रखने वाला बीजगणित (Algebra) कहलाया । यह पृथक्करण सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ने किया । उन्होंने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त ग्रन्थ में बीजगणित से संबद्ध अध्याय को 'कुट्टकाध्याय' कहा है । श्रीधर आचार्य ने पाटीगणित और बीजगणित को पृथक् माना है और उन पर पृथक्-पृथक् ग्रन्थों की रचना की है ।

अंकगणित या पाटीगणित : गणित के सामान्य प्रश्न पाटी (तख्ती, पट्ट या फलक) पर या मिट्टी में अंक लिखकर किए जाते थे, अत: अंकगणित का नाम 'पाटीगणित' या 'धूलिकर्म' पड़ गया । अंकगणित में संख्याएँ व्यक्त होती हैं, अत: उसे 'व्यक्तगणित' और संख्याएँ अव्यक्त होने के कारण बीजगणित को 'अव्यक्तगणित' भी कहा जाता है ।

---

७. भगवतीसूत्र, सूत्र ९० । उत्तराध्ययन सूत्र ३५.७,८,३८
८. विनयपिटक खंड ४, पृष्ठ ७ । मज्झिमनिकाय खंड १, पृष्ठ ८५
९. वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुंज़ीत । कौटि० अर्थ० १.४.४
१०. दीर्घानिकाय १ पृष्ठ ५१ — ११. विनय० ४ पृष्ठ ७
१२. दिव्यावदान पृष्ठ ३,२६ और ८८ — १३. मिलिन्द० पृष्ठ ९१
१४. भद्रबाहुकृत कल्पसूत्र, भगवतीसूत्र पृ० ११२, अर्थशास्त्र १.५.२

अंकगणित के विषय : गणित के विभिन्न कार्यों के लिए सामान्य रूप से 'परिकर्म' (Fundamental operations) शब्द का प्रयोग होता था । ब्रह्मगुप्त ने 'ब्राह्मस्फुट- सिद्धान्त' में अंकगणित में २० विषय और ८ व्यवहार संमिलित किए थे । १. संकलित (जोड़), २. व्यवकलित (घटाना), ३. गुणन (गुणा करना), ४. भागहार (भाग देना), ५. वर्ग (Square), ६. वर्गमूल (Squareroot) ७. घन (Cube) ८. घनमूल (Quberoot), (९-१३) पंचजाति (भिन्न के ५ प्रकार) ,१४. त्रैराशिक (Rule of three) आदि ।

भास्कराचार्य ने लीलावती में अभिन्न-परिकर्माष्टक (पूर्ण संख्याओं के ८ परिकर्म) और भिन्नपरिकर्माष्टक (अपूर्ण संख्याओं के ८ परिकर्म) अंकगणित के विषय बताए हैं । दोनों में ८ परिकर्म ये हैं : १. संकलन, संकलित (जोड़ना), २. व्यवकलन, व्यवकलित (घटाना), ३. गुणन (गुणा करना), ४. भागहार (भाग देना), ५. वर्ग, ६. वर्गमूल, ७. घन, ८. घनमूल ।

मूलभूत परिकर्म दो ही हैं : प्राचीन गणितज्ञों का मत था कि गणित के सब परिकर्म मूलत: दो परिकर्मों अर्थात् संकलित (जोड़ना) और व्यवकलित (घटाना) पर ही आश्रित हैं । इस विषय में भास्कर प्रथम का निम्नलिखित कथन है :

'यह गणित यद्यपि चार प्रकारों में व्याप्त है, मूलत: दो प्रकार का है । वे दो प्रकार हैं - वृद्धि और ह्रास । जोड़ वृद्धि है और घटाना ह्रास है । इन्ही दो भेदों में संपूर्ण गणित व्याप्त हैं । ' कहा भी गया है -

'गुणन और गत (वर्ग)' जोड़ के भेद हैं । भाग और गतमूल (वर्गमूल) अन्तर (घटाना) के भेद कहे गए हैं । इस प्रकार संपूर्ण गणितशास्त्र को वृद्धि और ह्रास (जोड़ और घटाना) से व्याप्त देखकर वस्तुत: उसके दो ही भेद मानने चाहिएँ ।[१५]

संख्यासूचक शब्द

यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी और काठक संहिताओं में १ से परार्ध तक की संख्याओं के नाम मिलते हैं । इनमें से प्रत्येक अगली संख्या १० गुनी है । ये नाम हैं :

एक (१), दश (१०), शत (१००), सहस्र (१०००), अयुत (१० हजार), नियुत (१ लाख), प्रयुत (१० लाख), अर्बुद (१ करोड़), न्यर्बुद (१० करोड़), समुद्र (१ अरब), मध्य (१० अरब), अन्त (१ खरब), परार्ध (१० खरब) । ऋग्वेद में एक, दश, शत (१.२४.९), सहस्र (१.२४.९), अयुत (४.२६.७) तक ही संख्या शब्द मिलते हैं । अथर्ववेद (८.८.७) में शत, सहस्र,

---

१५.भास्कर प्रथम का 'आर्यभटीय-भाष्य' गणितपाद की भूमिका ।

अयुत और न्यर्बुद तक संख्याएं दी हैं ।[1]

पंचविंश ब्राह्मण में न्यर्बुद तक तो यजुर्वेद वाली ही नामावली है । उसके बाद निखर्व, वाडव, अक्षिति आदि नाम हैं । शांखायन श्रौतसूत्र में न्यर्बुद के बाद निखर्व, समुद्र, सलिल, अन्त्य और अनन्त (१० Billions) आदि संख्याएँ दी गयी हैं ।[2] इनमें से प्रत्येक अपने पूर्ववर्ती से १० गुने हैं । अतः इन्हें 'दशगुणोत्तर संज्ञा' कहते हैं ।[3]

संख्याओं का स्थानिक मान (Notational places) : क्रमशः स्थानमान की भावना का विकास हुआ । दशम-पद्धति पर संख्याओं का लिखना भारतवर्ष का विशेष आविष्कार है । आर्यभट प्रथम (सन् ४९९) ने आर्यभटीय (२.२) में लिखा है कि 'किसी लिखी हुई संख्या में एक-एक स्थान बाईं ओर हटने पर स्थानिक मान निम्नलिखित क्रम में १० गुना बढ़ता जाता है । एक (इकाई), दश (दहाई), शत (सैकड़ा), सहस्र (हजार), अयुत (दस हजार), नियुत (लाख), प्रयुत (दस लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद (१० करोड़) और वृन्द (अरब) ।[4] इसमें अंक-संज्ञा के अर्थ में 'स्थान' शब्द का प्रयोग हुआ है । यह स्थानिक मान का सूचक है ।

श्रीधर (७५० ई) ने अपने ग्रन्थ 'त्रिशतिका' में १८ स्थानों के नाम दिए हैं और इन्हें 'दशगुणाः संज्ञाः' कहा है ।[5] ये हैं एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महासरोज, शंकु, सरितापति, अन्त्य, मध्य, परार्ध । भास्कर द्वितीय (११५० ई०) ने लीलावती ग्रन्थ में श्रीधर की ही नामावलि ली है ।[6] केवल तीन स्थानों पर अन्तर किया है । दो स्थानों पर इनके पर्यायवाची शब्द दे दिए हैं । ये हैं महासरोज के स्थान पर महापद्म और सरितापति के स्थान पर जलधि शब्द तथा नियुत के स्थान पर लक्ष शब्द ।

यजुर्वेद (१७.२) के भाष्य में महीधर ने एक से परार्ध तक १८ संख्या-संज्ञाओं का उल्लेख किया है और कहा है कि न्यर्बुद के बाद खर्व, निखर्व, महापद्म और शंकु संज्ञाओं का भी परिगणन समझना चाहिए ।[7] इस प्रकार १८ संख्या-संज्ञाएँ

---

१. एका च, दश च, शतं च, सहस्रं च, अयुतं च, नियुतं च, प्रयुतं च, अर्बुदं च, न्यर्बुदं च, समुद्रश्च, मध्यं च, अन्तश्च, परार्धश्च । यजु० १७.२ । तैत्ति० सं० ४.४.११ ; ७.२.२०। मैत्रा० २.८.१४ । काठक० १७.१०.३१

२. शांखा० श्रौत० १५.११.४ ३. दशगुणोत्तरं संज्ञाः । लीलावती १.२

४. एकं च दश च शतं च सहस्रमयुत-नियुते तथा प्रयुतम् ।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात् । आर्यभटीय, गणितपाद २

५. त्रिशतिका, सूत्र २-३

६. एकदशशतसहस्रायुत-लक्ष-प्रयुतकोटयः क्रमशः ।
अर्बुदमब्जं खर्वनिखर्वमहापद्मशंकवस्तस्मात् ॥ २ ॥
जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तरं संज्ञाः॥ ३ ॥ लीलावती २.२-३

७. एवम् एकाद्यष्टादशसंख्यासंज्ञासंमिता इष्टकाः। महीधर, यजु० १७.२

ये हैं :

१.	एक (१)	= $१०^{०}$
२.	दश (१०)	= $१०^{१}$
३.	शत (१००)	= $१०^{२}$
४.	सहस्र (१०००)	= $१०^{३}$
५.	अयुत (१० हजार)	= $१०^{४}$
६.	नियुत (लक्ष) (१ लाख)	= $१०^{५}$
७.	प्रयुत (१० लाख)	= $१०^{६}$
८.	कोटि (१ करोड़)	= $१०^{७}$
९.	अर्बुद (१० करोड़)	= $१०^{८}$
१०.	न्यर्बुद (अब्ज) (१ अरब)	= $१०^{९}$
११.	खर्व (१० अरब)	= $१०^{१०}$
१२.	निखर्व (१ खरब)	= $१०^{११}$
१३.	महापद्म (१० खरब) (महासरोज)	= $१०^{१२}$
१४.	शंकु (१ नील)	= $१०^{१३}$
१५.	समुद्र (जलधि) (१० नील)	= $१०^{१४}$
१६.	मध्य (१०० नील) (अन्त्य)	= $१०^{१५}$
१७.	अन्त (अन्त्य) (१ हजार नील) (मध्य)	= $१०^{१६}$
१८.	परार्ध (१० हजार नील)	= $१०^{१७}$

संख्यावाचक शब्दों का आधार १० संख्या

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वैदिक संख्या-पद्धति का आधार १० अंक रहा है। अतएव दश शत सहस्र आदि संख्याओं को 'दशगुणाः संज्ञाः' या 'दशगुणोत्तरं संज्ञाः' कहा गया है। दश से परार्ध तक की संज्ञाएँ क्रमशः १० गुनी होती चली गयी हैं।

संख्याशब्द समस्त और असमस्त

एक से दश तक की संख्याओं में कोई समास नहीं है । इससे आगे की संख्याएँ समस्त होती गयी हैं। जैसे - असमस्त, एक, द्वि, त्रि, चतुर्, पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव और दश। समस्त - एकादश (१+११), द्वादश (२+१०), त्रयोदश (३ +१०), आदि। इसी प्रकार ११ से ९९ तक की संख्याएँ समस्त (समासयुक्त) हैं। शत, सहस्र, अयुत आदि शब्द असमस्त (समासरहित) हैं।

संख्याशब्दों का विभिन्न प्रकार से उल्लेख

(क) विषम संख्याएं : १ से ३३ तक : यजुर्वेद के एक मंत्र में १ से ३३ तक की केवल विषम संख्याएँ ही दी गयी हैं ।[८] ये हैं : १,३,५,७,९,११, १३,१५,१७,१९,२१,२३,२५, २७, २९,३१ और ३३ ।

(ख) सम संख्याएँ ४ से ४८ तक (४ का पहाड़ा, ४ x १२ = ४८) : यजुर्वेद के ही एक अन्य मंत्र में ४ का पहाड़ा ४८ तक चला गया है । जैसे - ४,८,१२,१६,२०,२४,२८,३२,३६,४०,४४,४८ ।[९]

(ग) संख्याएँ १ से २०० तक संक्षेप में : तैत्तिरीय संहिता के एक मंत्र में १ से लेकर १०० तक की संख्याएँ तथा बाद में २०० संख्या संक्षेप में इस प्रकार दी गयी हैं ।[१०] (क) १ से १९ तक पूरी संख्याएँ - १,२,३,४,५,६,७,८,९, १०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८ और १९ । (ख) इसके बाद केवल नौ अंकवाली संख्याएँ ९९ तक । २९,३९,४९,५९,६९,७९,८९,९९ । (ग) फिर १०० और २०० । इस प्रकार १ से २०० तक की संख्याएँ समझाई गयी हैं । इसके बाद १० मंत्रों के अन्त में एक मुहावरा दिया गया है - 'सर्वस्मै स्वाहा' । इसका अभिप्राय यह है कि इसी प्रकार आगे की सब संख्याएँ बनाते जाएँ ।

(घ) २ का पहाड़ा २० तक : एक मंत्र में २ का पहाड़ा २० तक दिया गय है ।[११] २,४,६,८,१०,१२,१४,१६,१८,२० ।

(ङ) ४ और ५ का पहाड़ा २० तक : एक मंत्र में २० तक इस प्रकार दिया गया है ।[१२] ४,८,१२,१६,२० । ५,१०,१५,२० ।

---

८. एका, तिस्रः, पञ्च, सप्त, नव, ...एकविंशतिः , त्रयोविंशतिः, ... एकत्रिंशत् , त्रयस्त्रिंशत् । यजु० १८.२४

९. चतस्रः, अष्टौ, द्वादश, षोडश, विंशतिः, चतुर्विंशतिः, अष्टाविंशतिः .. चत्वारिंशत्, चतुश्चत्वारिंशत्, अष्टाचत्वारिंशत्० । यजु० १८.२५

१०. एकस्मै (एक), द्वाभ्याम् (द्वि), त्रि, चतुर् , पञ्च, षड्, सप्त, अष्ट, नव, दश, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश, पञ्चदश, षोडश, सप्तदश, अष्टादश, एकान्नविंशति, नवविंशति, एकान्नचत्वारिंशत्, नवचत्वारिंशत्, एकान्नषष्टि, नवषष्टि, एकान्नाशीति, नवाशीति, एकान्नशत, शत, द्विशत । तैत्ति० सं० ७.२.११

११. द्वाभ्याम्, चतुर्भ्यः, षड्भ्यः .. षोडशभ्यः, अष्टादशभ्यः, विंशत्यै० । तैत्ति० सं० ७.२.१३

१२. (क) चतुर्, अष्ट, द्वादश, षोडश, विंशति । तैत्ति० ७.२.१५
(ख) पञ्च, दश, पञ्चदश, विंशति । तैत्ति० ७.२.१६

(च) १० का पहाड़ा १०० तक : एक मंत्र में १० का पहाड़ा १०० तक इस प्रकार दिया है ।[१३] १०,२०,३०,४०,५०,६०,७०,८०,९०,१०० ।

(छ) २० का पहाड़ा १०० तक[१४] : एक मंत्र में २० का पहाड़ा १०० तक इस प्रकार दिया है । विंशति (२०), चत्वारिंशत् (४०), षष्टि (६०), अशीति (८०), शत (१००) ।

(झ) १०० का पहाड़ा १००० तक[१५] : एक मंत्र में १०० का पहाड़ा एक हजार तक इस प्रकार दिया है : - शत (१००), द्विशत (२००), त्रिशत (३००), चतु:शत (४००), पञ्चशत (५००), शट्षत (६००), सप्तशत (७००), अष्टाशत (८००), नवशत (९००), सहस्र (१०००) ।

(ञ) ११ का पहाड़ा अवरोह क्रम में : अथर्ववेद के एक सूक्त (१९.४७.३ से ५) में ११ का पहाड़ा अवरोहक्रम अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर दिया गया है । इसमें नवतिर्नव (९९), अशीति: अष्टा (८८), सप्त सप्तति: (७७), षष्टिश्च षट् (६६), पञ्चाशत् पञ्च (५५), चत्वार: चत्वारिंशच्च (४४), त्रयस्त्रिंशत् (३३), द्वौ च विंशति: (२२), एकादश (११) ।

दश (१०) संख्या के लिए 'ति' प्रत्यय लगाना

दस संख्या के लिए 'ति' प्रत्यय लगाना भाषाविज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है । १० के लिए 'ति' का प्रयोग इंग्लिश् में भी होता है और इसका अर्थ होता है - १० गुना । इंग्लिश् में यह Ten (१०) का संक्षिप्त रूप 'Ty' है । यह सिद्ध करता है कि संस्कृत और इंग्लिश् दोनों भाषाओं का उद्गम स्थान एक है । भाषाविज्ञान में इसे भारोपीय भाषा (Indo-European Language) कहते हैं । जैसे-

संख्या	संस्कृत	इंग्लिश्
६०	षष्टि (षष् + ति)	Sixty (Six + ty)
७०	सप्तति (सप्त + ति)	Seventy (Seven + ty)
८०	अशीति (अष्ट + ति)	Eighty (Eight + ty)
९०	नवति (नव + ति)	Ninety (Nine + ty)

९ अंक के लिए आरोह और अवरोह क्रम

वेदों में १९,२९,३९ आदि संख्याओं में ९ अंक के लिए आरोह और अवरोह दोनों क्रम अपनाए गए हैं । आरोह क्रम (Ascending order) का अभिप्राय है - संख्या का आगे की ओर बढ़ना । अवरोह क्रम (Descending order) का

---

१३. दश, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पंचाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत । तैत्ति० ७.२.१७

१४. तैत्ति० ७.२.१८

१५. तैत्ति० ७.२.१९

अभिप्राय है - अगली संख्या देकर पीछे की ओर मुड़ना । हिन्दी में १९,२९,३९ आदि गिनती में अवरोह-क्रम अपनाया गया है । जैसे १९ के लिए उन्नीस (ऊन-बीस, अर्थात् २० से १ कम), २९ के लिए उनतीस (ऊन-तीस, तीस में से एक कम), ६९ के लिए उनहत्तर (ऊन -सत्तर, सत्तर में से एक कम), ७९ के लिए उन्नासी (ऊन-अस्सी, अस्सी में से एक कम) । हिन्दी में यह विधि वैदिक विधि से ली गयी है । वेदों में १९,२९ आदि के लिए आरोह और अवरोह क्रम दोनों अपनाए गए हैं । जैसे -नवदशन् (१९), नवषष्टि (६९), नवाशीति (८९) आदि में आरोह-क्रम अपनाया गया है, अर्थात् १०+९ = १९, ६०+ ९ = ६९, ८०+९= ८९ । दूसरी ओर १९,२९ आदि में 'एक कम' के अर्थ में 'एकोन' 'एकान्न' और केवल 'ऊन' (ऊन=न्यून अर्थात् कम) शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है । एकोनविंशति आदि ।

आरोह-क्रम के उदाहरण : यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में इसके उदाहरण मिलते हैं । जैसे - नवदश (१९), नवविंशति (२९) ।[१] तैत्तिरीय संहिता में नवविंशति (२९), नवचत्वारिंशत् (४९), नवषष्टि (६९), नवाशीति (८९) ।[२] ऋग्वेद में नव-नवति (९९) प्रयोग है ।[३]

अवरोहक्रम के उदाहरण : अथर्ववेद, तैत्तिरीय संहिता और तांड्य महाब्राह्मण में 'एक कम' के अर्थ में 'एकोन' और 'एकान्न' शब्दों के प्रयोग मिलते हैं । अथर्ववेद में एकोनविंशति (१९, एक कम बीस) प्रयोग मिलता है ।[४] तांड्य महाब्राह्मण में ये प्रयोग मिलते हैं : एकोनविंशति[५] (१९), एकोनत्रिंशत्[६] (२९), एकोनचत्वारिंशत्[७] (३०), एकोनपञ्चाशत्[८] (४९) । तैत्तिरीय संहिता में 'एकान्न' (एक कम) वाले प्रयोग मिलते हैं । जैसे - एकान्नविंशति (१९), एकान्नाशीति (७९), एकान्नशत (९९) ।[९]

आरोह और अवरोह क्रम : तैत्तिरीय संहिता में आरोह और अवरोह दोनों क्रमों के उदाहरण एक साथ मिलते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि उस समय दोनों प्रकार के प्रयोग प्रचलित थे । जैसे - एकान्नविंशति (१९), नवविंशति (२९), एकान्नचत्वारिंशत् (३९), नवचत्वारिंशत् (४९), नवाशीति (८९), एकान्नशत (९९) ।[१०] सूत्रकाल में 'एकोन' में से 'एक' शब्द हटाकर केवल 'ऊन' शब्द का ही प्रयोग चलने लगा । जैसे - ऊनविंशति (१९), ऊनत्रिंशत् (२९) । यही विधि हिन्दी में भी अपनाई गयी है ।

---

१. यजु० १४.३० और ३१ । १८.२४ २. तैत्ति० सं० ७.२.१४
३. नवतीर्नव, ऋग्० १.८४.१३ । ९.६१.१
४. अथर्व० १९.२३.१६ ५. ता० महा० २३.१३
६. ता० महा० २३.२५ ७. ता० महा० २४.९
८. ता० महा० २४.१२ ९. तैत्ति० सं० ७.२.११
१०. तैत्ति. सं० ७.२.११

अवरोह क्रम में दशमांश या १० गुना कम : ऋग्वेद में एक सुन्दर प्रसंग मिलता है, जिसमें 'दशगुणोत्तर' के स्थान पर 'दशगुण-अधर' का उदाहरण मिलता है। जैसे - सहस्र (१०००), शत (१००), दश (१०)। हजार का दसवाँ भाग शत (१००), सौ का दसवाँ भाग दश (१०)।[११]

दशम-पद्धति का उल्लेख : अथर्ववेद में एक सूक्त के ११ मंत्रों में दशम-पद्धति का उल्लेख है। इसमें १ से लेकर एक हजार तक संख्या शब्दों के दशम-पद्धति पर नाम दिए हैं।[१२] जैसे - १-१०, २-२०, ३-३०, ४-४०, ५-५०, ६-६०, ७-७०, ८-८०, ९-९०, १०-१००, १००-१०००। इसी प्रकार का भाव यजुर्वेद में भी है।[१३] एकया-दशभिः (१-१०), द्वाभ्यां-विंशती, (२-२०), तिसृभिः -त्रिंशता (३-३०)। इनमें १,२,३ आदि का १०,२०,३० आदि से साक्षात् संबन्ध दिखाया गया है।

संख्या-शब्दों और संख्याओं का निर्माण : संख्या-शब्दों और विभिन्न संख्याओं के निर्माण में जोड़, घटाना और गुणा, तीनों विधियों को अपनाया गया है। जैसे :

(क) जोड़ना : एकादश (१ +१०), द्वादश (२ +१०), एकाशीतिः (१+८०), नवनवतिः (९+९० =९९)।

(ख) घटाना : एकोनविंशति (२०-१ =१९), एकोनषष्टिः (६०-१ = ५९), एकोनशत (१००-१ = ९९)।

(ग) गुणा : द्विः पंच[१४] (२ x ५ = १०)। द्विर्दश[१५] (२ x १० २०), त्रिषप्त या त्रिःसप्त[१६] (३ x ७ = २१)। त्रिणव[१७] (३ x ९ =२७)। षडशीति[१८] (६ x ८० = ४८०)

बड़ी संख्याएँ लिखना : इसमें जोड़ और गुणा का सहारा लिया गया है। जैसे - ६० हज़ार - षष्टिः सहस्रम्।[१९] ६० हजार ९९ - षष्टिं सहस्रा नवतिं नव (६० हजार +९० + ९)।[२०] ४८ हज़ार - चत्वारि अयुता अष्टा सहस्रा अर्थात् ४ अयुत और ८ हज़ार। १ अयुत = १० हज़ार, अतः इसका अर्थ हुआ - ४ अयुत = ४ x१० हज़ार = ४० हज़ार+८ हज़ार = ४८ हज़ार।[२१] इस प्रकार बड़ी संख्याओं को लिखने में जोड़, गुणा एवं पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

---

११. त्वं सहस्राणि शता दश`। ऋग्० २.१.८

१२. एका च मे दश च मे, द्वे-विंशतिः, तिस्रः - त्रिंशत् ....
दश- शतम् , शतम् - सहस्रम्। अथर्व० ५.१५.१ से ११

१३. यजु० २७.३३

१४. द्विर्यत् पञ्च। ऋग्० १.१२२.१३

१५. द्विर्दश। अ० २०.२१.९

१६. ऋग्० ९.७०.१। अथर्व० १.१.१

१७. यजु० १४.२३

१८. अथर्व० ११.३.२९

१९. ऋग्० १.१२६.३

२०. अ० २०.२१.९

२१. ऋग्० ८.२.४१

अथर्ववेद में एक युग का परिमाण ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष बताया गया है। उसे इस प्रकार लिखा है - 'शत (१००), अयुत (१० हजार) + ४,३,२ आदि में जोड़ना। अर्थात् अयुत x शत - १०, ००० x १०० = १०,००,०००। प्रारंभ में ४,३,२ जोड़ा। ४,३२,००,००,००० वर्ष एक युग का परिमाण। अंक दाएँ से बाएँ लिखे जाते हैं, अत: मंत्र का २३४ = ४३२ है।[२२]

संख्या (Cardinals) और संख्येय (Ordinal numbers) : यजुर्वेद में तीन स्थलों पर प्रत्येक संख्या से संबद्ध संख्येय शब्दों की गणना की गयी है। इसमें १ से लेकर ४८ तक के संख्येय शब्द दिए गए हैं। (१) एक मंत्र में १ से १२ तक के संख्येय शब्द दिए गये हैं।[२३] एक का संख्येय शब्द प्रथम, २- द्वितीय, ३- तृतीय, ४-चतुर्थ, ५- पञ्चम, ६- षष्ठ, ७ - सप्तम, ८ - अष्टम, ९ - नवम, १० - दशम, ११ - एकादश, १२- द्वादश। (२) एक अन्य मंत्र में १३ से १७ तक के संख्येय शब्द दिए हैं।[२४] १३-त्रयोदश, १४ - चतुर्दश, १५ - पञ्चदश, १६ - षोडश, १७ - सप्तदश। (३) यजुर्वेद में अन्यत्र ४ मंत्रों में कुछ संख्याओं को छोड़ते हुए १५ से ४८ तक के संख्येय शब्द दिए गए हैं।[२५] १७ से आगे के संख्येय शब्द ये दिये हैं : १८ - अष्टादश, १९ - नवदश, २० - विंश, २१ - एकविंश, २२ - द्वाविंश, २३ - त्रयोविंश, २४ - चतुर्विंश, २५ - पञ्चविंश, २७ - त्रिणव, ३१ - एकत्रिंश, ३३ - त्रयस्त्रिंश, ३४ - चतुस्त्रिंश, ३६ - षट्त्रिंश, ४४ - चतुश्चत्वारिंश, ४८ - अष्टाचत्वारिंश।

ऋग्वेद में प्रथम (१.१६२.४), द्वितीय और तृतीय (१.१४१.२), अष्टम (२.५.२), नवम (५.२७.३), दशम (८.२४.३) और १०० का शततम (४.२६.३) ये प्रयोग मिलते हैं।

अथर्ववेद में ये संख्येय शब्द मिलते हैं। प्रथम (१.१२.१), द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम (१३.५.१६ से १८), एकादश (५.१६.११)।

तांड्यमहाब्राह्मण (२१.१.३) में हजारवाँ के लिए 'सहस्रतम' प्रयोग भी मिलता है।

ऋग्वेद आदि से ज्ञात होता है कि - पञ्चथ (पाँचवाँ, काठक सं० ९.३), सप्तथ (सातवाँ, ऋग्० १.१६४.१५) जैसे शब्द भी प्रचलित थे।

---

२२. शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः। अथर्व० ८.२.२१
२३. सविता प्रथमेऽहनि, द्वितीये, तृतीये , चतुर्थे ..... द्वादशे। यजु० ३९.६
२४. त्रयोदशम्, चतुर्दशम्, पञ्चदशम्, षोडशम्, सप्तदशम्। यजु० ९.३४
२५. यजु० १४.२३ से २६

संख्याबोधक कुछ अन्य शब्द

वेदों में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, जो एक, दो आदि के तुल्य साक्षात् संख्या न बताकर विभिन्न संख्याओं को बताते हैं। ये शब्द संख्यावाचक शब्दों के तुल्य ही कुछ विशेष संख्याओं को बताते हैं। जैसे संस्कृत में इयत् (इतना), तावत् (उतना), कति (कितने), उभ, उभय, (दोनों) आदि। वेदों में प्रयुक्त ऐसे कुछ शब्द ये हैं :

१. अन्य : यह कोई दूसरा या एक अर्थ को बताता है। जैसे 'तयोरन्यः पिप्पलम्०' (ऋग्० १.१६४.२०) में अन्य शब्द 'उन दोनों में से एक ' अर्थ बताता है।

२. उभ, उभय : ये दोनों शब्द 'दोनों ' (Both) अर्थ बताते हैं। जैसे 'उभा देवा०' (ऋग्० १.२२.२) का अर्थ है - ये दोनों देवता। अथर्ववेद (७.७९.२) में 'देवा उभये' (ये दोनों देवता)।

३. एकैक : यह 'एक-एक, हर एक, एक -एक करके, प्रत्येक' अर्थ बताता है। जैसे - 'एकैकया सृष्ट्या०' (अथर्व० ३.२८.१) प्रत्येक सृष्टि में।

४. एकैकशः 'एक-एक करके '। शतपथ ब्राह्मण (१९.१) में इसका प्रयोग है।

५. एतावत् : 'इतने' अर्थ में है। जैसे 'एतावन्तो वै देवाः' (तैत्ति० सं० ३.५.२) कुल मिलाकर इतने देवता हुए।

६. पुरु : यह बहुत या अनेक अर्थ में है। जैसे - 'पुरू सहस्रा जनयः०' (ऋग्० १.६२.१०) कई हजार पत्नियाँ।

७. कति : इसका अर्थ है - कितने, कितनी संख्या में। जैसे 'कति अग्नयः' (ऋग्० १०.८८.१८) कितनी अग्नियाँ हैं।

८. कियत् : इसका अर्थ है - कितना, कितनी मात्रा में है। जैसे 'कियती योषा०' (ऋग्० १०.२७.१२) कितनी ही स्त्रियाँ, अर्थात् बहुत सी स्त्रियाँ।

९. बहु : इसका अर्थ है - बहुत,बहुत से। जैसे - 'बहवी हि विप्राः०' (ऋग्० २.१८.३) बहुत से ब्राह्मण।

१०. चरम : इसका अर्थ है - अन्तिम, समाप्तिसूचक। जैसे - 'स नो रक्षिषत् चरमम्' (ऋग्० ८.६१.१५) वह अन्तिम व्यक्ति तक की रक्षा करे।

११. असंख्येय, असंख्यात : ये दोनों शब्द असंख्य या अगणित अर्थ बताते हैं। जैसे - 'असंख्याताः ... रुद्राः' (यजु० १६.५४) रुद्र असंख्य हैं। 'असंख्येम्' (अथर्व० १०.८.२४) असंख्य या अगणित।

कुछ पारिभाषिक शब्द

वेदों में संख्या आदि से संबद्ध कुछ पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं । जैसे :

(क) अथर्ववेद के एक सूक्त में ये शब्द प्राप्त होते है ।[२६] १. **एकर्च :** एक ऋचा वाला सूक्त । २. **तृच :** तीन ऋचा वाला सूक्त । ३. **क्षुद्र :** छोटा, थोड़ा, कम मंत्रों वाला सूक्त । ४. **उत्तम :** अन्तिम, अन्तिम मंत्र या सूक्त । ५. **उपोत्तम :** उपान्त्य, अन्तिम से पहले वाला अक्षर (Penultimate, Last but one) । ६. **उत्तर :** अगला, बाद वाला । ७. **गण :** योग, जोड़ (Total) । ८. **महागण :** अन्तिम योग या जोड़ (Aggregate) । ९. **विद-गण :** योग या जोड़ आगे से चलें (Brought forward).

(ख) समस्त पदों में अविशब्द 'आधा वर्ष' १/२ वर्ष का सूचक है ।[२७] त्र्यवि, त्र्यवी (१+१/२ वर्ष का बछड़ा, बछिया), पञ्चावि (२ +१/२ वर्ष का बछड़ा), दित्यवाट् (२ वर्ष का बछड़ा), तुर्यवाट् (३+१/२ वर्ष का बछड़ा)

(ग) एकवृत् :[२८] एकल, इकहरा, एक गुना, अकेला । त्रिवृत्[२९] - त्रिगुण, तिहरा, तीन परत वाला ।

(घ) अध्यर्ध[३०] **:** ड्योढ़ा (एक और आधा) ।

---

२६. अथर्व० १९.२२.११ से १८ । १९.२३.१९ से २१

२७. यजु० १८.२६

२८. एकवृत्, अथर्व० ८.९.२५

२९. त्रिवृत् , ऋग्० १.१४०.२

३०. अध्यर्ध, ता० महा० १०.१२.४

शब्दांक-प्रणाली

प्राचीन समय में सुविधा की दृष्टि से अंकों के स्थान पर कुछ शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा । इसको शब्दांक-प्रणाली या शब्दांक-लेखन-प्रणाली कहा गया है । इस प्रणाली का प्रयोग वेदों में प्राप्त होता है । जैसे - यजुर्वेद में शून्य के लिए 'ख' शब्द का प्रयोग । ब्रह्म 'ख' है अर्थात् शून्य है ।[१] ख का अर्थ आकाश भी है, अत: इसका यह अर्थ भी लिया जाता है कि ब्रह्म आकाश के तुल्य सर्वत्र व्याप्त है । ऋग्वेद के एक मंत्र में वर्ष के लिए 'द्वादश' (अर्थात् १२ मास वाला) शब्द का प्रयोग है ।[२]

शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'चार' के लिए 'कृत' शब्द का प्रयोग मिलता है ।[३] अथर्ववेद के प्रथम मंत्र में विभिन्न २१ वस्तुओं के लिए 'त्रिषप्ता:' अर्थात् ३ और ७ अंकों का प्रयोग है ।[४] ये ३ और ७ वस्तुओं के समूह हैं । जैसे- यहाँ सूर्य की किरणों के लिए ७ शब्द है और उत्तम,मध्यम, अधम इन तीन प्रकार के गुणों के लिए शब्द 'त्रि' शब्द है । वेदांगज्योतिष (लगभग १२०० ई०पू०) में अंकों के लिए इन शब्दों का प्रयोग हुआ है - रूप = १, अय (अक्ष, जुए के पासे) = ४ , गुण = युग = १२, भसमूह = २७ ।[५] मैत्रायणी संहिता में 'भिन्नों' (Fractions) को सूचित करने के लिए ये शब्द आए हैं : कला = १/१६, कुष्ठा = १/१२, शफ = १/८ और पाद = १/४ ।[६] कात्यायन और लाट्यायन श्रौतसूत्रों में२४ के अर्थ में 'गायत्री' और ४८ के अर्थ में 'जगती' शब्दों का प्रयोग हुआ है ।[७]

'अंकानां वामतो गति:' अंक-पद्धति में एक सामान्य नियम है कि दाईं ओर से बाईं ओर की तरफ अंक गिने जाते है। । शब्दांक पद्धति का सबसे पुराना प्रयोग 'अग्निपुराण' (४०० ई० से पूर्व) में मिलता है ।[८] जैसे - बड़ी संख्या १,५८, २२,३७,८०० को लिखा है - ख-ख - अष्ट-मुनि-राम-अश्वि- नेत्र-अष्ट-शर-रात्रिपा: । इसका अर्थ है ख ख (दो शून्य), अष्ट (८), मुनि (७), राम (३), अश्विन् (२), नेत्र (२), अष्ट (८), शर (५), रात्रिप (चन्द्रमा, १) । इसी प्रकार युद्ध में मरने वालों की संख्या महाभारत में ६६ करोड़ तक लंबी संख्या ६६,०१,२०,०००, सहस्र, अयुत, कोटि के विभागों में दी गयी है ।[९]

१. ओं खं ब्रह्म । यजु० ४०.१७
२. देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य० । ऋग्० ७.१०३.९
३. (क) चतुष्टोमेन कृतेन अयानाम्० । शत० १३.३.२.१
(ख) ये वै चत्वार: स्तोमा: कृतं तत्० । तैत्ति० ब्रा० १.५.११.१
४. ये त्रिषप्ता: परियन्ति० । अ० १.१.१
५. वेदांग ज्योतिष (याजुष) श्लोक सं० २३, १४,२५,२०
६. कलया ते क्रीणानि कुष्ठया शफेन पदा । मैत्रा० ३.७.७
७. (क) कात्यायन श्रौ० (बेबर संस्करण) पृ० १०१५ (ख) ला०श्रौ० ९.४.३१
८. अग्निपुराण, अध्याय १२२-१२३, १३१,१४१,३२८-३३५
९. दशायुतानामयुतं, सहस्राणि च विंशति: । कोट्य: षष्टिश्च षट् चैवं, ह्यस्मिन् राजन् मृधे हता: । महाभारत, स्त्रीपर्व, २६.९

दशमलव स्थानमान और शब्दांक-प्रणाली के दो प्रकार

दशमलव स्थानमान के सहित शब्दांक-लेखन-प्रणाली के दो प्रकार प्रचलित थे : १. आर्यभटीय-पद्धति, २. कटपयादि-पद्धति । इन दोनों पद्धतियों का संक्षिप्त विवरण यह है :

आर्यभटीय-पद्धति : इसका सूत्र आर्यभट प्रथम (४७६ ई०) ने आर्यभटीय (दशगीतिका २) में दिया है -

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः ।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ।

वर्गाक्षर अर्थात् कवर्ग से पवर्ग तक (क से म तक ५ x ५ = २५) संख्याएँ होती हैं । अवर्ग अर्थात् य से ह तक ३० से १०० तक संख्याएँ है। । इकाई, दहाई आदि के लिए अ से औ तक ९ स्वर हैं । इस प्रकार परार्ध तक की संख्या वर्णों के द्वारा बताई जा सकती हैं । प्रत्येक संख्या और इकाई-दहाई आदि के लिए ये वर्ण हैं ।

वर्गाक्षर :	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
	प	फ	ब	भ	म					
	२१	२२	२३	२४	२५					

अवर्गाक्षर :	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००

स्वर :	अ	इ	उ	ऋ	लृ	ए	ऐ	ओ	औ
	$१०^{०}$	$१०^{२}$	$१०^{४}$	$१०^{६}$	$१०^{८}$	$१०^{१०}$	$१०^{१२}$	$१०^{१४}$	$१०^{१६}$
	इकाई दहाई	सैकड़ा	दस हजार	दस लाख	दस करोड़	दस अरब	दस खरब	दस नील	एक हजार नील

$१०^{२}$ का अभिप्राय है - १ पर २ शून्य, $१०^{८}$ का अभिप्राय है - १ पर ८ शून्य । उदाहरण : ख्युघृ का अर्थ होगा - ख्यु में उ ख और य दोनों के साथ जुड़ेगा । अतः खु का अर्थ होगा - ख = २, उ = १० हजार गुना , अर्थात् २० हजार । यु का अर्थ होगा - ३ का १० हजार गुना = ३ लाख । घृ का अर्थ होगा - घ = ४ , ऋ = १० लाख गुना, अर्थात् ४० लाख । इस प्रकार यह संख्या होगी ।

खु = (२० हजार)	=	२०,०००
यु = (३ लाख)	=	३,००, ०००
घृ = (४० लाख)	=	४०,००,०००
योग	=	४३,२०,०००

अर्थात् ४३ लाख २० हजार । आर्यभट ने ख्युघृ के द्वारा एक युग में सूर्य के भगणों की संख्या ४३ लाख २० हजार बताई है । इस विधि में बड़ी से बड़ी संख्या कुछ थोड़े से वर्णों में दी जाती है ।

कटपयादि-पद्धति : यह पद्धति ५वीं शती ईसवीय में प्रचलित थी । आर्यभटीय के एक व्याख्याकार सूर्यदेव का कथन है कि - यह कटपयादि पद्धति आर्यभट प्रथम (४७६ई०) को ज्ञात थी ।[१] आर्यभट ने इसके स्थान पर अपनी नई पद्धति का आविष्कार किया । इससे ज्ञात होता है कि यह कटपयादि-पद्धति पाँचवीं शती से पहले विद्यमान थी ।

इस पद्धति का 'सद्रत्नमाला' ग्रन्थ में सूत्र मिलता है -

नञावचश्च शून्यानि, संख्याः कटपयादयः ।

मिश्रे तूपान्त-हल्संख्या, न च चिन्त्यो हलस्वरः ।

अर्थात् न, ञ और केवल स्वर शून्य के सूचक हैं । क्, ट्, प् और य् से प्रारम्भ होने वाले व्यंजन (१,२,३ आदि) संख्याओं को सूचित करते हैं । मिश्र व्यंजनों में केवल स्वरयुक्त अन्तिम व्यंजन संख्या-सूचक होता है । स्वर-रहित व्यंजनों से कोई संख्या न समझें ।

'अंकानां वामतो गतिः' अंकों की गणना दाईं ओर से बाईं ओर करें । स्थानमान-प्रक्रिया (इकाई, दहाई आदि) इसमें भी चलती है । वर्ग के प्रथम वर्ण से १ संख्या, वर्ग के द्वितीय से २ संख्या आदि समझें ।

कटपयादि-पद्धति का स्वरूप यह है :

वर्ण		**किस संख्या के बोधक हैं**
क, ट, प, य	=	१
ख, ठ, फ, र	=	२
ग, ड, ब, ल	=	३
घ, ढ, भ, व	=	४
ङ, ण, म, श	=	५
च, त, ष	=	६
छ, थ, स	=	७
ज, द, ह	=	८
झ, ध	=	९
ञ, न और केवल स्वर	=	०

अभिलेखों और दानपत्रों आदि में इस पद्धति के उदाहरण मिलते हैं । जैसे -

(क)	२	४	४	१	
	रा	घ	वा	य	= १४४२
(ख)	६	४	३	१	
	त	त्वा	लो	के	= १३४६

१. वर्गाक्षराणां संख्याप्रतिपादने कटपयादित्वं नञयोश्च शून्यत्वमपि सिद्धम्, तन्निरासार्थं कात् ग्रहणम् । आर्यभटीय दशगीतिका की व्याख्या

अंकों के लिए प्रयुक्त संकेत-शब्द

शब्दांक-पद्धति में अंकों के लिए प्रयुक्त होने वाले कुछ प्रचलित संकेत-शब्द ये हैं । (इनके पर्यायवाची भी इसी अर्थ में आते हैं)

अंक		संकेत-शब्द
०	-	शून्य, ख, अम्बर, गगन, नभ, वियत् , अनन्त ।
१	-	चन्द्र, इन्दु, विधु, सोम, अब्ज, भू, धरा, गो, रूप, तनु ।
२	-	यम, अश्विन्, नेत्र, अक्षि, कर्ण, कर, पक्ष, द्वय, अयन, युगल
३	-	राम, गुण, त्रिगुण, भुवन, काल, अग्नि, त्रिनेत्र, लोक, पुर ।
४	-	वेद, श्रुति, सागर, वर्ण, आश्रम, युग, तुर्य, कृत, अय, दिश् ।
५	-	बाण, शर, इषु, भूत, प्राण, तत्त्व, इन्द्रिय, विषय, पाण्डव ।
६	-	रस, अंग, ऋतु, दर्शन, अरि, तर्क, कारक, षण्मुख ।
७	-	नग, अग, पर्वत, ऋषि, मुनि, वार, स्वर, छन्द, द्वीप, धातु, अश्व ।
८	-	वसु, अहि, नाग, गज, सर्प, सिद्धि, भूति, अनुष्टुप् ।
९	-	अंक, नन्द, निधि, ग्रह, रंध्र, छिद्र, द्वार, दुर्गा ।
१०	-	दिश्, दिशा, अंगुलि, पंक्ति, ककुभ्, रावणशिर, अवतार ।
११	-	रुद्र, ईश्वर, हर, ईश, भव, महादेव, अक्षौहिणी ।
१२	-	रवि, सूर्य, अर्क, मास, राशि, व्यय, भानु, दिवाकर ।
१३	-	विश्वेदेवाः, विश्व, काम, अतिजगती ।
१४	-	मन, विद्या, इन्द्र, शक्र, लोक ।
१५	-	तिथि, दिन, अहन् ।
१६	-	नृप, भूप, भूपति, अष्टि, कला ।
१७	-	अत्यष्टि ।
१८	-	धृति, पुराण ।
१९	-	अतिधृति ।
२०	-	नख, कृति ।
२१	-	उत्कृति, प्रकृति, स्वर्ग ।
२२	-	आकृति ।
२३	-	विकृति ।
२४	-	गायत्री, जिन, अर्हत्, सिद्ध ।
२७	-	नक्षत्र, उडु, भ ।
३२	-	दन्त, रद ।
३३	-	देव, अमर, सुर, त्रिदश ।
४८	-	जगती ।
४९	-	तान ।

आठ परिकर्म (Fundamental operations)

अंकगणित के ८ परिकर्म ये हैं : १. संकलित (जोड़, जोड़ना, Addition) २. व्यवकलित (घटाना, Subtraction), ३. गुणन (गुणा करना, Multiplication), ४. भागहार (भाग देना, Division), ५. वर्ग (Square), ६. वर्गमूल (Square-root), ७. घन (Cube), ८. घनमूल (Cube-root) ।

१. संकलित (जोड़, Addition)

दो या अधिक राशियों के जोड़ने को जोड़ या संकलित कहते हैं । वेदों में जोड़ की विधि का वर्णन है । जोड़ के लिए निम्नलिखित शब्द प्रयुक्त होते हैं : संकलन, योग, मिश्रण, संमेलन, संयोजन, युक्ति, एकीकरण आदि । दो विभिन्न संख्याओं को जोड़ने को संकलन, योग या संकलित कहते हैं । जोड़ का चिह्न + है । वेदों में जोड़ के लिए इन शब्दों का प्रयोग मिलता है :

(क) 'च' (और) शब्द : अथर्ववेद के एक सूक्त में इसके अनेक उदाहरण हैं ।[१] जैसे - षष्टि: च षट् च (६०+६ = ६६), चत्वार: चत्वारिंशत् च (४ +४० =४४), त्रय: त्रिंशत् च (३ +३० =३३), द्वौ च विंशति: च (२ + २० = २२) । ऋग्वेद में एक बड़ी संख्या ३३३९ के लिए च शब्द के द्वारा जोड़ना बताया है । त्रीणि शता, त्री सहस्राणि, त्रिंशत् च, नव च (३०० + ३००० + ३० + ९ = ३३३९) ।[२]

(ख) साकम् (साथ) शब्द : ऋग्वेद में ९९ के लिए 'नव साकं नवती:' (९ + ९० = ९९) ।[३] ३६० के लिए 'त्रिशता साकं षष्टि:' (३००+६०=३६०)

(ग) बिना किसी शब्द के प्रयोग के : किसी शब्द का प्रयोग किए बिना यदि संख्याएँ एक साथ दी जाती हैं, तो उनका अर्थ 'जोड़' है । जैसे - ११ से ९९तक के शब्द । एकादश (१+१० =११), अष्टाशीति (८+८० =८८),नवनवति (९+९०=९९) ।

जोड़ से संबद्ध कुछ शब्द ये हैं : १. योज्य (जिसमें कोई संख्या जोड़ी जाती है), २. योजक (जोड़ी जाने वाली संख्या), ३. योग (दोनों संख्याओं का जोड़) ।

---

१. अथर्व० १९.४७.३ से ५
२. ऋग्० ३.९.९ ; १०.५२.६
३. ऋग्० ४.२६.३

२. व्यकलित (घटाना, Subtraction)

किसी राशि में से किसी राशि को घटाने को व्यकलित या घटाना कहते हैं। घटाने के लिए अन्य शब्द ये हैं : व्यकलन, व्युत्कलित, व्युत्कलन, वियोग, शोधन, पातन। जिसमें से घटाया जाता है, उसे वियोज्य (या सर्वधन Minuend) और जिसे घटावें, उसे वियोजक (Subtrahend) कहते हैं। जो बचता है, उसे शेष या अन्तर (Remainder) कहते हैं। घटाना का चिह्न (-) है।

वेदों में 'घटाना' के लिए कोई निश्चित शब्द नहीं है। इसके लिए कुछ शब्द दिए गए हैं, जिनसे घटाना अर्थ निकलता है। ये शब्द हैं :

१. 'अवम' (कम) : अथर्ववेद के एक मंत्र में घटाने के लिए 'अवम' शब्द दिया गया है।[१] इस सूक्त में ११ संख्या से संबद्ध अंक इस इस प्रकार दिए गए हैं : ९९, ८८, ७७, ६६, ५५, ४४, ३३, २२, ११। मंत्र में कहा गया है कि - 'एकादशावमा:' अर्थात् प्रत्येक संख्या ११ कम होती गयी है। कम के लिए 'अवम' शब्द है। यह उदाहरण जोड़, घटाना और गुणा तीनों के लिए अत्युत्तम है। जैसे : **(क) जोड़ :** नीचे से ऊपर की ओर। ११+११ = २२, २२ + ११ = ३३, ३३ + ११ = ४४। इसी प्रकार ९९ तक ११ जोड़ते चले जाएँगे।

(ख) घटाना : ऊपर से नीचे की ओर। ९९ -११ = ८८, ८८-११ = ७७, ७७-११ = ६६, ६६ - ११ = ५५, ५५ - ११ = ४४, ४४ - ११ = ३३, ३३-११ = २२, २२ - ११ = ११।

(ग) गुणा : नीचे से ऊपर की ओर गुणा। यह ११ का पहाड़ा ९९ तक हो जाता है। ११ x १ = ११, ११ x २ = २२, ११ x ३ = ३३, ११ x ४ = ४४, ११ x ५ = ५५। इसी प्रकार ११ x ९ = ९९ तक गुणनफल है।

२. ऊन, एकोन, एकान्न शब्द (एक कम) : वेदों में 'एक कम' के लिए इन शब्दों का प्रयोग है। ऊन और न्यून (नि + ऊन) दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है - कम या एक कम। एकोन (एक + ऊन) का अर्थ है - एक कम। एकान्न शब्द एकात् + न = एकान्न है, अर्थात् एक संख्या से कम, एक कम।

---

१. नवतिर्नव, अशीतिः अष्टा, सप्त सप्ततिः, षष्टिः च षट्, पंचाशत् पञ्च, चत्वारः चत्वारिंशत् च, त्रयः त्रिंशत् च, द्वौ च विंशतिः, एकादशावमाः।
अथर्व० १९.४७.३ से ५

(क) ऊन : वेदों में 'ऊन' शब्द का अनेक स्थानों पर न्यून या कम अर्थ में प्रयोग है। जैसे - 'तन्वा ऊनम्'[२] (जो शरीर में कमी है), 'न' कुतश्चन ऊन:'[३] (वह ब्रह्म किसी ओर से भी कम नहीं है)। अथर्ववेद के एक मंत्र में 'पूर्ण' का विलोम शब्द 'ऊन' दिया गया है।[४] पूर्णेन .... ऊनेन।

(ख) एकोन (एक कम) : १९, २९, ३९ आदि सभी शब्दों में इसका उपयोग हुआ है। जैसे - एकोनविंशति (एक कम २० अर्थात् १९), एकोनत्रिंशत् (२९), एकोनसप्तति (६९), एकोननवति (८९) आदि।

(ग) एकान्न (एक कम) : तैत्तिरीय संहिता में 'एकान्न' का प्रयोग बहुत मिलता है।[५] जैसे - एकान्नविंशति (२०-१ = १९), एकान्नचत्वारिंशत् (४०-१=३९), एकान्नशत (१००-१ = ९९)।

३. छिद्र (न्यून, कम), अछिद्र (पूर्ण) : वेदों में छिद्र शब्द का अर्थ 'छेद' भी है और न्यून अर्थ में भी इसका प्रयोग हुआ है। 'यत् मे छिद्रं चक्षुषः हृदयस्य वा' मेरी आँखों में और हृदय में जो कुछ न्यूनता या कमी है।[६] इसे विपरीत 'अछिद्र' शब्द का प्रयोग पूर्ण अर्थ में हुआ है। जैसे - 'अच्छिद्रं शर्म' अर्थात् पूर्ण सुरक्षा।[७]

वेदों में 'ऋण' शब्द का प्रयोग कर्ज (Debt) अर्थ में है, न्यून या घटाना अर्थ नहीं।[८]

ऋग्वेद और यजुर्वेद में घटाने का स्पष्ट उल्लेख है। इसमें उल्लेख है कि ४ वाणी हैं, इनमें से ३ गुप्त हैं और एक प्रकट। चौथी को मनुष्य बोलते हैं।[९] अर्थात् ४-३ = १। इन ३ +१ को मिलाकर ४ वाणियाँ हैं। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि अदिति के ८ पुत्र हैं, उनमें से ७ अलग हुए और आठवाँ सूर्य है।[१०] अर्थात् ८-७ = १। आठवाँ पुत्र सूर्य हुआ। एक अन्य मंत्र में २ में से १ घटाया गया है और उसे 'तयोरन्यः' अर्थात् उनमें से एक कहा है। ईश्वर और जीव दो तत्त्व हैं, इनमें से एक जीव फल भोगता है, दूसरा नहीं।[११] यजुर्वेद में भिन्न का प्रयोग करते हुए कहा है कि पुरुष एक है, उसमें से तीन पाद (३/४) ऊपर गया और एक पाद (१/४) यह संसार है,[१२] अर्थात् १ - ३/४ = १/४ हुआ।

---

२. यजु० ३.१७ ३. अथर्व० १०.८.४४
४. दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते। अथर्व० १०.८.१५
५. एकान्नविंशति, एकान्नचत्वारिंशत्, एकान्नशत। तैत्ति० ७.२.११
६. यजु० ३६.२ ७. ऋग्० ५.६२.९
८. यथा ऋणं संनयामसि। ऋग्० ८.४७.१७। ९. चत्वारि वाक्। ऋग्० १.१६४.४५
१०. अष्टौ पुत्रासो अदितेः०.. सप्तभिः पुत्रैः०। ऋग्० १०.७२.८-९
११. द्वा सुपर्णा.. तयोरन्यः०। ऋग्० १.१६४.२०
१२. त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादः०। यजु० ३१.४

३. गुणन (Multiplication)

किसी संख्या को किसी संख्या से गुणा करने को गुणन कहते हैं । जिस संख्या में अन्य संख्या से गुणा किया जाता है, उसे 'गुण्य' (Multiplicand) कहते हैं । जिस संख्या से गुणा किया जाता है, उसे गुणक (Multiplier) कहते हैं । गुणा करने से जो राशि प्राप्त होती है, उसे 'गुणन फल' (Product of Multiplication) कहते हैं । गुणा के लिए (x) संकेत का प्रयोग किया जाता है । गुणन के अन्य पर्याय हैं - हनन, वध, घात, क्षय आदि ।

गुणन के लिए 'हनन' और गुणनफल के लिए 'प्रत्युत्पन्न' शब्दों का भी प्रयोग होता था ।

वेदों में गुणन के लिए ये विधियाँ अपनाई गयी हैं :

(क) बिना प्रत्यय के गुणन-कार्य : कोई शब्द या प्रत्यय लगाए बिना गुणन कार्य होता है । जैसे मैत्रायणी संहिता में उल्लेख है कि २ वर्ष में २४ और ३ वर्ष में ३६ मास होते हैं । १ वर्ष = १२ मास, २ वर्ष = १२ x २ = २४ मास । ३ वर्ष = १२ x ३ = ३६ मास ।[१]

ऋग्वेद में २ का पहाड़ा १० तक दिया गया है ।[२] जैसे : २ x १ = २, २ x २ = ४, २ x ३ = ६, २ x ४ = ८, २ x ५ = १० । एक अन्य मंत्र में १० का पहाड़ा २० से लेकर १०० तक दिया गया है ।[३] जैसे १० x २ = २०, १० x ३ = ३०, १० x १० = १०० । इसी प्रकार अथर्ववेद में ११ का पहाड़ा ११ से ९९ तक दिया है ।[४] इसमें उलटी ओर से चले हैं । जैसे : ११ x ९ = ९९ , ११ x ८ = ८८, ११ x ३ = ३३, ११ x २ = २२, ११ x १ = ११ । अथर्ववेद में २१ के लिए त्रिषप्त, अर्थात् ३ x ७ = २१ दिया है ।[५]

(ख) स्- प्रत्यय लगाकर गुणनकार्य : स् प्रत्यय लगाकर द्वि का द्विः और त्रि का त्रिः बनता है । इसका अर्थ है - दोबार, तीन बार । जैसे ऋग्वेद में २० के लिए द्विर्दश है, अर्थात् १० x २ = २० ।[६] काठक संहिता में ३३ के लिए 'त्रिः एकादश' है, अर्थात् ११ x ३ = ३३ ।[७] ऋग्वेद में १८० के लिए 'त्रिः षष्टिः' प्रयोग है, अर्थात् ६० तीन बार, ६० x ३ = १८० ।[८]

---

१. त्रयः संवत्सराः, तेषां षट्त्रिंशत् पूर्णमासाः । मैत्रा० १.१०.८

२. द्वाभ्याम्, चतुर्भिः, षड्भिः, दशभिः ।। ऋग्० २.१८.४

३. विंशत्या, त्रिंशता ... नवत्या, शतेन । ऋग्० २.१८.५ और ६

४. नवतिर्नव, अशीतिः अष्टा, ..द्वौ च विंशतिः, एकादश । अ० १९.४७ .३ से ५

५. ये त्रिषप्ताः० । अ० १.१.१ ६. द्विर्दश । ऋग्० १.५३.९

७. त्रिः एकादशाः त्रयस्त्रिंशाः । काठक० ३८.११

८. त्रिः षष्टिः । ऋग्० ८.९६.८

(ग) संख्याशब्दों से वृत् लगाकर गुणनकार्य : 'गुना' अर्थ में 'वृत्' लगाकर एकवृत् (एक गुना), द्विवृत् (दो गुना), त्रिवृत् (त्रिगुना) आदि शब्द बने हैं । जैसे - अथर्ववेद में 'एकवृत्' अर्थात् एकगुना, १ x १ = १ प्रयोग है ।[९] इसका अर्थ है - वह अकेला है । काठक संहिता में 'दुगुना' के अर्थ में 'द्विवृत्' प्रयोग है । दुगुना सोना दक्षिणा में दे ।[१०] ऋग्वेद में 'तिगुना' के अर्थ में त्रिवृत् प्रयोग है । त्रिवृद् अन्नम् (तिगुना अन्न) ।[११]

(घ) गुणन अर्थ में ता और धा प्रत्यय : ऋग्वेद में 'गुना' अर्थ में 'ता' और 'धा' प्रत्ययों के प्रयोग हैं ।[१२] 'द्विता' (दुगुना या दो प्रकार से) का प्रयोग है ।[१३] चतुर्धा और चतुर्गुण का अर्थ है - चौगुना । चतुर्गुण का प्रयोग शतपथ ब्राह्मण में हुआ है ।[१४] इसी प्रकार 'चतुर्विध' का अर्थ है - चार प्रकार का, चार ढंग से ।

(ङ) गुणन अर्थ में कृत्वः प्रत्यय : वेदों में गुणन अर्थ में 'कृत्वः' प्रत्यय का प्रयोग भी मिलता है । पाणिनि ने इसे कृत्वसुच् (कृत्वस् = कृत्वः) प्रत्यय (अष्टा० ५.४.१७) कहा है । तैत्तिरीय और मैत्रायणी संहिता में इसके उदाहरण मिलते हैं । जैसे - त्रिःकृत्वः (तिगुना), पञ्चकृत्वः (पाँच गुना) षट्कृत्वः (छहगुना), अष्टौ कृत्वः (आठ गुना) । इसी प्रकार दशकृत्वः, एकादशकृत्वः और द्वादशकृत्वः (बारहगुना) प्रयोग मिलते हैं ।[१५]

(च) गुणन अर्थ में कृत् प्रयोग : एक अर्थ में समान (स) शब्द से कृत् लगाकर सकृत् (एक गुना, एक बार) प्रयोग बनता है । ऋग्वेद में इसका 'एकवार' अर्थ में प्रयोग मिलता है ।[१६]

---

९. एकवृद् एक एव । अ० १३.४.१२
१०. द्विवृद् हिरण्यं दक्षिणा । काठक० ११.४
११. ऋग्० १.१४०.२
१२. कृणुत द्विता । ऋग्० १०.४८.९
१३. द्विधा० । ऋग्० १०.५६.६
१४. शत०ब्रा० ३.३.२.९
१५. तैत्ति० सं० ६.१.१ । ६.५.५ । पंचकृत्वः ६.४.४ । द्वादश कृत्वः ६.४.५ । मैत्रा० सं० ४.१.१० । ४.५.७ । ३.७.४ ।
१६. सकृत्० । ऋग्० १.१०५.१८

यजुर्वेद के दो महत्त्वपूर्ण मंत्र

यजुर्वेद में दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मंत्र हैं । इनमें एक में १ से ३३ तक की विषम संख्याएँ दी हैं ।[१] दूसरे में ४ से ४८ तक ४ का पहाड़ा दिया है ।[२] इन मन्त्रों को एक साथ आमने-सामने पढ़ने पर गणित की अधिकांश क्रियाएँ स्पष्ट दीखती हैं । जोड़, घटाना, गुणा और भाग तो है ही । साथ ही वर्ग और वर्गमूल की प्रक्रिया भी स्पष्ट हो जाती हैं । ये संख्याएँ इस प्रकार हैं :

(क) विषम संख्याएँ : १,३,५,७,९,११,१३,१५,१७,१९, २१,२३, २५,२७,२९,३१,३३ ।

(ख) सम संख्याएँ : ४,८,१२,१६,२०,२४,२८,३२,३६,४०,४४, ४८ ।

१. जोड़ : (क) की दो संख्याओं को जोड़ते जाइये, (ख) भाग में उनके उत्तर मिलते जायेंगे । मंत्र में ३,५,७, आदि शब्द दो बार पढ़े गए हैं । अत: ये दोनों ओर कार्य करते हैं । जैसे १+३ = ४ । ३ +५=८ । ५+७ = १२ । ७ + ९ = १६ । ९ + ११ = २० । ११+१३ = २४ । १३ + १५ = २८ आदि ।

२. घटाना : ठीक इसका उलटा करने पर घटाने की प्रक्रिया हो जाएगी । (ख) भाग में से (क) भाग की संख्याएँ घटाने पर शेष बचने वाली संख्या मिलती जाएंगी । केवल (क) भाग में उलटी ओर से २ घटावें, उत्तर मिलता जाएगा । इसी प्रकार (ख) भाग में ४ घटाते जाएँ , उत्तर मिलता जाएगा ।

(क) जैसे - ४ - १ = ३ । ८ - ३ = ५ । १२ - ५ = ७ । १६ - ७ = ९ । २० - ९ = ११ । २४ - ११ = १३ ।

(ख) क भाग की संख्याओं में से २ घटाने पर पूर्ववर्ती संख्या उत्तर है । जैसे - ३३ -२ = ३१ । ३१ - २ = २९ ।

(ग) ख भाग की संख्याओं में से उलटी ओर से ४ घटाने पर पूर्ववर्ती संख्या उत्तर है । जैसे : ४८ -४ = ४४ । ४४ - ४ = ४० । ४० - ४ = ३६ ।

३. गुणा करना : ख भाग में ४ का पहाड़ा है । क्रमश: १,२,३ का गुणा करते जाइएगा, उत्तर प्राप्त होता जाएगा । जैसे - ४ x १ = ४ । ४ x २ = ८ । ४ x ३ = १२ । ४ x ४ = १६ । ४ x १० = ४० । ४ x ११ = ४४ । ४ x १२ = ४८ ।

---

१. एका च मे तिस्रश्च मे, पञ्च, सप्त, नव, ... त्रयस्त्रिंशत्० । यजु० १८.२४

२. चतस्र: अष्टौ, द्वादश, षोडश, विंशति: .... अष्टाचत्वारिंशत् । यजु० १८.२५

४. भाग देना : ख भाग में ही क्रमशः १, २,३, ४ का भाग देने पर ४ उत्तर आता जाएगा । जैसे - ४ ÷ १ = ४ । ८ ÷ २ = ४ । १२ ÷ ३ = ४ । १६ ÷ ४ = ४ ।

(ख) ख भाग वाली संख्याओं में एक - एक संख्या छोड़ते जाएँ और ४ का भाग दें तो भाग (क) वाली संख्याएँ क्रमशः उत्तर होंगी । जैसे ४ ÷ ४ = १ । १२ ÷ ४ = ३ । २० ÷ ४ = ५ । २८ ÷ ४ = ७ । ३६ ÷ ४ = ९ ।

इन मंत्रों से वर्ग और वर्गमूल निकालने की विधि का आगे वर्णन किया जायेगा ।

४. भाग, भागहार (Division)

प्राचीन ग्रन्थों में भाग के लिए भागहार शब्द का प्रयोग हुआ है । इसके अन्य पर्याय शब्द हैं - भाजन, हरण, छेदन आदि । जिस संख्या को किसी अन्य संख्या से भाग दिया जाता है, उसे भाज्य या हार्य (Dividend) कहते हैं । जिस संख्या से भाग देते हैं, उसे भाजक, भागहार, हार, छेद या हर (Divisor) कहते हैं । भाग देने पर जो उत्तर आता है, उसे लब्धि या लब्ध (Quotient) कहते हैं ।

वेदों में 'भाग' शब्द का प्रयोग भाग या हिस्सा (Share) अर्थ में अनेक मंत्रों में हुआ है । ऋग्वेद में भाग का हिस्सा अर्थ में प्रयोग है, 'इन्द्र ने मुझे मेरा हिस्सा दिया' ।[१] अथर्ववेद में 'द्विभागधनम्' प्रयोग है ।[२] इसका अर्थ है - 'बड़े भाई को पूरी संपत्ति का दो हिस्सा धन मिला' । अन्य मंत्रों में भी भागः, भागम् , भागस्य, भागे आदि प्रयोग मिलते हैं ।[३]

भाग अर्थ को प्रकट करने के लिए इन धातुओं का प्रयोग हुआ है :

(१) भज् धातु : 'यो रत्ना भजति मानवेभ्यः[४] - जो मनुष्यों को रत्न बाँटता है ।

(२) वि-भज् धातु : 'भागं विभजासि'[५] - तुम मनुष्यों को उनका हिस्सा देते हो ।

(३) वि-धा धातु : यजुर्वेद के बाँटने अर्थ में विधा धातु का प्रयोग है । जैसे - 'अर्थान् व्यदधात्०'[६] परमात्मा ने प्रजा को यथायोग्य धन बाँटा है ।

१. महयं दीधरो भागम्० । ऋग्० ८.१००.१
२. द्विभागधनम् आदाय० । अथर्व० १२.२.३५
३. अथर्व० २.२४.१ । ६.८४.२ । ८.१.१ । २०.६७.५
४. ऋग्० ४.५४.१   ५. ऋग्० १.१२३.३
६. यजु० ४०.८

(४) वन् धातु : ऋग्वेद में वन् धातु का बाँटना अर्थ में प्रयोग है । 'अस्मभ्यं वनसे रत्नम्०'[७] तुम हमें रत्न बाँटते हो, देते हो ।

(५) सन् धातु : ऋग्वेद में वन् धातु बाँटने अर्थ में प्रयोग है । 'सनोति वाजम्०'[८] वह अन्न बाँटता है ।

(६) धा प्रत्यय : भाग अर्थ को प्रकट करने के लिए धा प्रत्यय का प्रयोग हुआ । द्विधा, द्वेधा (दो हिस्से में), त्रिधा, त्रेधा (तीन हिस्से में), चतुर्धा (चार हिस्से में), पञ्चधा (पाँच हिस्से में) इसी प्रकार, षोढा, अष्टधा, दशधा, द्वादशधा आदि । इन शब्दों के प्रयोग वेदों में मिलते हैं ।

(७) शः प्रत्यय : एकैकशः (एक-एक करके)[९]

भाग देना : पूर्वोक्त सम संख्या वाले मंत्र में सम संख्याएँ दी गयी हैं ।[१०] ४,८,१२,१६,२०,२४,२८,३२,३६,४०,४४,४८ । इनमें क्रमशः ४ का भाग देने पर क्रमश : १,२,३,४,५,६,७,८,९,१०,११,१२ उत्तर आएँगे ।

अथर्ववेद के मंत्रों (१९.४७.३ से ५) में ११ अंक के ९ तक गुणा अंक हैं : ९९, ८८, ७७, ६६ आदि । इनमें ११ का भाग देने पर ९,८,७,६ आदि उत्तर आएँगे ।

५. भिन्न-परिकर्म (Fractions)

भिन्न या बटा के लिए वेदों में कुछ शब्द मिलते हैं । यजुर्वेद में चतुर्थांश अर्थात् १/४ के लिए 'पाद' शब्द का प्रयोग हुआ है । मंत्र का कथन है कि परमात्मा का त्रिपाद् अर्थात् ३/४ अंश संसार के बाहर है और एक पाद अर्थात् १/४ अंश यह संसार है ।[११]

मैत्रायणी संहिता में कुछ भिन्नों के लिए ये पारिभाषिक नाम दिए गए हैं : कला १/१६, कुष्ठा १/१२, शफ १/८, पाद या पद १/४ ।[१२]

वेदों में भाग या हिस्से (Parts) के अर्थ में अंश और भाग शब्दों का प्रयोग हुआ है ।[१३]

---

७. ऋग्० १.१४०.११ ८. ऋग्० ३.२५.२

९. शत० ब्रा० १९.१ १०. चतस्रः०, यजु० १८.२५

११. त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः, पादोऽस्येहाभवत् पुनः । यजु० ३१.४

१२. कलया ते क्रीणानि, कुष्ठया, शफेन, पदा । मैत्रा० ३.७.७

१३. अंशः । ऋग्० ७.३२.१२ । भागम् । ऋग्० ८.१००.१

आधा अर्थात् १/२ के लिए अर्ध और नेम शब्दों का प्रयोग हुआ है ।[१४] एक-तिहाई अर्थात् १/३ को लिए त्रेधा, त्रिधा शब्द मिलते हैं ।[१५] इसी प्रकार डेढ़ (१+१/२) के लिए 'अध्यर्ध' शब्द है ।[१६] वेदों में समस्त पदों में 'अवि' शब्द का अर्थ है - ६ मास या आधा वर्ष । अत: यजुर्वेद में डेढ़ वर्ष के लिए त्र्यवि शब्द और ढाई वर्ष के लिए पंचावि शब्द तथा साढ़े तीन के लिए तुर्यवाट् (तुर्यवाह्) शब्द हैं ।[१७]

इसी प्रकार १/७ और १/१० के लिए ये प्रयोग हैं - सप्तनाम् एकम्, दशानाम् एकम् ।[१८]

ऋग्वेद आदि में सौवें और सौवें हिस्से (१/१००) के लए 'शततम' शब्द का प्रयोग हुआ है ।[१९] एक-हजारवें हिस्से (१/१०००) के लिए 'सहस्रतम' शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय संहिता और तांड्य महाब्राह्मण में मिलता है ।[२०] सहस्रधा (हजारवाँ हिस्सा) शब्द १/१००० हिस्से का भाव प्रकट करता है ।[२१]

शुल्ब सूत्रों में 'बटा' के अर्थ में 'भाग' शब्द का प्रयोग मिलता है । जैसे, १/५ के लिए 'पंचम भाग' शब्द, १/१० के लिए 'दशमभाग' शब्द । साढ़े तीन, साढ़े चार आदि में साढ़े (सार्ध) के लिए अर्ध शब्द और अगली संख्या दी जाती है । जैसे ३+१/२ को अर्धचतुर्थ, ४+१/२ को अर्धपंचम, ४९+१/२ को अर्धपंचाशत् ।[२२]

---

१४. नेम:, अर्ध: । ऋग्० १०.२७.१८
१५. त्रेधा त्रयाणि । तैत्ति० सं० ४.२.२.१ । त्रिधा, ऋग्० २.३.१०
१६. अध्यर्धेड । तांड्य महाब्राह्मण १०.१२.४
१७. त्र्यवि:, पंचावि:, तुर्यवाट् । यजु० १८.२६
१८. ऋग्० १०.५.६ । दशानाम् एकम् । ऋग्०१०.२७.१६
२९. शततमाविवेषी: । ऋग्० ७.१९.५
२०. सहस्रतम्या, तै० सं० ७.१.६.१ । सहस्रतमी, तां०महा० २१.१.३
२१. सहस्रधा । ऋग्० १०.११४.८ । अ० १०.७.९
22. B. Datta, The Science of Sulba. PP. 212-216

वर्ग, वर्गमूल (Square, Square-root)

वेदों में स्पष्ट रूप से वर्ग, (Square), वर्गमूल (Square-root), घन (Cube) और घनमूल (Cube-root) का उल्लेख नहीं है । जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि वर्ग और वर्गमूल का केवल संकेत है । घन और घनमूल का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संकेत नहीं मिलता है, आर्यभट, भास्कर आदि के ग्रन्थों में वर्ग के लिए 'कृति' शब्द का प्रयोग है ।

यजुर्वेद में दो स्थानों पर विषम संख्याओं का उल्लेख है । दोनों स्थानों पर १ से ३३ तक की विषम संख्याएँ दी गयी हैं ।[१] मंत्र १८.२४ में १ से ३३ तक विषम संख्याएँ ये दी गयी हैं : १,३,५,७,९,११,१३,१५,१७,१९,२१,२३,२५, २७,२९,३१,३३ । इस प्रकार ये १७ अंक हैं । इनसे १ से १७ तक का वर्ग और वर्गमूल निकाला जा सकता है ।

वर्ग निकालना : जिस संख्या का वर्ग निकालना हो, उसके लिए उतनी ही विषम संख्याएँ लेनी होंगी । जैसे १ के लिए केवल १ विषम संख्या, २ के लिए २ विषम संख्याएँ, ३ के लिए ३ विषम संख्याएँ, १० के लिए १० विषम संख्याएँ । जैसे : १ से १० तक के वर्ग के लिए १० तक की विषम संख्याएँ लेकर उन्हें जोड़ लें । वही वर्ग की संख्या होगी ।

(१) १ + ० = १

(२) १ + ३ = ४ (२ का वर्ग) २^{२}

(३) १ + ३ + ५ = ९ (३ का वर्ग) ३^{२}

(४) १+३+५+७ = १६ (४ का वर्ग) ४^{२}

(५) १+३+५+७+९ = २५ (५ का वर्ग) ५^{२}

(६) १+३+५+७+९+ = ११ = ३६ (६ का वर्ग) ६^{२}

(७) १+३+५+७+९+११+१३ = ४९ (७ का वर्ग) ७^{२}

(८) १+३+५+७+९+११+१३+१५ = ६४ (८ का वर्ग) ८^{२}

(९) १+३+५+७+९+११+१३+१५+१७ = ८१ (९ का वर्ग) ९^{२}

(१०) १+३+५+७+९+११+१३+१५+१७+१९ = १०० (१० का वर्ग)१०^{२}

इसी प्रकार १ से ३३ तक १७ विषम संख्याओं का जोड़ २८९ होगा और यह १७ संख्या का वर्ग है । श्रीधर, महावीर, भास्कर द्वितीय आदि ने भी इस विधि का उल्लेख किया है ।

---

१. यजु० १४.२८- ३१ । यजु० १८.२४

वर्गमूल निकालना : वर्ग निकालने में १,३,५ आदि विषम संख्याओं का जोड़ लेते हैं, किन्तु वर्गमूल निकालने में उन विषम संख्याओं का जोड़ नहीं लेना है, केवल इतना गिनता है कि कितनी विषम संख्या ली गयी हैं । इस प्रकार वर्ग का वर्गमूल निकलता जाएगा । १ से ३३ तक विषम संख्याओं में केवल १७ वर्गमूल होते हैं । जैसे -

वर्ग

तीन का वर्ग १ + ३ + ५ = ९

पाँच का वर्ग १ + ३ + ५ + ७ + ९ = २५

छह का वर्ग १ + ३ + ५ + ७ + ९ + ११ = ३६

वर्गमूल

९ का वर्गमूल - ३, इसमें १, ३, ५ = ३ संख्याएँ हैं ।

२५ का वर्गमल - ५, इसमें १, ३, ५, ७, ९ = ५ संख्याएँ ।

३६ का वर्गमूल - ६, इसमें १, ३, ५, ७, ९, ११ = ६ संख्याएँ ।

इसी प्रकार १७ तक के वर्ग के १७ वर्गमूल निकलते जायेंगे । घन और घनमूल का कोई संकेत प्राप्य नहीं है ।

शून्य (Zero) का महत्त्व

शून्य के लिए प्रयुक्त शब्द : शून्य के लिए इन शब्दों का प्रयोग मिलता है : ख, गगन, अम्बर, आकाश, अन्तरिक्ष, अनन्त, तुच्छ्य, रिक्त, वशी, वशिक, नभ, पूर्ण ।

शून्य और शून शब्द : वेदों में शून्य और शून दोनों शब्दों का प्रयोग रिक्त, खाली, अभाव, रिक्तता (Empty, Emptiness) अर्थ में हुआ है ।

मा शूने भूम । ऋग्० १.१०५.३ (हम कभी अभावग्रस्त न हों)

शून्यैषी निर्ऋते । अ० १४.२.१९ । दरिद्रता अभाव करती है ।)

अशून्योपस्था । छान्दोग्य ब्रा० १.१.११ (गोदभरी, पुत्रादि से युक्त)

शून्य और जीरो (Zero) का संबन्ध : भाषाविज्ञान की दृष्टि से शून्य, ज़ीरो और साइफर (Cipher, Cypher) ये शब्द परस्पर संबद्ध हैं । शून्य का दो प्रकार से विकास हुआ । शून्य शब्द का अरबी में अनुवाद हुआ - सिफ्र । यह सिफ्र दो मार्गों से होता हुआ यूरोप पहुँचा और वहाँ साइफर और ज़ीरो हुआ ।

	संस्कृत	**अरबी**	**स्पेनिश**	**फ्रेंच**	**इंग्लिश्**
१.	शून्य	सिफ्र	सिप्रा	सिफ्रे	साइफर (Cipher)
२	शून्य	सिफ्र	लेटिन - जैफ्रम	ज़ीरो	ज़ीरो (Zero)

अरबी, का सिफ्र पुरानी फ्रेंच में सिफ्रे हुआ और इंग्लिश् में साइफर। वही नई फ्रेंच और इंग्लिश् में ज़ीरो हुआ।

शून्य क्या है ?

शून्य वस्तुतः विश्व के लिए एक पहेली है। इसका तात्त्विक विवेचन आज तक पूर्ण नहीं हुआ है। यह सृष्टि का आदि और अन्त है। इससे ही सृष्टि का प्रारम्भ होता है और इसमें ही लय होता है। इसको दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने अलग-अलग नाम दिए हैं। शून्य के लिए ही वेदों में 'ख' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'ख' के अनेक अर्थ वेदों में दिए गए हैं। ख का अर्थ है - आकाश, इन्द्रिय, रिक्त स्थान, छिद्र, द्वार, अन्तरिक्ष, स्वर्ग या देवलोक। जैसे -

१. **खे रथस्य** । ऋग्० ८.९१.७ (रथ के छिद्र में)
२. **कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि** (अ० १०.२.६) किसने ७ इन्द्रियां बनाईं)
३. **अंग्धि खम्** । ऋग्० १०.१५६.३ (आकाश को जल से सिक्त करो)
४. **विषाहि ... गृणते.. खम्** । ऋग्० ४.११.२ (हे अग्नि, भक्त को स्वर्ग दो)
५. **ओं खं ब्रह्म** । यजु० ४०.१७ (ब्रह्म आकाशवत् शून्य है)

शून्य का मान : शून्य के विषय में एक सुन्दर श्लोक मिलता है। जिसका भाव है : अंक के साथ दाहिनी ओर शून्य रखने से उस अंक का मान दस गुना अधिक हो जाता है। अंकों को पढ़ने में दाहिने से बाईं ओर जाना होता है। अतः 'अंकानां वामतो गतिः' कहा गया है।

अंकेषु शून्यविन्यासाद्, वृद्धिः स्यात् तु दशाधिका ।
तस्माद् ज्ञेया विशेषेण, अंकानां वामनो गतिः ।।

समयोचित-पद्यरत्नमालिका ।

दशमलव-स्थानमान- पद्धति : यह पद्धति भारत का सर्वोत्कृष्ट आविष्कार है। इस पद्धति में १ से ९ तक के अंक हैं तथा दसवाँ शून्य है। इसमें केवल १० चिह्न हैं , जिनके स्थानिक मानों को दशम पद्धति पर मान देकर सभी संख्याओं को व्यक्त किया जा सकता है। यही पद्धति विश्व के समस्त सभ्य देशों में प्रयुक्त हो रही

है । शून्य के आविष्कार के कारण दश, शत, सहस्र आदि संख्याओं को व्यक्त करना संसार के सबसे बड़े आविष्कारों में एक गिना गया है ।

गणित के मूर्धन्य विद्वान् प्रो० हाल्सटेड (G.B. Halsted) ने शून्य की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है - "शून्य के आविष्कार के महत्त्व की प्रशंसा कभी भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं कही जा सकती है । निरर्थक शून्य को केवल स्थान, संज्ञा, आकृति एवं संकेत ही नहीं, अपितु एक उपयोगी शक्ति प्रदान करना हिन्दू जाति की एक विशेषता है । यह निर्वाण के विद्युत्-शक्ति में परिवर्तित करने के तुल्य है । गणितसंबन्धी कोई भी एक अविष्कार ज्ञान एवं शक्ति को आगे बढ़ाने में इतना प्रबल सिद्ध नहीं हुआ है ।'[१]

हाल्सटेड का यह कथन सर्वथा सत्य है कि दशमलव-स्थानमान-पद्धति के आविष्कार ने शून्य को इतना अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है कि यह निरर्थक समझा जाने वाला शून्य बहुमूल्य रत्न बन गया है ।

वेदों में अतएव अनन्त[१] अपरिमित[२], असंख्यात,[३] असख्येय[४] आदि शब्द शून्य-स्थान के महत्त्व के बोध के लिए प्रयुक्त हुए हैं । कहीं पर ये शब्द ब्रह्म, शिव आदि के सूचक हैं और कहीं विभिन्न शक्तियों के लिए हैं । ऋग्वेद के एक मंत्र में 'दशान्तरुष्यादतिरोचमानम्' में दश (१०) के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इससे इसकी शक्ति गुप्त रूप से बहुत बढ़ती जाती है ।[५] 'दशान्तरुष्य' का अर्थ है - दस की संख्या के कारण गुप्तरूप से शक्ति का बढ़ जाना । अतएव सायण ने अर्थ किया है -

---

1. " The importance of the creation of Zero-mark can never be exaggerated. This giving to airy nothing, not merely a local habitation and a name, a picture, a symbol, but helpful power, is the characteristic of the Hindurace whence it sprang. It is like coining the Nirvana into dynamos, No single mathematical creation has been more potent for the general on-go of intelligence and power ."

- G.B. Halsted - On the foundation and technique of Arithmetic. 1912, P. 20

१. अनन्तः । ऋग्० १.११३.३ २. अपरिमितो यज्ञः । अ० ९.५.२१
३. असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राः । यजु० १६.५४
४. शतं सहस्रम् अयुतं न्यर्बुदम् असंख्येयम् । । अ० १०.८.२४
५. ऋग्० १०.५१.३

अन्तरुष्यं गूढम् आवासस्थानम् । तच्च स्थानं दशसंख्योपेतम् ।[६]

परार्ध और अवरार्ध : यजुर्वेद में एक से लेकर परार्ध तक की संख्याओं का उल्लेख है ।[७] परार्ध संख्या १८वां स्थान हैं । मंत्र में परार्ध शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है । परार्ध का अर्थ है - पर अर्थात् उत्कर्ष की ओर, अर्ध-आधा भाग । इसका अभिप्राय यह है कि धनात्मक संख्या एक (+१) से लेकर १८वें स्थान तक बढ़ते चले जाएँ तो प्रत्येक संख्या १० गुनी होती चली जाएगी । अतएव इनको 'दशगुणोत्तर संज्ञा' कहा गया है ।[८] परार्ध का अभिप्राय यह है कि १८ स्थान तक धनात्मक संख्याओं के जो ये नाम दिए गए हैं, वह पूरी संख्या का आधा भाग हैं । इसका आधा भाग 'ऋणात्मक संख्याएँ' हैं । इनको वेद में 'अवरार्ध' अर्थात् 'ऋणात्मक आधा भाग' कहा गया है । शतपथ ब्राह्मण में 'अवरार्धतः' और काण्व संहिता में 'अवरार्धः' का प्रयोग हुआ है ।[९] इसका अर्थ यह निकलता है कि जिस प्रकार १८ स्थान तक 'धनात्मक संख्याएँ' हैं, उसी प्रकार १८ स्थान तक 'ऋणात्मक संख्याएँ' होंगी और उनको शत, सहस्र आदि के आधार पर शतांश, सहस्रांश, लक्षांश (१००वाँ, १०००वाँ आदि) कहा जाएगा । यह गुणा (गुना) के विरुद्ध भाग (हिस्सा) अर्थ बताएगा । परार्ध और अवरार्ध शब्द दशमलव (शून्य) से पूर्व और बाद का अर्थ बताते हैं । यजुर्वेद में 'अतिदीर्घ और 'अतिह्रस्व' दो शब्द आए हैं ।[१०] अतिदीर्घ सूचित करता है कि बहुत बड़ी संख्या धनात्मक वृद्धि करते हुए 'परार्ध' तक जाएगी और 'अतिह्रस्व' बताता है कि बहुत छोटी संख्या ऋणात्मक रूप से घटते हुए 'अवरार्ध' $१०^{-१७}$ तक जाएगी ।

शून्य का अभिप्राय : शून्य का अभिप्राय 'अभाव' या 'नहीं' समझना बहुत बड़ी भूल है । शून्य का अभिप्राय पाणिनि के एक सूत्र 'अदर्शनं लोपः' (अष्टा० १.१.६०) से स्पष्ट होता है । व्याकरण में 'लोप' शब्द का अर्थ होता है - किसी वर्ण आदि का हट जाना या अदृश्य होना । पाणिनि ने स्पष्ट किया है कि लोप होने का अभिप्राय है - उस वर्ण आदि का अदर्शन (अदृश्य) हो जाना, न कि उसका अभाव । इसी प्रकार 'शून्य' का अर्थ है - वहाँ पर कोई संख्या अदृश्य रूप में विद्यमान है, जिसको हम एक - दो आदि अंकों से नहीं बता सकते हैं । यदि वस्तुतः

---

६. सायण, ऋग्० १०.५१.३

७. एका च ... अन्तश्च परार्धश्च । यजु० १७.२

८. दशगुणोत्तरं संज्ञाः । लीलावती, श्लोक ३

९. अवरार्धतः । शत०९.१.२.१६ । अवरार्धः । काण्व० ४.१.३.१

१०. अतिदीर्घं चातिह्रस्वम्० । यजु० ३०.२२

शून्य का अर्थ 'अभाव' हो तो १०, १००, १००१ आदि संख्याएँ बन ही नहीं सकती हैं। हम १०, १०० और १००० को एक ही कहेंगे, दश, सौ, एक हजार नहीं, क्योंकि १ संख्या के आगे एक, दो या तीन शून्यों का कोई अर्थ नहीं है, वे हैं ही नहीं। वास्तविकता यह है कि शून्य, कोई विशेष अंक न होने पर भी, अपना स्थान बनाए हुए है और वह जिस स्थान पर है, उसका स्थानमान बताता है। नही तो १०१ और १००१ को ११ पढ़ा जाएगा।

शून्य का स्वरूप : शून्य का स्वरूप यजुर्वेद के 'ओं खं ब्रह्म' (यजु० ४०.१७) मंत्र से स्पष्ट होता है। 'ख' अर्थात् शून्य ब्रह्म का स्वरूप है। गणित में 'ख' या 'शून्य' उस अनन्त, अपरिमित, अपरिमेय या असंख्येयशक्ति (ऊर्जा, Energy) का प्रतीक है, जिससे समस्त अंकों और संख्याओं की उत्पत्ति हुई है। वह धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) शक्तियों में विभक्त होकर धनात्मक परार्ध और ऋणात्मक अवरार्ध को सूचित करता है। इसके लिए धन या योग (Plus, +) और वियोग या ऋण (Minus, -) का चिह्न देकर धनात्मक और ऋणात्मक बड़ी से बड़ी संख्या को बताया जा सकता है।

मूल ऊर्जा (Energy) के प्रतीक इस शून्य को विज्ञान, दर्शन तथा अन्य शास्त्रों ने विभिन्न नाम दिए हैं। यह धनात्मक और ऋणात्मक शक्तियों के बीच में विद्यमान एक अदृश्य शक्ति है, जिसको गणित में शून्य या दशमलव (Decimal) के चिह्न द्वारा सूचित किया जाता है। अन्य स्थानों पर शून्य, सैकड़ा, हजार, लाख आदि स्थानमान को सूचित करता है।

शास्त्र	**धनात्मक (Positive)**	**शून्य (Zero)**	**ऋणात्मक (Negative)**
गणित	योग	शून्य	ऋण
विज्ञान	Proton	Atom (Neutron)	Electron
विज्ञान	Positive	Neutral	Negative
दर्शन	अस्ति (अस्तिकवाद)	आत्मा	नास्ति (नास्तिकवाद)
व्याकरण	स्फोट	शब्दब्रह्म	ध्वनि
दर्शन	सत्	ब्रह्म	असत्
दर्शन	भाव	ब्रह्म	अभाव
दर्शन	विद्या	ज्ञान	अविद्या

इससे ज्ञात होता है कि शून्य का ही धनात्मक विघटन एक, दो तीन आदि धनात्मक अंक है, और ऋ़णात्म्क विघटन ऋणात्मक - १, -२, -३ आदि दशमलव अंक है ।

शून्य और अनन्त : यजुर्वेद (४०.१७) में 'ओं खं ब्रह्म' कहकर शून्य को अनन्त और अपरिमेय बताया गया है । किसी भी संख्या में शून्य को जोड़ें, घटावें या गुणा करें तो उसका मान वही रहता है । उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है । भास्कराचार्य द्वितीय (११५० ई०) ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट किया है कि किसी भी संख्या को शून्य से भाग देने पर 'अनन्त' संख्या आती है । इस अनन्त राशि को ही 'खहर' कहा जाता है ।

वधादौ वियत् खस्य खं खेन घाते ।
खहारो भवेत् खेन भक्तश्च राशिः ।
अयमनन्तो राशिः खहर इत्युच्यते । बीजगणित श्लोक ३

भास्कर ने इस 'खहर' राशि की तुलना विष्णु (ब्रह्मा, अच्युत, ईश्वर) से की है । उसका कथन है :

अस्मिन् विकारः खहरे न राशौ -
अपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु ।
बहुष्वपि स्याद् लय-सृष्टि-कालेऽ -
नन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् । बीज०-श्लोक ४

अर्थात् प्रलय और सृष्टि के समय अनन्त अच्युत (विष्णु) में समस्त प्राणियों के लीन एवं निर्गत होने पर जैसे उसमें कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार इस 'खहर' राशि में किसी राशि को घटाने, जोड़ने आदि से कोई विकार (अन्तर, परिवर्तन) नहीं होता है । यही भाव निम्न श्लोक में भी मिलता है कि पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर भी पूर्ण ही बचता है, अर्थात् शून्य में से शून्य को निकाल लेने पर भी शून्य (पूर्ण) शेष बचता है । शून्य आकाश के तुल्य एक पूर्ण संख्या है । उसमें से घटाने आदि से कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ।। उपनिषदों में शान्तिपाठ

वेद में दशमलव-पद्धति का संकेत : ऋग्वेद के दो मंत्रों में दशमलव-पद्धति का संकेत मिलता है । इनमें यह भी संकेत मिलता है कि दशमलव-पद्धति कितने प्रकार से काम कर सकती है और इसके क्या लाभ हैं ।

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो
दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यः ।
दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ।।
ते अद्रयो दशयन्त्रास आशव -
स्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।। ऋग्० १०.९४.७ और ८

इन दो मंत्रों में दशमलव-पद्धति की इतनी विस्तृत व्याख्या की गई है कि उसका वर्णन करना संभव नहीं है। जिन शब्दों का मंत्रों में प्रयोग हुआ है, वे गूढ शब्द हैं। जो विशेषताएँ प्रकट होती हैं, वे संक्षेप में ये हैं :

१. दश अवनि : दशमलव-पद्धति के प्रयोग के १० क्षेत्र हैं। १ से १० तक के अंक १० क्षेत्रों में प्रयुक्त होकर १० x १० = १०० क्षेत्र बनाते हैं।

२. दश कक्ष्य : इनकी १० कक्षाएँ हैं। जोड़-घटाना, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल आदि।

३. दश योक्त्र : इनको १० प्रकार से प्रयुक्त कर सकते हैं। रेखागणित आदि में १० प्रकार के कोण आदि बनाना।

४. दश योजन : इनको १० प्रकार से जोड़-घटाना आदि में लगा सकते हैं।

५. दश अभीशु : ये १० दस प्रकार के अभीशु (Rein, Ray, Peg) शंकु, हैं। इनको जिधर चाहें, उधर मोड़ सकते हैं।

६. दश धुरा : ये १० प्रकार की धुरा (Yokes) है। इन्हें १० प्रकार से प्रयोग में ला सकते हैं।

७. दश यन्त्र : ये १० अंक दश यंत्र (मशीन) का काम करते हैं। इन दस अंकों को जहाँ चाहें, गणित में मशीन के तुल्य प्रयोग कर सकते हैं। इनमें १० प्रकार से नियंत्रण (Control) की क्षमता है। संख्या को चाहे धनात्मक, ऋणात्मक, गुणात्मक या विभाजक जो बनाना चाहें, बना सकते हैं।

८. अद्रयः - अद्रि का अर्थ - पर्वत, वज्र आदि है। इन अंकों से बड़ी से बड़ी संख्या को वज्र की तरह तोड़ सकते हैं।

९. आशवः-आशु का अर्थ है - शीघ्र, तीव्र। दशमलव-पद्धति अत्यन्त सरल और शीघ्र प्रभावकारी है। दशमलव पद्धति से कठिन से कठिन प्रश्न सरलता से शीघ्र हल हो सकते हैं।

१०. आधानं पर्येति हर्यतम् : इस दशमलव-पद्धति का प्रयोग अति रमणीय और सुन्दर है। इसका प्रयोग सर्वतोगामी है।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि दशमलव-पद्धति सर्वश्रेष्ठ पद्धति है। इसके द्वारा सभी प्रकार के प्रश्नों के उत्तर सरलता और शीघ्रता से प्राप्त किये जा सकते हैं।

अंकों का लेखन

ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में लेखनकला का किसी न किसी रूपमें प्रचलन था । यह लिपि किस रूप में थी, उसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता है । लिख् धातु का वेदों और ब्राह्मणग्रन्थों में अनेक स्थानों पर प्रयोग मिलता है । ऋग्वेद के एक मंत्र में वर्णन है कि 'उन्होंने मुझे ऐसी हजार गायें दीं, जिनके कानों पर ८ अंक लिखा हुआ था ।' कान पर ८ अंक पड़ी गायों को 'अष्टकर्णी कहते थे ।

सहस्रं ये ददतो अष्टकर्ण्यः । ऋग्० १०.६२.७

अथर्ववेद के एक मंत्र में 'संलिखितम्' का प्रयोग है । इसका अर्थ है - जिसके बारे में लिखा-पढ़ी हो चुकी है, ऐसे तुझको मैं जीतता हूँ ।[१] इससे ज्ञात होता है कि द्यूत आदि में लिखा -पढ़ी होती थी और उसके आधार पर धन वसूल किया जाता था । एक मंत्र में नोकीली वस्तु से खरोंच कर लिखने का वर्णन है ।[२] चित्ररूप में लिखने के अर्थ में भी लिख् धातु का प्रयोग है । 'किसने यह कर्करी (वीणा) का चित्र खींचा है ।[३] अथर्ववेद में ही वर्णन है कि गाय के दोनों कानों पर तांबे की शलाका से मिथुन (जोड़ा, दो का अंक या स्त्रीपुरुष) का चिह्न बनावे ।[४] मिथुन चिह्न से ज्ञात होता है कि जोड़ा या २ का चिह्न = दो लकीरों के रूप में होता होगा । अन्य मंत्रों में इस प्रकार के संकेत-चिह्नों को 'लक्ष्म' (चिह्न) नाम दिया गया है ।[५]

पाणिनि (५०० ई०पू०) ने स्पष्ट रूप से 'लिपि' शब्द का उल्लेख किया है । पाणिनि की अष्टाध्यायी में लिपि और लिबि (लिपि) दोनों शब्दों का लिपि के अर्थ में प्रयोग है । सुलेख लिखने वाले को लिपिकर और लिबिकर कहते थे ।[६]

पाणिनि और कात्यायन (चतुर्थ शती ई०पू०) ने स्पष्टरूप से यवनानी (यूनानी) लिपि का उल्लेख किया है ।[७] कात्यायन का कथन है कि यवनों (यूनानियों) की लिपि को 'यवनानी' कहते हैं ।[८]

१. अजैषं त्वा संलिखितम्० । अ० ७.५०.५
२. यद् यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन । अ० १२.३.२२
३. क एषां कर्करी लिखत् । अ० २०.१३२.८
४. लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अ० ६.१४१.२
५. (क) कृणुतं लक्ष्म-अश्विना । अ० ६.१४१.३
(ख) यो अस्याः कर्णौ० लक्ष्म कुर्व इति मन्यते० । अ० १२.४.६
६. दिवाविभा ... लिपिलिबि० । अष्टा० ३.२.२१
७. इन्द्रवरुण ... यवन .... आनुक् । अष्टा० ४.१.४९
८. यवनाल् लिप्याम् , यवनानां लिपिर्यवनानी । वार्तिक, ४.१.४९

पाणिनि ने गायों आदि के कान पर ५ या ८ अंक लिखने का दो सूत्रों में उल्लेख किया है ।[९] ये चिह्न या लक्षण पशु के स्वामी का बोध कराने के लिए या पहचान के लिए किए जाते थे । डा० मैकडानल आदि ने भी स्वीकार किया है कि गायों के कान पर आठ अंक आदि के चिह्न पहचान के लिए बनाए जाते थे ।[१०] संख्यावाचक पाँच और आठ आदि चिह्न गाय आदि के कानों पर इसलिए लिख जाता था कि इनके आधार पर ग्वाले अपनी गायों को पहचान सकें । इसके आधार पर प्रो० गोल्डस्टूकर का मत है कि प्राचीन भारत में लिखने-पढ़ने का प्रचलन था, क्योंकि ये चिह्न साधारण ग्वालों को समझने के लिए ही लगाए जाते थे ।[११]

इसी प्रकार मैत्रायणी संहिता (४.२.९), मानवश्रौतसूत्र (९.५. १ से ३), वाराह श्रौतसूत्र (परिशिष्ट), ऋक्तंत्र (सूत्र २१७), द्राह्यायण गृह्यसूत्र (३.१.४६) में २७ प्रकार के चिह्नों का उल्लेख है, जो पहचान के लिए पशुओं के कान आदि पर लगाए जाते थे ।[१२]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र (१.५) में लिपि का उल्लेख है । कौटिल्य ने (अ० १.१२) सांकेतिक लिपि (Shorthand Writing) के लिए 'संज्ञालिपि' नाम दिया है ।

बौद्ध और जैन ग्रन्थों में अनेक लिपियों का उल्लेख मिलता है । बौद्धग्रन्थ 'ललितविस्तर' में ६४ लिपियों के नाम दिए गए हैं । जैन ग्रन्थ "पन्नवणा-सूत्र' और 'समवायांग सूत्र' में १८ लिपियों के नाम हैं । इनमें ब्राह्मी, खरोष्ठी, जवणाणिया (यवनानी), अंकलिबि (अंकलिपि) और गणितलिबि (गणितलिपि) का उल्लेख है ।

---

९. (क) कर्णो वर्णलक्षणात् । अष्टा० ६.२.११
(ख) कर्णे .... अष्ट-पंच-मणि० । अष्टा० ६.३.११५

१०. वैदिक इन्डेक्स, १.४६ ।

11. T. Goldstucker, Panini, his place in Sanskrit Literature. Page 44

१२. विस्तृत विवरण के लिए देखें , डा० वासुदेवशरण अग्रवाल-कृत पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ २२० से २२२ और ३०६ से ३०७

मोहनजोदड़ों और हड़प्पा (४००० ई०पू०) के सिक्कों पर अंक और अक्षर लिखे हैं । इससे ज्ञात होता है कि लेखनकला का ज्ञान वैदिक युग से ही विद्यमान था । प्रारम्भ में लेखन कार्य के लिए भूर्जपत्र (भोजपत्र), ताड़पत्र, पाटी, लकड़ी आदि का प्रयोग होता था । कागज का प्रयोग बहुत बाद में हुआ।[१३]

बीजगणित (Algebra)

बीजगणित का अभिप्राय उस गणित है, जिसमें अंकों की सहायता के बिना संकेताक्षरों या वर्णों से गणित की क्रिया की जाती है । इस दृष्टि से वेदों में कोई सामग्री प्राप्त नहीं होती है । कतिपय संकेताक्षर मिलते हैं, परन्तु उनका प्रयोग गणितीय दृष्टि से नहीं हुआ है । जैसे -

ख = शून्य या आकाश । (खं ब्रह्म, यजु० ४०.१७)

क= प्रजापति या ईश्वर । (प्रजापतिर्वै कः, ऐत०ब्रा० २.३८)

परकालीन साहित्य में इस प्रकार के संकेताक्षरों का बहुत प्रयोग हुआ है । लीलावती आदि में ऐसे संकेताक्षर अनेक हैं । जैसे - भ (२७), नन्द (९), अग्नि (३), ख (०), बाण (५), सूर्य (१२), शैल (७) । अंक दाएँ से बाईं ओर पढ़े जाते हैं, अतः भनन्दाग्नि (३९२७), ख-बाण-सूर्य (१२५०) होते हैं । लीलावती, श्लोक ९८

ज्यामिति या रेखागणित (Geometry)

वेदों में रेखागणित-संबन्धी सामग्री सूत्ररूप में मिलती है । इसका विस्तृत विवरण शुल्बसूत्रों में मिलता है । वेदों में जो सामग्री मिलती है, उसकी संक्षिप्त रूपरेखा दी जा रही है ।

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों में रेखागणित के कुछ पारिभाषिक शब्द मिलते हैं । यज्ञवेदी के संबन्ध में प्रश्न किया गया है कि इसका क्या नाप था, इसकी क्या रूपरेखा थी, इसकी क्या परिधि थी, आदि ।

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानम्, आज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद् देवा देवमयजन्त विश्वे ।।

ऋग्० १०.१३०.३

---

१३. विस्तृत विवरण के लिए देखें : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ० २ से १६

इस मंत्र में रेखागणित से संबद्ध ये शब्द हैं :

१. प्रमा - नाप, परिमाण (Measurement)

२. प्रतिमा - नक्शा, रूपरेखा (Outline)

३. निदानम् - कारण, मूलसिद्धान्त (Basic Principles)

४. परिधि - घेरा (Circumference)

५. छन्द - नापने का साधन, रज्जु आदि । इसी को शुल्ब कहा गया है ।

६. प्रउग - शुल्बसूत्रों में समद्विबाहु त्रिभुज (Isosceles triangle) के लिए इस शब्द का प्रयोग है ।

ऋग्वेद के एक मंत्र में वृत्त (Circle) के बारे में आवश्यक विवरण मिलता है ।

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः
चक्रं न वृत्तं व्यतींरवीविपत् । ऋग्० १.१५५.६

मंत्र का कथन है कि एक वृत्त में ४ x ९० = ३६० अंश होते हैं । ऐसे कालचक्र को विष्णु घुमाता है । इस मंत्र में स्पष्ट संकेत है कि एक वृत्त में ९० अंश के ४ खंड (त्रिज्या, Radius) होते हैं ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में एक मंत्र मिलता है, जिसमें रेखागणित से संबद्ध कई महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं :

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन् साकं त्रिशता न शंकवो अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ।।
ऋग्० १.१६४.४८ ; अथर्व० १०.८.४

इसमें वर्षचक्र का वर्णन करते हुए ये पारिभाषिक शब्द दिये गये हैं । एक चक्र (Circle) है, उसमें १२ प्रधियाँ हैं, अर्थात् ३०-३० अंश पर १२ अरे हैं । पूरे चक्र में १२० अंश वाले ३ केन्द्र-बिन्दु हैं । पूरे चक्र में ३६० अंश हैं ।

यजुर्वेद के एक मंत्र में त्रिभुज की रूपरेखा दी गयी है ।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम्
अधः स्विदासीद् उपरि स्विदासीत् । यजु० ३३.७४

यह सूर्य की किरणों का वर्णन है । ये तिरछी आती हैं, फिर नीचे फैलती हैं और फिर ऊपर तिरछी जाती हैं । इस प्रकार त्रिभुज की तीन भुजाएँ होती हैं । नीचे एक रेखा और दोनों ओर दो तिरछी रेखाएँ । इस प्रकार त्रिकोण की अनेक आकृतियाँ बनाई जा सकती हैं ।

यज्ञवेदी और रेखागणित

ऋग्वेद[१] और तैत्तिरीय संहिता[२] में अग्नि को त्रिषधस्थ अर्थात् तीन स्थानों पर विराजमान कहा गया है। तीन प्रकार की अग्नियाँ हैं - १. गार्हपत्य, २. आहवनीय, ३. दक्षिण। शतपथ ब्राह्मण में इनके आकार का वर्णन है।[३] गार्हपत्य अग्नि की वेदी मंडलाकार (Circle), आहवनीय की चतुर्भुज (Square) और दक्षिणाग्नि की अर्धवृत्ताकार या अर्धचन्द्राकार (Semi-Circle) होती है। इसके लिए यह भी विधान है कि इनका क्षेत्रफल भी बराबर हो और यह एक वर्ग व्याम हो। (एक व्याम = ९६ अंगुल या ४ हाथ अर्थात् लगभग ६ फीट)।[४]

इसके लिए यह आवश्यक है कि वेदी बनाने वाले को रेखागणित का ज्ञान हो, जिससे वह वृत्त को चतुर्भुज में बदल सके और उसको अर्धवृत्ताकार बना सके।

शतपथ ब्राह्मण में कुछ वेदियों के निर्माण की विधि दी गई है।[५] विभिन्न प्रकार की वेदियों के निमार्ण की विस्तृत विधि तथा वृत्त को चतुष्कोण, चतुष्कोण को त्रिकोण एवं चतुष्कोण को वृत्त में परिवर्तन आदि की पूरी विधि रेखागणित के अनुसार समझाई गई है। सारे शुल्बसूत्र ग्रन्थ एक प्रकार से रेखागणितीय ग्रन्थ हैं। इनमें सामान्य से कठिनतम वेदियों के निर्माण की पूरी विधि वर्णित है।

रेखागणित की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण ये ४ शुल्बसूत्र हैं : १. बौधायन शुल्बसूत्र, २. आपस्तम्ब शुल्बसूत्र, ३. कात्यायन शुल्बसूत्र, ४. मानव शुल्बसूत्र।

विभिन्न प्रकार की वेदियों के निर्माण की विधि, उनके आकार-परिवर्तन आदि की विधि के विस्तृत और व्यापक अध्ययन के लिए कुछ उपयोगी ग्रन्थ भी लिखे गए हैं।[६]

डा० ए०के० बाग (A.K. Bag) ने विभिन्न वेदियों के आकार और परिमाण की संक्षिप्त रूपरेखा दी है।[७]

---

१. अग्ने .... त्रिषधस्थ। ऋग्० ५.४.८

२. अग्निं नरः त्रिषस्थे समिन्धते। तैत्ति० सं० ४.४.४.३

३. गार्हपत्यः परिमण्डलम्०। शत० ७.१.१.३७

४. शत० ३.५.१.१ से ६

५. शत० ब्रा० कांड ३ और कांड ७

६. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें -

(क) डा० सत्यप्रकाश - Founders of Sciences in Ancient India.P. 603-675

(ख) डा० सत्यप्रकाश - The Sulba Sutras, भूमिका पृ0 1-73

(ग) डा० विभूतिभूषण दत्त - The Science of the Sulba

7. A.K. Bag, Mathematics in Ancient And Medieval India. P. 106

	वेदी का नाम	आकार	परिमाण
	वर्ग १		
१.	आहवनीय	चतुर्भुज, Square	१ वर्ग व्याम
२.	गार्हपत्य	वृत्त, Circle	१ वर्ग व्याम
३.	दक्षिणाग्नि	अर्धवृत्त, Semi-Circle	१ वर्ग व्याम
	वर्ग २		
१.	महावेदी या सौमिक वेदी	समद्विबाहु चतुर्भुज, Isosceles Trap.	९७२ वर्ग पद
२.	सौत्रामणी वेदी	,, ,,	महावेदी का १/३ (३२४ वर्ग पद)
३.	पैतृकी वेदी	,, ,,	सौत्रामणी का १/९
४.	प्राग्वंश	आयत, Rectangle	,, ,,
	वर्ग ३		
१.	चतुरस्र श्येनचित्	पक्षी का आकार	साढ़े सात वर्ग पुरुष
२.	वक्रपक्ष-व्यस्त-पुच्छश्येन	पक्षी का आकार	साढ़े सात वर्ग पुरुष
३.	कंकचित्	पक्षी का आकार	साढ़े सात वर्ग पुरुष
४.	प्रउग	त्रिभुज, Triangle	साढ़े सात वर्ग पुरुष
५.	उभयत: प्रउग	समबाहु चतुर्भुज, Rhombus	साढ़े सात वर्ग पुरुष
६.	रथचक्रचित्	वृत्त, Circle	साढ़े सात वर्ग पुरुष
७.	द्रोणचित्	दोने की आकृति, Trough	साढ़े सात वर्ग पुरुष
८.	श्मशानचित्	समद्विबाहु चतु०, Iso. Trap.	साढ़े सात वर्ग पुरुष

महावेदी

समद्विबाहु चतुर्भुज (Isosceles Trapezium)

शतपथ ब्राह्मण में महावेदी का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। कांड ~~३ और कांड १०~~ में इसके निर्माण का वर्णन किया गया है।[1] इस वेदी का संबन्ध

१. शत०ब्रा० ३.५.१.१ से ६ और कांड १०.२.३.७ से १४

सोमयोग से है, अत: इसे 'सौमिकी वेदी' भी कहते हैं। इसकी रचना समद्विबाहु चतुर्भुज (Isosceles Trapezium) होती है। इसका मुख पूर्व की ओर होता है।

पूर्व दिशा चौड़ाई - २४ पग (१२ + १२ के २ भाग)

पश्चिम दिशा चौड़ाई - २४ + ६ = ३० पग (१५ +१५ के २ भाग)

लंबाई - ३६ पग (पद)

१ पद प्राय: २ फीट का होता है। उसी हिसाब से इसकी लंबाई चौड़ाई समझनी चाहिए। इसमें पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर २४ x २४ पग का एक चतुर्भुज बनता है। पश्चिम दिशा में मध्य भाग से उत्तर और दक्षिण की ओर ३ - ३ पग और बढ़ाते हैं। इस प्रकार ६ पग बढ़ जाने से पश्चिम दिशा में चौड़ाई २४ + ६ =३० पग हो जाती है। उत्तर और दक्षिण दिशा के भाग समान हैं, अत: यह समद्विबाहु चतुर्भुज है। पूर्व और पश्चिम के भाग विषम हैं (२४ और ३० पग), अत: पूर्व और पश्चिम की भुजाएँ विषम हैं।

बौधायन शुल्बसूत्र (१.४.३) और आपस्तम्ब शुल्बसूत्र (५.१ से ५) में भी महावेदी का नाप दिया गया है।[२] पद (पैर, Step) के लिए प्रक्रम और विक्रम शब्दों का भी प्रयोग होता है।

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि जो सामान्य सप्तविध वेदी है, उससे यह महावेदी १४ गुनी बड़ी होती है।[३] इस महावेदी के नाप के लिए शुल्ब (रज्जु, रस्सी) का प्रयोग किया जाता था। लंबाई के लिए ३६ पग लंबी (रस्सी) ली गयी, पूर्व की चौड़ाई के लिए २४ पग और पश्चिम की चौड़ाई के लिए ३० पग लंबी रस्सी। प्रत्येक वेदी में किस आकार की कितनी ईंटें लगती हैं, इसका भी पूर्ण विवरण ब्राह्मण ग्रन्थों में दिया गया है।

---

२. त्रिंशत् पदानि प्रक्रमा वा पश्चात् तिरश्ची भवति। षट्त्रिंशत्, प्राची चतुर्विंशतिः पुरस्तात् तिरश्चीति महावेदेर्विज्ञायते। बौधा० १.४.३

३. यावत्येषा सप्तविधस्य वेदिस्तावतीं चतुर्दश कृत्वा एकशतविधस्य वेदिं विमिमीते। शत० १०.२.३.७

परिधि, व्यास और "पाई" का मान

(Circumference, Diameter, Value of Pie, π)

ऋग्वेद के एक मंत्र में वृत्त की परिधि और व्यास का अनुपात 'त्रित' शब्द के द्वारा दिया गया है। मंत्र का अर्थ है कि त्रित ने वल राक्षस की परिधि को तोड़ दिया। इसका अभिप्राय है कि वृत्त की परिधि को त्रित अर्थात् व्यास के अनुपात १/३ ने तोड़ दिया। यह अनुपात वस्तुत: २२/७ है। इस अनुपात को पाई (Pie, π) द्वारा सूचित किया जाता है। इसी प्रकार का भाव अथर्ववेद के एक मंत्र में दिया गया है कि ब्रह्म इस संसार में त्रिभुज के रूप में अपनी आकृति बनाकर रहता है अर्थात् वृत्त (ब्रह्मांड) के अन्दर ब्रह्म द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीन का त्रिकोण बनाकर रहता है।

(क) भिनद् वलस्य परिधीन् इव त्रितः । *ऋग्०* १.५२.५
(ख) योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः । *अथर्व०* ८.९.२

ऋग्वेद के एक मंत्र में यह भी संकेत है कि त्रित अर्थात् परिधि और व्यास का अनुपात १/३ कहना कुछ त्रुटिपूर्ण है, अत: ऐसा 'त्रित' (त्रिकोण) कुएँ में डूब गया। बृहस्पति (विद्वानों) ने इसका संशोधन किया है और वह 'त्रित' (त्रिकोण) सुरक्षित बाहर आया। इसका अभिप्राय यह है कि स्थूल दृटि से यह अनुपात १/३ हो सकता है, परन्तु इसका शुद्ध रूप २२/७ होना चाहिए।

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ,
तत् शुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन् अंहूरणादुरु । ऋग्० १.१०५.१७

आर्यभट (४७६ ई०) ने 'आर्यभटीय के गणितपाद में इससे अधिक सूक्ष्ममान दिया है। वृत्त की परिधि और व्यास का यह अनुपात चार दशमलव स्थान तक शुद्ध है। आर्यभट का कथन है कि १०४ को ८ से गुणा करो और ६२ हजार जोड़ो अर्थात् ६२, ८३२ उस वृत्त की परिधि का आसन्न मान (निकटतम मान) है, जिसका व्यास २०, ००० है।

$$\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{६२,८३२}{२०,०००} = ३.१४१६$$

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् ।
अयुतद्वय-विष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ।। गणितपाद १०

इस श्लोक में आर्यभट का यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि वृत्त की परिधि और व्यास का यह अनुपात 'आसन्नमान' अर्थात् निकटतम है। इसका अभिप्राय यह है कि 'पाई' एक अपरिमेय संख्या है, इसका ठीक-ठीक मान प्राप्त

करना असंभव है। २२/७ में ३ के बाद शेष १/७ बचता है , यह ऐसी भिन्न है, जिसका कहीं अन्त नहीं होता है, अतः इसे अपरिमेय माना जाता है। नीलकंठ ने स्पष्ट लिखा है कि 'पाई' एक अपरिमेय संख्या है। आधुनिक विज्ञान भी आजतक इसका अन्त नहीं पा सका है। अतः इसको अपरिमेय माना जाता है।

भास्कराचार्य द्वितीय (१११४ ई०) ने लीलावती में "पाई" का स्थूल और सूक्ष्म दोनों मान दिए हैं। भास्कर का श्लोक है :

व्यासे भनन्दाग्नि (३९२७) - हते विभक्ते
खबाणसूर्यैः (१२५०) परिधिस्तु सूक्ष्मः।
द्वविंशति (२२) घ्ने विहृतेऽथ शैलैः (७)
स्थूलोऽथवा स्याद् व्यवहारयोग्यः।। *लीलावती, क्षेत्रव्यवहार* ९८

इसमें "पाई" का सूक्ष्ममान इस प्रकार दिया है :

(क) ३९२७/१२५० = ३.१४१६

(ख) पाई का स्थूलमान : २२/७ = ३.१४

भास्कराचार्य ने क्षेत्रव्यवहार के इस प्रकरण में व्यास से परिधि और परिधि से व्यास निकालने का सूत्र बताया है।

कर्ण (Hypotenuse) निकालना

पैथागोरस का प्रमेय (Pythagorean Theorem)

बौधायन , आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्ब सूत्रों में आयत (Rectangle) के कर्ण (Hypotenuse) के विषय में कहा गया है कि आयत का कर्ण दोनों क्षेत्रफलों को उत्पन्न करता है, जिसे उसकी लम्बाई और चौड़ाई अलग-अलग उत्पन्न करती है।

दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुस्तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी च यत् पृथग्भूते कुरुतः, तदुभयं करोतीति क्षेत्रज्ञानम्।

बौधायन शुल्ब० १.४८ ; कात्यायन शुल्ब० २.११ ; आप० शुल्ब १.७

अर्थात् किसी आयत के कर्ण पर खींचा गया वर्ग, क्षेत्रफल में उन दोनों वर्गों के योग के बराबर होता है, जो दोनों भुजाओं पर खीचें जाएँ।

इसमें दीर्घचतुरस्र का अर्थ है - आयत (Rectangle) , अक्ष्णया रज्जु का अर्थ है - तिरछा नापना, एक कोने से तिरछे दूसरे कोने तक नापना (Diagonal), तिर्यङ्मानी (चौड़ाई), पार्श्वमानी (लंबाई)।

यदि एक आयत को बीच में से तिरछा काटा जाय तो उसमें से दो विषम-बाहु त्रिभुज निकलेंगे। दोनों का पृथक्-पृथक् जितना क्षेत्रफल निकलेगा, उसका योग ही

आयत का क्षेत्रफल होगा । इस प्रकार एक आयत दो त्रिभुजों का जोड़ा समझना चाहिए ।

कात्यायन शुल्बसूत्र में इस बात को दो अन्य सूत्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है कि यदि लंबाई और चौड़ाई ज्ञात जो तो कर्ण (Hypotenuse) क्या होगा ।

१. यदि चौड़ाई १ हो और लंबाई ३ हो तो इसका कर्ण १० का वर्गमूल होगा ।

$१^२ + ३^२$ = १० का वर्गमूल

अर्थात् १ x १ = १ और ३ x ३ = ९, इस प्रकार १ + ९ = १०

२. इसी प्रकार यदि किसी आयत की चौड़ाई २ पद और लंबाई ६ पद होगी तो उसका कर्ण ४० का वर्गमूल होगा । २ और ६ का वर्ग निकालकर जो जोड़ होगा, वह कर्ण का वर्ग होगा ।

$२^२$x $६^२$ = ४०

अर्थात् २ x २ = ४ , ६ x ६ = ३६, ४ + ३६ = ४०

शुल्बसूत्रों में कर्ण के लिए 'करणी शब्द' का प्रयोग है । शुल्ब और शुल्व शब्द यहं दोनों प्रकार से लिखा जाता है ।

(क) पदं तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी तयाक्ष्णया रज्जुर्दशकरणी ।
(ख) एवं द्विपदा तिर्यङ्मानी षट्पदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुः चत्वारिंशत् करणी । कात्यायन शुल्ब० २.८-९

आर्यभट ने इस बात को और अधिक स्पष्ट रूप में लिखा है कि :

यश्चैव भुजावर्गः कोटीवर्गश्च कर्णवर्गः सः । आर्यभटीय, गणिपाद, १७

अर्थात् समकोण त्रिभुज में भुजा (Base) के वर्ग और कोटि (Perdendicular) के वर्ग का योग कर्ण (Hypotenuse) के वर्ग के बराबर होता है ।

यह नियम पैथागोरस प्रमेय के नाम से जाना जाता है । पैथागोरस का प्रमेय है -

" That the square on the hypotenuse of a right-angled triangle is equal to the sum of the squares on the other two sides."

अर्थात् समकोण त्रिभुज के कर्ण के ऊपर खींचा गया वर्ग दो समकोण त्रिभुजों के वर्ग के बराबर होता है ।

यह पूरा नियम बौधायन, आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्बसूत्रों के पूर्वोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है । इससे ज्ञात होता है कि पैथागोरस से पहले वैदिक काल में ही यह नियम भारतीयों को ज्ञात हो चुका था ।

अध्याय - ८

ज्योतिष (Astronomy)

ज्योतिष का महत्त्व : ज्योतिष शास्त्र का भूगोल और खगोल दोनों से संबन्ध है । यह एक स्वतंत्र शास्त्र या विज्ञान है । इसका भौतिकी, गणित, भूगोल, पर्यावरण आदि से साक्षात् संबन्ध है तथा अन्य विज्ञान की शाखाओं से भी इसका किसी न किसी रूप में संबन्ध है । पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, ग्रहों आदि की गति की गणना, कालचक्र का निर्धारण, वर्षचक्र, ऋतु, पर्वों आदि का ज्ञान, सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण, शुभ-अशुभ मुहूर्तों का ज्ञान आदि विषय प्रत्येक मानव के जीवन से संबद्ध है, अतः ज्योतिष जीवन से संबद्ध शास्त्र है । वेदों में यज्ञ का सर्वाधिक महत्त्व है । यज्ञों के लिए काल निर्धारित हैं । उसके ज्ञान के लिए ज्योतिष की अत्यन्त आवश्यकता है । अतः इसके महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि ज्ञान-विज्ञान के ज्ञान के लिए ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य है । यह सारे वेदांगों में मूर्धन्य है ।

(क) **वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः, कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।**
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ।।
वेदांग ज्योतिष, याजुष० श्लोक ३

(ख) **यथा शिखा मयूराणां, नागानां मणयो यथा ।**
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां, गणितं मूर्धनि स्थितम् ।। वेदांग.याजुष श्लोक ४

काल का महत्त्व : ज्योतिष एक प्रकार से काल-विज्ञान-शास्त्र है । यह काल (Time) के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराता है । अथर्ववेद के १९वें कांड के दो सूक्तों (५३ और ५४) के १५ मंत्रों में काल के विराट् रूप का वर्णन किया गया है । इसमें बताया गया है कि सारी सृष्टि, सारे देवता, सारे वेद आदि शास्त्र तथा सभी कुछ काल के अधीन है । काल ही ब्रह्म और महादेव है । वही सभी देवों का आधार एवं अधिष्ठाता है । सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि सभी उसकी आज्ञा में चलते हैं । वर्तमान, भूत और भविष्यत् सभी कुछ काल के अन्तर्गत है । सृष्टि, स्थिति और प्रलय काल के अधीन हैं । काल के आदेशानुसार ही सूर्य उदय होता है और अस्त होता है । सारा ज्ञान और विज्ञान काल के अधीन है । ज्योतिष उसी काल के अंगों और उपांगों की विस्तृत व्याख्या करता है ।

(क) **काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ।** अ० १९.५३.५
(ख) **कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ।** अ० १९.५३.९
(ग) **कालः स ईयते परमो नु देवः ।** अ० १९.५४.५

लगध का वेदांग-ज्योतिष : ज्योतिष-विषयक केवल एक ही प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध होता है । यह है - वेदांग-ज्योतिष । यह ग्रन्थ दो भागों में मिलता है । एक का नाम है - **'आर्च ज्योतिष'** अर्थात् ऋग्वेद-संबन्धी ज्योतिष । दूसरे का नाम है - **'याजुष ज्योतिष'** अर्थात् यजुर्वेद-संबन्धी ज्योतिष । प्रथम भाग में ३६ श्लोक और द्वितीय भाग में ४३ श्लोक हैं । बहुत से श्लोक दोनों में समान हैं । इसके लेखक - लगधमुनि माने जाते हैं ।[१] ग्रन्थ की भाषा बहुत क्लिष्ट और दुरूह है, अत: अनेक विशेषज्ञों के प्रयत्न के बाद भी कुछ श्लोक अभी तक अस्पष्ट हैं । यज्ञकार्य के लिए शुभ मुहूर्त आदि का ज्ञान आवश्यक था, अत: यह ग्रन्थ मुहूर्त आदि का ज्ञान कराने के लिए लिखा गया है । अत: कहा है कि -

ज्योतिषामयनं कृत्स्नं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
विप्राणां संमतं लोके यज्ञकालार्थसिद्धये ।। आर्च० ३, याजुष २

इस पर सोमाकर की एक टीका प्राप्त है । इस ग्रन्थ पर अनेक पाश्चात्त्य और भारतीय विद्वानों ने बहुत श्रम किया है । इनमें उल्लेखनीय हैं - सर विलियम जोन्स, वेबर, ह्विटनी, कोलब्रुक, थीबो, सुधाकर द्विवेदी, बालगंगाधर तिलक, शामशास्त्री, डा० सत्यप्रकाश, प्रो० टी०एस० कुप्पन्न शास्त्री आदि ।

प्रो० कुप्पन्न शास्त्री ने आलोचनात्मक अध्ययन के बाद वेदांगज्योतिष का समय १३७० ई०पू० निर्धारित किया है । इसके मुख्य वर्ण्य विषय हैं : काल का विभाजन, नक्षत्र और नक्षत्र देवता, युग, लग्न, तिथि का निर्णय, अयन, पर्व, नक्षत्रों का विभाजन, तिथि-नक्षत्र, नक्षत्र और पर्व, अधिक मास आदि ।

काल-विभाजन इस प्रकार दिया है - १० मात्रा = १ काष्ठा, १२४ काष्ठा = १ कला, १० + १/२० कला = १ नाडिका (२४ मिनट), २ नाडिका = १ मुहूर्त (४८ मिनट), ३० मुहूर्त = १ दिन (अहोरात्र, २४ घंटे), ३६६ दिन = १ सौर वर्ष (१२ सौर मास, ६ ऋतु, २ अयन अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन), ५ सौर वर्ष = १ युग ।

१ युग के ५ सौरे वर्षों के नाम : संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वस्तर, वत्सर ।[२]

५ वर्ष के युग के आधार पर माना गया है कि ठीक ५ वर्ष के अन्तर के बाद सूर्य और चन्द्रमा राशिचक्र के उसी नक्षत्र पर पुन: एक सीध में होते हैं ।

---

१. कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन: । आर्च ज्यो० २

२. संवत्सर:, परिवत्सर:, इदावत्सर:, इद्वत्सर:, वत्सर: । यजु० २७.४५

इसमें एक ही श्लोक में २७ नक्षत्रों के नाम दिए हैं : प्रत्येक नक्षत्र का आदि मध्य या अन्त का एक अक्षर लिया गया है ।

जौ द्रा गः खे श्वे ऽही रो षा
चिन् मू ष ण्यः सू मा धा णः ।
रे मृ धाः स्वा ऽऽपो ऽजः कृ ष्यो
ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिंगैः ।। याजुष० १८

जौ= अश्वयुजौ (अश्विनी), द्रा = आर्द्रा, गः = भगः (उत्तरा फल्गुनी), खे = विशाखे (विशाखा), श्वे = विश्वेदेवाः (उत्तरा अषाढा), अहिः = अहिर्बुध्न्य (उत्तरा भाद्रपदा), रो = रोहिणी, षा = आश्लेषा, चित् = चित्रा, मू = मूल, ष = शतभिषक् , ण्यः = भरण्यः (भरणी), सू = पुनर्वसू (पुनर्वसु), मा = अर्यमा (पूर्व फल्गुनी), धा = अनुराधा, णः = श्रवणः (श्रवणा), रे = रेवती, मृ = मृगशिरस् (मृगशिरा), घाः = मघाः (मघा) , स्वा = स्वाति, आपः = आपः (पूर्वा अषाढा), अजः = अज एकपाद् (पूर्वा भाद्रपदा), कृ = कृत्तिकाः (कृत्तिका), ष्यः = पुष्य, ह = हस्त, ज्ये = ज्येष्ठा, ष्ठाः = श्रविष्ठा ।

ज्योतिष-विषयक महत्त्वपूर्ण तथ्य

वेदों में ज्योतिष से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं । उनका संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जा रहा है ।

ज्योतिष विज्ञान है : यजुर्वेद का कथन है कि ज्योतिष एक विज्ञान है, इसमें नक्षत्रों की गति आदि की परीक्षा की जाती है । ग्रह और नक्षत्रों को देखकर उनके स्थान, गति आदि का अध्ययन विज्ञान है । मंत्र में विज्ञान (Science) के लिए प्रज्ञान शब्द का प्रयोग हुआ है ।

प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम् । यजु० ३०.१०

सृष्टि (युग) का काल-निर्धारण : अथर्ववेद में वर्णन है कि एक महायुग या सृष्टि का आदि से अन्त (उत्पत्ति से प्रलय) तंक का समय ४ अरब, ३२ करोड़ वर्ष है । मंत्र का कथन है कि १०० अयुत में प्रारंभ में ४३२ और जोड़ने से युग का काल ज्ञात होता है । अयुत का अर्थ है - दस हजार । उसमें १०० का गुणा करो अर्थात् १०,००० x १०० = १०,००,००० अर्थात् दस लाख, इसमें प्रारंभ में ४३२ जोड़ो । अतः यह संख्या ४,३२,००,००,००० चार अरब, ३२ करोड़ वर्ष होती है । गणित का नियम है - 'अंकानां वामतो गतिः' अंक दाईं ओर से बाईं ओर लिखे जाते हैं । मंत्र में २,३,४, लिखे हैं, जिसका अर्थ है ४३२ ।

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः । अथर्व० ८.२.२१

सूर्य

सूर्य के विषय में कुछ विशेष तथ्य वेदों में प्राप्त होते हैं ।

सूर्य संसार की आत्मा है : ऋग् , यजुः, अथर्व आदि वेदों में उल्लेख है कि सूर्य चर और अचर सारे संसार की आत्मा है, अर्थात् सारे संसार की ऊर्जा का स्रोत सूर्य है ।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । ऋग्० १.११५.१ । यजु० ७.४२ ।
अ० १३.२.३५ । तैत्ति०सं० १.४.४३.१

सात सौर मंडल हैं : अथर्ववेद का कथन है कि सात सौर मंडल हैं अर्थात् हमारे सौर मंडल की तरह सात बड़े सौर मंडल हैं ।

यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम् । अ० १३.३.१०

सूर्य अनेक हैं : ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि सूर्य अनेक हैं, सात दिशाएँ हैं, उनमें नाना सूर्य हैं ।

सप्त दिशो नानासूर्याः । ऋग्० ९.११४.३

सूर्य की सात रंग की किरणें हैं : अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य की सात किरणें हैं और इनके कारण वर्षा होती है ।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः । अथर्व० ७.१०७.१

सूर्य की किरणें ही सारे रंग देती हैं : अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य की ७ x ३ = २१ प्रकार की किरणें ही सारे रंग देती हैं । इसका अभिप्राय यह है कि सूर्य की सात रंग की किरणें ही गहरी, मध्यम, हल्की इन तीन रूपों में होकर २१ प्रकार की होती हैं । ये ही संसार की सारी वस्तुओं को रंग देती हैं ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । अ० १.१.१

सूर्य के आकर्षण से पृथिवी रुकी है : ऋग्वेद और यजुर्वेद में कहा गया है कि सूर्य के आकर्षण से पृथिवी रुकी हुई है । ऋग्वेद का कथन है कि सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति (नियंत्रण शक्ति या यन्त्र) से पृथिवी को रोके हुए है । ऋग्वेद में ही दूसरे स्थान पर कहा है कि सूर्य पृथिवी को अपनी ओर खींचे हुए है । यजुर्वेद में और स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि सूर्य अपनी किरणों से चारों ओर से पृथिवी को रोके हुए है ।

(क) सविता यन्त्रैः पृथिवीम् - अरम्णात् । ऋग्० १०.१४९.१
(ख) चकृषे भूमिम् । ऋग्० १.५२.१२
(ग) दाधर्थ पृथिवीम् -अभितो मयूखैः । यजु० ५.१६

सूर्य और पृथिवी दोनों में आकर्षण शक्ति है : ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि सूर्य और पृथिवी दोनों में आकर्षण शक्ति है । दोनों एक-दूसरे को सदा

अपनी ओर खींच रहे हैं अर्थात् इसी आकर्षण से यह पृथिवी आकाश में रुकी हुई है।

एको अन्यत्-चकृषे विश्वम् आनुषक्। ऋग्० १.५२.१४

पृथिवी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है : ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णन है कि पृथिवी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। ऋग्वेद का कथन है कि पृथिवी (क्षाः) सूर्य (शुष्ण) के चारों ओर प्रदक्षिणा करती है। यजुर्वेद का कथन है कि यह पृथिवी (गौः) अन्तरिक्षरूपी माँ के सामने रहती हुई पितारूपी सूर्य की परिक्रमा करती है। यह मंत्र चारों वेदों में आया है।

(क) क्षाः .. शुष्णं परि प्रदक्षिणित्। ऋग्० १०.२२.१४

(ख) आयं गौः पृश्निरक्रमीद् असदन् मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन् स्वः। ऋग्० १०.१८९.१। यजु० ३.६।
अ० ६.३१.१

आर्यभट (४७६ई०) ने आर्यभटीय के प्रारम्भ में दशगीतिका में लिखा है कि एक प्राण के बराबर समय में पृथिवी एक कला घूमती है। इस हिसाब से पृथिवी २४ घंटे में अपना एक चक्र पूरा कर लेती है। उसका समर्थन करते हुए सिद्धान्तशेखर के भाष्यकार मक्कीभट (१३७७ ई०) ने लिखा है कि पृथिवी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। एक भगण में १२ राशि, १ राशि में ३० अंश और एक अंश में ६० कला होती हैं।

आर्यभट ने कालक्रियापाद (श्लोक १ और २) में इसको और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि १ चक्र में १२ राशि होती हैं, अतः १२ x ३० = ३६० अंश, और ३६० x ६० = २१,६०० कला। १ दिन में ६० घड़ी (नाड़ी), १ घड़ी में ६० पल और १ पल में ६० प्राण। इस प्रकार १ दिन में ६० घड़ी (नाड़ी) = ३६०० पल (विनाडी) = २१,६०० प्राण। १ दिन में २४ घंटे = २४ x ६० = १४४० मिनट = १४४० x ६० = ८६,४०० सेकेंड। १ प्राण या सांस ४ सेकेंड का होता है, अतः १ दिन में २१,६०० प्राण हुए। इस प्रकार पृथिवी १ प्राण के बराबर समय में १ कला घूमती है और २४ घंटे में अपना एक चक्र (३६०अंश) पूरा कर लेती है।

(क) प्राणेनैति कलां भूः। आर्यभटीय, दशगीतिका ४

(ख) भूमिः प्राङ्मुखी भ्रमति। मक्कीभट्ट

सूर्य और सारा संसार घूमता है : यजुर्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि सूर्य भी घूमता है। यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य, पृथिवी और उषा ये सदा घूमते हैं यह सारा संसार भी घूमता है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि सूर्य सौर-चक्र (सौर-मंडल) को घुमाता है।

(क) **समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः ।**
समु विश्वमिदं जगत् । यजु० २०.२३

(ख) **अवर्तयत् सूर्यो न चक्रम् ।** ऋग्० २.११.२०

वर्षचक्र घूमता है : ऋग्वेद का कथन है कि यह वर्षचक्र द्युलोक में सदा घूमता है ।

वर्तर्ति चक्रं परि द्याम् ऋतस्य । ऋग्० १.१६४.११

नक्षत्र मंडल घूमता है : अथर्ववेद का कथन है कि चित्रा आदि नक्षत्र बहुत वेग से आकाश में घूमते हैं ।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि । अ० १९.७.१

अहोरात्र का चक्र सदा घूमता है : ऋग्वेद का कथन है कि दिन-रात का यह चक्र सदा अपनी नियन्त्रित गति से घूमता है । मंत्र में 'वेद्याभिः' शब्द से अपनी विशिष्ट गति से घूमने का निर्देश है ।

अहश्च कृष्णम् अहरर्जुनं च ।
वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।। ऋग्० ६०.९.१

सूर्य से चन्द्रमा में प्रकाश : यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य की सुषुम्ण नामक किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है । चन्द्रमा में अपना प्रकाश नहीं है । वह सूर्य की किरणों से ही प्रकाशित होता है । यास्क ने भी निरुक्त में इसी बात को स्पष्ट किया है कि सूर्य की एक किरण चन्द्रमा को प्रकाश देती है । सूर्य से ही चन्द्रमा में प्रकाश है । गन्धर्व का अर्थ है - किरण या प्रकाश को धारण करने वाला ।

(क) **सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः ।** यजु० १८.४०

(ख) **अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीव्यति ।**
आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति । निरुक्त २.६

सूर्य न उदय होता है और न अस्त होता है : ऐतरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण ने स्पष्ट लिखा है कि सूर्य न कभी उदय होता है और न अस्त होता है । उदय और अस्त केवल व्यवहार के लिए है । रात्रि के अन्त को सूर्योदय कह देते हैं और दिन के अन्त को सूर्यास्त । सूर्य सदा प्रकाश देता है । पृथिवी की परिक्रमा के कारण रात्रि की समाप्ति पर जब प्रकाश पृथिवी पर आता है, तब सूर्योदय कहा जाता है और सायं जब प्रकाश ओझल होने लगता है तो उसे सूर्यास्त कहते हैं । सूर्य अपने स्थान पर सदा ज्योतिर्मय है ।

(क) स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति । ऐत०ब्रा०
३.४४ **(ख स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति ।**
गोपथ ब्रा०उत्तर०
४.१०

सूर्य संसार का धारक : ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि सूर्य संसार को धारण किए हुए है ।

धारयन्त आदित्यासो जगत् स्थ । ऋग्० २.२७.४

सूर्य के कारण दिन-रात : अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य के कारण ही दिन-रात होते हैं । दिन-रात सूर्य की ऊर्जा को ही चारों ओर फैलाते हैं ।

अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने ।
प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ।। अथर्व० १३.२.३२

अहोरात्र में तीस मुहूर्त : चारों वेदों में उल्लेख है कि एक अहोरात्र (दिनरात) में तीस मुहूर्त होते हैं । मंत्र में मुहूर्त के लिए 'धाम' शब्द का प्रयोग है । उव्वट और महीधर का भी कथन है कि धाम शब्द मुहूर्त के लिए है । 'प्रति वस्तोः' का अर्थ है - प्रतिदिन ।

त्रिंशद् धाम विराजति वाक् .... प्रतिवस्तोः ० । ऋग्० १०.१८९.३ ।
यजु० ३.८ । अथर्व० ३.३१.३ । साम० ६३२

एक मास में तीस अहोरात्र : अथर्ववेद का कथन है कि एक मास में तीस अहोरात्र होते हैं ।

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गम्० । अ० १३.३.८

एक वर्ष में बारह मास : ऋग्वेद का कथन है कि वर्षचक्र में १२ अरे अर्थात् मास होते हैं । यह सूर्य का चक्र द्युलोक में निरन्तर घूमता है और कभी जीर्ण नहीं होता है ।

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य । ऋग्० १.१६४.११

एक वर्ष में ७२० अहोरात्र : ऋग्वेद का यह भी कथन है कि एक वर्ष में ७२० अहोरात्र होते हैं । ये वर्ष के युगल (जुड़वां) पुत्र के तुल्य हैं । इस प्रकार ये ३६० दिन और ३६० रात्रि मिलकर ७२० अहोरात्र होते हैं ।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र ।
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः । ऋग्० १.१६४.११

वर्ष का आधार मास : ऋग्वेद का कथन है कि वर्ष की गणना का आधार मास है । वर्ष की आकृति (परिमाण) के ज्ञान के लिए मास का बोध आवश्यक है ।

समानां मास आकृतिः । ऋग्० १०.८५.५

वर्ष की गणना का प्रारम्भ रात्रि से : अथर्ववेद के एक मंत्र में यह संकेत है कि वर्ष की गणना का प्रारम्भ रात्रि से प्रारम्भ हुआ है । इसलिए रात्रि को वर्ष की पत्नी (रक्षक, पालक) कहा गया है । इसी सूक्त में रात्रि को संवत्सर (वर्ष) की प्रतिमा

अर्थात् माप या गणना का आधार कहा गया है। आगे कहा गया है कि सबसे पहले रात्रि ही प्रकट हुई, उसके बाद दिन।

(क) **संवत्सरस्य या पत्नी०।** अ० ३.१०.२

(ख) **संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्रि०।** अ० ३.१०.३

(ग) **इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छत्०।** अ० ३.१०.४

विषुवत् रेखा, उत्तरायण और दक्षिणायन : ऋग्वेद और अथर्ववेद में विषुवत् रेखा (मध्यवर्ती रेखा) का उल्लेख मिलता है। विषुवत् को विषूवत् भी लिखा जाता है। विषुवत् रेखा के ऊपरी भाग के लिए 'पर' शब्द है और नीचे की ओर के लिए 'अवर' शब्द है। इसी आधार पर सूर्य के दक्षिण से उत्तर की ओर जाने को 'उत्तरायण' और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने को 'दक्षिणायन' कहते हैं।

विषूवता पर एनावरेण। ऋग्० १.१६४.४३। अ० ९.१०.२५

शतपथ, गोपथ और तांड्य ब्राह्मण में विषुवत् रेखा का उल्लेख है।[1] विषुवत् रेखा को संवत्सर (वर्ष) की आत्मा कहा गया है। वर्ष को एक महापक्षी (महासुपर्ण) बताते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि संवत्सर के दो पक्ष (पंख) हैं - ६ मास का एक पक्ष ऊपर की ओर है (इसे उत्तरायण कहते हैं) और दूसरा ६ मास का पक्ष (पंख) नीचे की ओर है (इसे दक्षिणायन कहते हैं)।

(क) **आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवान्, अंगानि पक्षौ (दक्षिणः पक्षः, उत्तरः पक्षश्च।** गोपथ० पू० ४.१८

(ख) **महासुपर्ण एव यत् संवत्सरः। तस्य यान् पुरस्ताद् विषुवतः षण्मासान् उपयन्ति सोऽन्यतरः पक्षः, अथ यान् षड् उपरिष्टात् सोऽन्यतर आत्मा विषुवान्।** शत० १२.२.३.७

उत्तरायण और दक्षिणायन : मैत्रि-उपनिषद् में कहा गया है कि सूर्य जब मघा नक्षत्र के प्रारम्भ में होता है , तब दक्षिणायन प्रारम्भ होता है और जब धनिष्ठा (श्रविष्ठा) के मध्य में होता है, तब उत्तरायण प्रारम्भ होता है।

मघाद्यं श्रविष्ठार्धम् आग्नेयं क्रमेणोत्क्रमेण सार्पाद्यं श्रविष्ठार्धान्तं सौम्य। मैत्रि उप० ६.१४

परन्तु वेदांग ज्योतिष का कथन है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों श्रविष्ठा नक्षत्र के आदि में उत्तर की ओर गति करते हैं, अर्थात् तब उत्तरायण प्रारम्भ होता है और आश्लेषा के मध्य में दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। सूर्य माघ में उत्तर की ओर गति प्रारम्भ करता है तथा श्रावण में दक्षिण की ओर।

---

१. शतपथ ब्रा० १२.२.३.६ और ७। गोपथ ब्रा० पूर्व० ४.१८। तांड्य० ४.७.१

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्दमासावुदक् ।

सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा । वेदांग० याजुष० ७

संवत्सर और नक्षत्र : तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि वर्ष का नक्षत्रों से घनिष्ठ संबन्ध है । नक्षत्र संवत्सर की प्रतिष्ठा है और संवत्सर का आधार है ।

संवत्सरोऽसि नक्षत्रेषु श्रितः । तैत्ति० ३.११.१.१४

नक्षत्राणि संवत्सरस्य प्रतिष्ठा । । तैत्ति० ३.११.१.१३

बारह राशियाँ : ऋग्वेद के एक मंत्र में 'प्रधि' (हाल, Felly, Tyre) शब्द के द्वारा राशिचक्र का उल्लेख है । प्रधि का अर्थ मास भी लिया गया है । ऋग्वेद का कथन है कि वर्षचक्र में १२ प्रधियाँ हैं, ३ नाभियाँ हैं और ३६० शंकु (कील, खूंटी) लगे हुए हैं । ३ नाभियों से अभिप्राय है - ग्रीष्म, वर्षा और शरद् रूपी तीन ऋतुएँ । ३६० शंकु से अभिप्राय है - एक वृत्त में ३६० अंश (Degres) और इसी से वर्ष में ३६० दिन । १२ प्रधियों से वर्ष के १२ मासों का भी उल्लेख है । प्रधि शब्द का राशि अर्थ भी लिया गया है । अतः १२ राशियाँ (Signs of Zodiac) ये हैं :

१. मेष (Aries), २. वृष (Taurus) , ३. मिथुन (Gemini), ४. कर्क (Cancer), ५. सिंह (Leo), ६. कन्यां (Virgo), ७. तुला (Libra), ८. वृश्चिक (Scorpio), ९. धनुः (Sagittarius), १०. मकर (Capricorn), ११. कुम्भ (Acquarius), १२. मीन (Pisces) ।

नक्षत्रों के नाम और देवता : अथर्ववेद , तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक संहिता में २८ नक्षत्रों के नाम दिए गए हैं ।[1] तैत्तिरीय संहिता में केवल २७ नक्षत्र हैं, अभिजित् नक्षत्र को छोड़ दिया गया है । इसमें नक्षत्रों के साथ उनके देवता भी दिए गये हैं । नक्षत्रों के नाम और देवता नीचे दिये जा रहे हैं :

	नक्षत्र	देवता		नक्षत्र	देवता
१.	कृत्तिकाः	अग्नि	२.	रोहिणी	प्रजापति
३.	मृगशिरस्	सोम	४.	आर्द्रा	रुद्र
५.	पुनर्वसू	अदिति	६.	पुष्य	बृहस्पति
७.	आश्लेषाः	सर्प	८.	मघाः	पितरः
९.	पूर्वा फल्गुनी	अर्यमा	१०.	उत्तरा फल्गुनी	भग
११.	हस्त	सविता	१२.	चित्रा	इन्द्र

१. अथर्व० १९.७.१ से५ । तैत्ति०सं० ४.४.१०.१ से ३ । मैत्रा० सं० २.१३.२० । काठक सं० ३९.१३

१३.	स्वाति	वायु	१४.	विशाखा(खे)	इन्द्राग्नी
१५.	अनुराधा	मित्र	१६.	ज्येष्ठा	इन्द्र
१७.	मूल	पितर:	१८.	पूर्वा अषाढा	आप:
१९.	उ०अषाढा	विश्वेदेवा:	२०.	अभिजित्	....
२१.	श्रवणा	विष्णु	२२.	श्रविष्ठा:	वसव:
२३.	शतभिषज्	इन्द्र	२४.	प्रोष्ठपदा (पूर्वा भाद्रपदा)	अज एकपाद्
२५.	प्रोष्ठपदा (उ०भाद्रपदा)	अहिर्बुध्निय	२६.	रेवती	पूषा (पूषन्)
२७.	अश्वयुजौ (अश्विनौ)	अश्विनी	२८.	भरणी (भरण्य:)	यम

अथर्ववेद के अनुसार ये २८ नक्षत्र दिए गए हैं। तैत्ति०, मैत्रा० और काठक संहिता में ये पाठभेद मिलते हैं।

१. मृगशिरस् - मृगशीर्ष, इन्वगा, इन्वका। २. आर्द्रा - बाहु। ३. पुष्य - तिष्य। ४. स्वाति - स्वाती, निष्ट्य, निष्ट्या। ५. ज्येष्ठा - रोहिणी। ६. मूल - विचृतौ। ७. श्रवणा - श्रोणा, अश्वत्थ। ८. श्रविष्ठा - धनिष्ठा। ९. अश्वयुजौ - अश्विनौ। १०. भरण्य: - अपभरणी:।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी नक्षत्रों की सूची दी गयी है।[२] यह तैत्तिरीय संहिता की सूची के तुल्य है। इसमें २८ नक्षत्रों की गणना है। इसमें १४ नक्षत्रों के बाद पूर्णिमा और २८ नक्षत्रों के बाद अमावस्या का उल्लेख है।

तैत्तिरीय संहिता और काठक संहिता में कृत्तिका नक्षत्र के ७ तारों के ये नाम दिए गए हैं : १. अम्बा, २. दुला, ३. नितत्नि, ४. अभ्रयन्ती, ५. मेघयन्ती, ६. वर्षयन्ती, ७. चुपुणीका।[३]

तैत्तिरीय ब्राह्मण (१.५.२ से ७) में नक्षत्रों को दो भागों में बाँटा गया है। (१) देव नक्षत्र - १ से १४ तक नक्षत्र, (२) यम नक्षत्र - १५ से २७ तक।

नक्षत्रों के स्थान : ज्योतिष के ग्रन्थों में नक्षत्रों के स्थान का निर्धारण भी किया गया है। प्रो० ह्विटनी ने 'सूर्यसिद्धान्त' पर लिखी टिप्पणी में इन नक्षत्रों के इंग्लिश् नाम और इनके स्थान का भी निर्धारण किया है।[४]

२. तैत्ति० ब्रा० १.५.१, ३.१.१-२ ३. तैत्ति०सं० ४.४.५.१। का०सं०४०.४

४. विस्तृत विवरण के लिए देखें - सूर्यकान्त, वैदिक कोश, पृ० २२७ से २२९

नक्षत्र और मासों के नाम : मासों के नाम नक्षत्रों के आधार पर ही पड़े हैं। इनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों के समय से प्रारम्भ होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में केवल इन मासों के नाम प्राप्त होते हैं - फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, तैष्य और माघ।[५] जिस नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होती है, उस नक्षत्र के आधार पर मासों के नाम रखे गए हैं।[६] जैसे - चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा जिस दिन होती है, उसे चैत्र मास कहते हैं। इसी प्रकार इन नक्षत्रों के आधार पर मासों के ये नाम रखे गए हैं : चित्रा -चैत्र, विशाखा - वैशाख, ज्येष्ठा - ज्येष्ठ, अषाढा - आषाढ, श्रवणा- श्रावण, भाद्रपदा- भाद्रपद (भादों), अश्विनी-आश्विन, कृत्तिका, - कार्तिक, मृगशीर्ष - मार्गशीर्ष, पुष्य - पौष या तिष्य-तैष्य, मघा - माघ, फल्गुनी - फाल्गुन।

साधारणतया एक नक्षत्र का भोग एक दिन रहता है। अत: एक मास में नक्षत्रों का एक चक्र पूरा हो जाता है। अथर्ववेद के अनुसार २८ नक्षत्र हैं, परन्तु परवर्ती ज्योतिष साहित्य में अभिजित् नक्षत्र को छोड़ दिया गया है और २७ नक्षत्र ही माने गए हैं।[७]

ग्रहों के नाम : अथर्ववेद में 'दिविचरा ग्रहा:' के द्वारा आकाशीय ग्रहों का उल्लेख है।[८] वेदों में ग्रहों की पूरी सूची कहीं नही दी गयी है। अथर्ववेद के एक मंत्र में चार ग्रहों का स्पष्ट उल्लेख है। ये हैं : चन्द्रमा, सूर्य, राहु, धूमकेतु या केतु।[९] इस मंत्र में चान्द्रमस ग्रहों का उल्लेख है। इससे अन्य ग्रहों का ग्रहण अभिप्रेत है। शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को ग्रह कहा गया है।[१०] शतपथ में ही 'अष्टौ ग्रहा:' के द्वारा आठ ग्रहों का निर्देश है।[११] परन्तु यहाँ ग्रहों के नाम नहीं दिए गए हैं, अपितु प्राण, जिह्वा आदि को ग्रह बताया है। यास्क ने निरुक्त (१.१४) में 'भूमिज:' से मंगल ग्रह लिया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में तिष्य नक्षत्र को बृहस्पति ग्रह का प्रतिनिधि बताया गया है।[१२] कुछ विद्वानों ने 'सप्त सूर्या: के द्वारा सात ग्रहों का

---

५. फाल्गुन, पंचविंश ब्रा० ५.९.८। चैत्र, कौषीतकि ब्रा० १९.३। वैशाख, शत०ब्रा० ११.१.७। तैष्य, कौषी० ब्रा० १९.२-३। माघ, कौषी० ब्रा० १९.२-३।

६. नक्षत्रेण युक्त: काल: अष्टा० ४.२.३। सास्मिन् पौर्णमासीति, अष्टा० ४.२.२१

७. अष्टाविंशानि शिवानि०। अथर्व० १९.८.२

८. शं नो दिविचरा ग्रहा:। अ० १९.९.७

९. शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसा: शमादित्यश्च राहुणा। शं नो मृत्युर्धूमकेतु:०। अ० १९.९.१०

१०. एष वै ग्रह:। य एष (सूर्य:) तपति। शत०ब्रा० ४.६.५.१

११. अष्टौ ग्रहा:। शत० १४.६.२.१

१२. बृहस्पतेस्तिष्य: (नक्षत्रविशेष:)। तैत्ति० ब्रा० १.५.१-२

उल्लेख माना है ।[१३] ऋग्वेद के दो मंत्रों में ३४ ज्योतियों का उल्लेख है ।[१४] प्रो० लुड्विग ने इसका अभिप्राय लिया है - सूर्य, चन्द्रमा आदि ७ ग्रह तथा २७ नक्षत्र अर्थात् २७ +७ = ३४ ज्योतियाँ । अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि सूर्य, चन्द्र, राहु आदि ग्रह शुभ हों ।[१५] इससे ज्ञात होता है कि ग्रहों के शुभ या अशुभ प्रभाव की भी कल्पना की गयी थी ।

तिथियों के नाम : वेदों में तिथि शब्द का प्रयोग नहीं है । वेदों में तिथि के अर्थ में 'अहन्' या दिन शब्द का प्रयोग है । ऐतरेय ब्राह्मण में तिथि शब्द की व्याख्या में लिखा है कि पिछले दिन को छोड़कर नया दिन जो उदय होता है, वह तिथि है ।[१६] इसका अभिप्राय यह है कि नए दिन के साथ नई तिथि प्रारम्भ होती है ।

तिथि चान्द्र दिवस या चान्द्रमास का तीसवाँ भाग होती है । गोभिल गृह्यसूत्र और शांखायन गृह्यसूत्र में कुछ तिथियों का उल्लेख है ।[१७] जैसे - प्रतिपद् या प्रतिपदा आदि । अथर्ववेद में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी आदि शब्द रात्रि के अर्थ में प्रयुक्त हैं ।[१८] यजुर्वेद में तिथि के अर्थ में अहन् (दिन) शब्द का प्रयोग है और प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश और द्वादश का प्रयोग है ।[१९]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में कुछ तिथियों के नाम प्राप्त होते हैं । ये हैं : **१. राका** - यह पूर्णिमा के लिए है ।[२०] **२. पौर्णमासी** - यह पूर्णिमा के लिए है ।[२१] **३. अमावास्या** - यह अमावस्या के लिए है ।[२२] **४. कुहू** - यह अमावास्या के लिए है ।[२३] **५. सिनीवाली** - यह अमावस्या के बाद वाली प्रतिपदा के लिए है, अर्थात् शुक्लपक्ष की प्रतिपदा की रात्रि ।[२४] **६. एकाष्टका** - यह पूर्णिमा के बाद की अष्टमी के लिए है ।[२५] मुख्य रूप से यह माघ-कृष्णपक्ष की अष्टमी के लिए है ।

१३. यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम् । अथर्व० १३.३.१०
१४. (क) चतुस्त्रिंशता ... ज्योतिषा । ऋग्० १०.५५.३
(ख) चतुस्त्रिंशद् वाजिनः । ऋग्० १.१६२.१८
१५. शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः० । अ० १९.९.१०
१६. यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः । ऐत० ७.११
१७ गोभिल गृ० १.१.१३ । २.८.१२ । शांखा० गृ० १.२५,५.२
१८. अथर्व० १५.१३.३ से ७ १९. प्रथमेऽहन् , द्वितीये, तृतीये० । यजु० ३९.६
२०. राकाम् । ऋग्० २.३२.४ । अ० ७.४८.१
२१. पौर्णमासी । अ० ७.८०.१ से ४
२२. अमावास्या । अ० ७.७९.१ से ४ । ऋग्० २.३६.३
२३. कुहूं देवीम् । अ० ७.४७.१
२४. सिनीवालि० । ऋग्० २.३२.६ । अ० ७.४६.१
२५. एकाष्टके० । अ० ३.१०.५

वर्षचक्र और कालमान (Measures of Time) : अथर्ववेद के एक मंत्र में संवत्सर को इस रूप में बाँटा गया है । मंत्र में कालमान-संबन्धी ये शब्द आये हैं - ऋतु, आर्तव, हायन, समा, मास, संवत्सर ।[1] सायण ने इस मंत्र की व्याख्या में इन शब्दों का विवरण इस प्रकार दिया है । समा, हायन और संवत्सर शब्दों का यद्यपि एक ही अर्थ 'वर्ष' लिया जाता है, परन्तु यहाँ इनके भेद का निर्देश हैं :

१. ऋतु : वर्ष में दो -दो मास के वसन्त, ग्रीष्म आदि ६ ऋतुएँ ।

२. आर्तव : ऋतु के अवयव कला, काष्ठा आदि काल-विभाग । जैसे - कला = एक मिनट, काष्ठा - एक मिनट का १ /३० भाग, अर्थात् २ सेकेंड, विकला = कला का १/६० भाग, अर्थात् १ सेकेंड ।

३. हायन : वर्ष-संबन्धी अहोरात्र, अर्थात् दिन और रात ।

४. समा : बारह मास के समान रूप से विभक्त २४ अर्धमास । इस प्रकार समा शब्द अर्धमास के लिए है ।

५. मास : चैत्र आदि बारह मास ।

६. संवत्सर : बारह मास वाला वर्ष ।

कौटिल्य-संमत कालमान : कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में काल को इन इकाइयों में विभक्त किया है - तुट या त्रुटि, लव, निमेष, काष्ठा, कला, नालिका, मुहूर्त, पूर्वभाग (Forenoon) , अपरभाग (Afternoon), दिवस, राशि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग ।[2]

१. १ तुट = निमेष (पलक मारना) का १/४ भाग

२.	२ तुट = १ लव,	३.	२ लव = १ निमेष
४.	५ निमेष = १ काष्ठा	५.	३० काष्ठा = १ कला
६.	४० कला = १ नालिका (नाडी)	७.	२ नालिका = १ मुहूर्त
८.	३० मुहूर्त = १ अहोरात्र (१५+१५)	९.	१५ अहोरात्र = १ पक्ष
१०.	२ पक्ष = १ मास	११.	२ मास = १ ऋतु
१२.	३ ऋतु = १ अयन	१३.	२ अयन = १ संवत्सर
१४.	५ संवत्सर = १ युग		

---

१. ऋतून् यज .... आर्तवान् उत हायनान् ।
समा: संवत्सरान् मासान्० । अ० ३.१०.९

२. कालमानम् । तुटो लवो निमेष: काष्ठा कला, नालिका, मुहूर्त:, पूर्वापरभागौ दिवसो रात्रि: पक्षो मास: ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति ।
कौ० अर्थ० २.२०.३० पृ० २२३-२२४

ऋतु और मास : यजुर्वेद में १२ मासों के वैदिक नाम और ६ ऋतुनाम दिए गए हैं। मासों के नाम चैत्र आदि के स्थान पर मधु माधव आदि नाम दिए गए हैं।[3] १२ मास और ६ ऋतु नाम ये हैं :

पारिभाषिक नाम	प्रचलित नाम	ऋतु	इंग्लिश् नाम
१. मधु-माधव	चैत्र-वैशाख	वसन्त	Spring
२. शुक्र -शुचि	ज्येष्ठ-आषाढ	ग्रीष्म	Summer
३. नभस् - नभस्य	श्रावण-भाद्रपद	वर्षा	Rainy
४. इष - ऊर्ज	आश्विन-कार्तिक	शरद्	Autumn
५. सहस्-सहस्य	मार्गशीर्ष-पौष	हेमन्त	Winter
६. तपस्-तपस्य	माघ-फाल्गुन	शिशिर	Cold

अधिमास या मलमास : सूर्य के आधार पर की गयी वर्ष गणना को सौर वर्ष कहते हैं। सूर्य एक नक्षत्र-चक्र को १२ मास या ३६५ दिनों में पूरा करता है, अत: सौर वर्ष ३६५ दिन का माना जाता है। चान्द्र वर्ष चन्द्रमा की परिक्रमा के आधार पर होता है। चान्द्र वर्ष ३५४ दिन का होता है। चान्द्र वर्ष प्रतिवर्ष लगभग ११ दिन पिछड़ जाता है, अत: वर्षगणना को पूरा करने के लिए प्रति चौथे वर्ष एक तेरहवें मास को मानना पड़ता है। अथर्ववेद में इसको 'त्रयोदश: मास:' अर्थात् तेरहवाँ मास कहा गया है।[4] इस तेरहवें मास को अधिमास, अधिक मास या मलमास कहते हैं। यजुर्वेद में इसको 'संसर्प' और 'मलिम्लुच' नाम दिया गया है।[5] तैत्तिरीय संहिता में इसके लिए 'अंहस्पति' शब्द आया है।[6]

सावन दिन, मास, वर्ष : सूर्योदय से लेकर अगले दिन सूर्योदय तक के २४ घंटे के समय को सावन दिन कहते थे। ऐसे ३० दिन का एक मास और ऐसे १२ मास का एक वर्ष माना जाता था। यह वर्ष ठीक ३६० दिन का होता था। सोमयाग में सावन दिन ही चलता था। एक सावन दिन में प्रात:, मध्याह्न और सायंकाल तीन

---

३. मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। यजु० १३.२५
शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू। यजु० १४.६
नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। यजु० १४.१५
इषश्चोर्जश्च शारदावृतू। यजु० १४.१६
सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू। यजु० १४.२७
तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। यजु० १५.५७

४. त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृह:। अ० ५.६.४

५. संसर्पाय, मलिम्लुचाय। यजु० २२.३०

६. अंहस्पत्याय। तैत्ति०सं० १.४.१४

सवन (यज्ञ) होते थे। एक दिन का 'एकाह' सोमयाग होता था और ६ दिन का 'षडह'। इस प्रकार ५ षडह का अर्थात् ५ x ६ = ३० दिन का एक सौर मास होता था और ऐसे १२ मास का अर्थात् ३० x १२ = ३६० दिन का एक सावन वर्ष माना जाता था।[७] इसका संबन्ध 'सवन' (यज्ञ) से था, अतः इसे 'सावन' दिन, मास या वर्ष कहा जाता था।

मास-गणना के विविध प्रकार : सामवेद के श्रौतसूत्रों आदि सूत्रग्रन्थों में पाँच प्रकार के मासों का उल्लेख मिलता है।[८]

(१) वर्ष ३२४ दिनों का। इसमें २७ दिन वाले १२ मास होते थे। २७ नक्षत्रों के हिसाब से २७ दिन का मास, अतः २७ x १२ = ३२४ दिनों का एक वर्ष।

(२) वर्ष ३५१ दिनों का। इसमें २७ दिन वाले १२ मास और २७ दिन का ही एक तेरहवाँ मास भी, अतः २७ x १३ = ३५१ दिन का वर्ष।

(३) वर्ष ३५४ दिनों का। चान्द्रमास २९ + १/२ (साढ़े उनतीस) दिन का होता है। अतः एक वर्ष में ६ दिन कम हो जाते हैं। ३६०-६ = ३५४ दिन का चान्द्र वर्ष।

(४) वर्ष ३६० दिनों का। यह सावन वर्ष है। इसमें ३० दिन का मास होता है, अतः ३० x १२ = ३६० दिनों का एक वर्ष।

(५) वर्ष ३७८ दिनों का। यह अधिमास या मलमास वाला वर्ष है। चान्द्रवर्ष सावन वर्ष से प्रतिवर्ष ६ दिन कम होता है, अतः सावन वर्ष से समन्वय बैठाने के लिए ३ वर्ष पर ६ x ३ = १८ दिन बढ़ाने से वह वर्ष ३६० + १८= ३७८ दिन का हो जाता है।

वेदांग ज्योतिष (याजुष ज्योतिष) में वर्ष में ३६६ दिन होने का उल्लेख है।[९] श्रौतसूत्रों आदि में ३६६ दिनों के वर्ष का उल्लेख नहीं है। गर्ग ने भी ३६६ दिन के वर्ष का उल्लेख किया है।[१०]

---

७. सावनशब्दोऽहोरात्रोपलक्षकः। षडहेन पंचकेन एको मासः, तादृशैर्द्वादशभिर्मासैः संवत्सरसत्रम्। कालमाधव, माध्वाचार्य।

८. द्रष्टव्य, लाट्यायन श्रौतसूत्र ४.१ से आगे। निदानसूत्र ५.११.१२ विशेष विवरण के लिए देखें - सूर्यकान्त, वैदिक कोश पृ० ३७८-३८१

९. त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः। वेदांग०, याजुष० २८

१०. गर्ग, ज्योतिष १० के भाष्य में उद्धृत।

कौटिल्य और मास के विविध प्रकार : कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में विविध प्रकार से मासों का उल्लेख किया है । साथ ही वेतन देने की दृष्टि से भी कुछ मासों का उल्लेख कियाहै ।[११] ये मास हैं :

१. प्रकर्ममास : वेतन देने के लिए तीस अहोरात्र (दिन-रात) का एक मास माना जाता था ।

२. सौर मास : साढ़े तीस अहोरात्र का एक सौर मास होता है ।

३. चान्द्र मास : साढ़े उनतीस अहोरात्र का एक चान्द्रमास होता है ।

४. नक्षत्रमास : सत्ताइस अहोरात्र का एक नक्षत्रमास होता है ।

५. मलमास : बत्तीस अहोरात्र का एक मलमास होता है ।

६. अश्ववाह मास : अश्ववाह (सईस) को ३५ दिन पर वेतन दिया जाता था, अत: सईस के लिए मास ३५ दिन का गिना जाता था ।

७. हस्तिवाह मास : हाथी के सेवकों पीलवान आदि को ४० दिन पर वेतन दिया जाता था, अत: उनका महीना ४० दिन का गिना जाता था।

कौटिल्य ने सौर और चान्द्र मासों के अन्तर को स्पष्ट किया है कि सूर्य प्रतिदिन दिन के ६०वें भाग (अर्थात् १ घड़ी) का छेद करता है, अर्थात् सूर्य एक दिन में एक घड़ी बढ़ा देता है । इस प्रकार एक ऋतु या ६० दिन में वह एक दिन बढ़ जाता है । इसी प्रकार चन्द्रमा एक दिन में एक घड़ी कम करता चलता है, अत: दो मास में एक दिन घट जाता है । इस प्रकार सूर्य ३६० दिन में ६ दिन बढ़ जाता है, अर्थात् ३६६ दिन का सौर वर्ष होता है । दूसरी ओर चन्द्रमा प्रतिदिन एक घड़ी कम चलने से २ मास में एक दिन और वर्ष में ६ दिन कम हो जाता है , अत: ३६०-६ = ३५४ दिन का चान्द्रमास होता है । इस प्रकार एक वर्ष में सौर और चान्द्र मासों में १२ दिन का अन्तर हो जाता है । ढ़ाई वर्ष में ये १२ दिन बढ़कर ३० दिन हो जाता है, अत: ढाई वर्ष पर एक मलमास होता है । इस प्रकार पहला

---

११. त्रिंशद् अहोरात्र: प्रकर्ममास:। सार्ध: सौर: । अर्धन्यूनश्चान्द्रमास: । सप्तविंशतिर्नक्षत्रमास: । द्वात्रिंशद् मलमास: । पंचत्रिंशद् अश्ववाहाया: । चत्वारिंशद् हस्तिवाहाया: । कौ.अर्थ० २.२०.५५-६१, पृ० २२५

१२. दिवसस्य हरत्यर्क: षष्टिभागमृतौ तत: ।
करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमा: ।
एवमर्धतृतीयानाम् अब्दानाम् अधिमासकम् ।।
कौ०अ० २.२०.७३-७४, पृ० २२६

मलमास या अधिमास यदि ग्रीष्म में पड़ेगा तो दूसरा मलमास पाँच वर्ष बाद हेमन्त में पड़ेगा ।[१२]

कौटिल्य ने बताया है कि अषाढ़ मास में दोपहर को छाया का पता नहीं चलता है, अर्थात् सूर्य सिर के ऊपर होता है । श्रावण से पौष तक (६ मास तक) मध्याह्न में छाया २ अंगुल बढ़ती जाती है और फिर माघ से ज्येष्ठ तक ६ मास छाया घटती जाती है ।[१३]

उत्तरायण और दक्षिणायन के विषय में बताया है कि शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु उत्तरायण कहलाते हैं तथा वर्षा, शरद् और हेमन्त ये ऋतुएँ दक्षिणायन कही जाती हैं ।[१४] उत्तरायण और दक्षिणायन दोनों को मिलाकर एक संवत्सर (वर्ष) होता है । पाँच वर्ष का एक युग होता है ।

मासगणना के दो प्रकार : ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मास की गणना दो प्रकार से होती थी । १. मास की समाप्ति पूर्णिमा को, अत: इसे पूर्णिमान्त मास कहते थे । २. मास की समाप्ति अमावस्या को, अत: इसे अमान्त मास कहते थे । पूर्णिमान्त मास कृष्णपक्ष से प्रारम्भ होता है और इसकी समाप्ति पूर्णिमा को होती है । पूर्णिमा, पूर्णमास या पौर्णमासी शब्द सूचित करते हैं कि मास इस दिन पूर्ण हुआ । अमान्त मास शुक्ल पक्ष से प्रारम्भ होता है और अमावस्या को समाप्त होता है । तैत्तिरीय संहिता में दोनों प्रकार के मासों का उल्लेख है ।

'गवाम् अयन' और 'उत्सर्गिणाम् अयन' ये विशेष प्रकार के यज्ञिय अनुष्ठान थे । ये एक मास से लेकर वर्ष भर चलने वाले अनुष्ठान थे । इनके प्रसंग में ही वर्णन है कि जो अमान्त मास मानते हैं, वे अमावस्या से अनुष्ठान प्रारम्भ करते हैं और अमावस्या के दिन ही समाप्त करते हैं । दूसरे प्रकार के वे लोग हैं, जो पूर्णिमान्त मास मानते हैं, वे पूर्णिमा से अनुष्ठान प्रारम्भ करते हैं और अगली पूर्णिमा को समाप्त करते हैं । इस प्रकार से ब्राह्मण ग्रन्थों में दोनों प्रकार के मासों का उल्लेख है ।[१५]

---

१३. आषाढे मासि नष्टछायो मध्याह्नो भवति । कौ० अर्थ० पृष्ठ २२५

१४. शिथिराद्युत्तरायणम् । वर्षादि दक्षिणायनम् । कौ० अर्थ० पृ० २२६

१५. अमावस्यया मासान् संपाद्याहरुत्सृजन्ति, अमावस्यया हि मासान् संपश्यन्ति । पौर्णमास्या हि मासान् संपाद्याहरुत् सृजन्ति, पौर्णमास्या हि मासान् संपश्यन्ति । तैत्ति० सं० ७.५.६.१

पूर्णिमान्त मास मानने पर मास का प्रारम्भ (पूर्वपक्ष) कृष्णपक्ष होता है और उत्तरपक्ष (उत्तरार्ध) शुक्लपक्ष होता है । परन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण और निरुक्त में मास का प्रारम्भ शुक्ल पक्ष से और समाप्ति (उत्तरार्ध) कृष्णपक्ष से बताया गया है । इस प्रकार का मास अमान्त मास होता है । यह भी कहा गया है है कि पूर्वपक्ष अर्थात् शुक्लपक्ष देवों से संबद्ध है और उत्तरार्ध कृष्णपक्ष असुरों से ।[१६] यास्क ने भी निरुक्त में शुक्ल पक्ष को पूर्वपक्ष और कृष्णपक्ष को उत्तरपक्ष (उत्तरार्ध) बताया है ।[१७]

आधुनिक पंचांग एक प्रकार से दोनों पद्धतियों का समन्वय हैं । इनमें मास पूर्णिमान्त होते हैं अर्थात् मास का प्रारम्भ कृष्णपक्ष से होता है और समाप्ति शुक्ल पक्ष से, अतः मास की समाप्ति पूर्णिमा को होती है । परन्तु वर्ष का प्रारम्भ शुक्लपक्ष से होता है, अर्थात् चैत्र शुक्लपक्ष से वर्ष प्रारम्भ होता है और आगामी चैत्र कृष्णपक्ष की अमावस्या को वर्ष पूरा होता है । इस प्रकार मास पूर्णिमान्त हैं और वर्ष अमान्त हैं । अतः आधुनिक पंचांग दोनों पद्धतियों का समन्वय समझना चाहिए ।

इसी प्रकार दोनों अयन अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन का भी भेद किया गया है । उत्तरायण का संबन्ध देवों से है और दक्षिणायन का पितरों से । शतपथ ब्राह्मण में इसी प्रकार दिन और रात्रि का तथा दिन के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध का भेद किया गया है । दिन का संबन्ध देवों से है और रात्रि का संबन्ध पितरों से । दिन का भी पूर्वार्ध (पूर्वाह्ण) देवों से संबद्ध है और उत्तरार्ध (अपराह्ण) पितरों से ।[१८] इसका अभिप्राय यह है कि देवों से संबद्ध पक्ष में आग्नेय तत्त्व (Oxygen) की प्रधानता रहती है और पितरों से संबद्ध पक्ष में सोमीय तत्त्व (Hydrogen) की । अयन, ऋतु, अहोरात्र आदि सभी में कभी आग्नेय तत्त्व और कमी सोमीय पक्ष प्रबल होता है । आग्नेय तत्त्व उर्जा, उष्णता, प्राण शक्ति आदि देता है तथा सोमीय पक्ष शीतलता, शन्ति एवं अपान शक्ति देता है ।

---

१६. पूर्वपक्षं देवाः, अपरपक्षम् अन्वसुराः । तैत्ति० ब्रा० २.२.३.१

१७. नवो नवो० इति पूर्वपक्षादिम् अभिप्रेत्य, अह्नां केतुः० इत्यपरपक्षान्तम् अभिप्रेत्य० । निरुक्त ११.६

१८. अहरेव देवाः, रात्रिः पितरः । पूर्वाह्णो देवाः , अहराह्णः पितरः । शत०ब्रा० २.१.३.१

मासों और अर्धमासों के नाम : तैत्तिरीय ब्राह्मण में मलमास को लेते हुए १३ मासों के ये नाम दिए हैं :[१]

अरुण, अरुणरजः, पुण्डरीक, विश्वजित् , अभिजित् , आर्द्र, पिन्वमान, उन्नवान् , रसवान् , इरावान् , सर्वौषध, संभर, महस्वान् ।

बारह मासों के अर्धमास अर्थात् २४ अर्धमासों (Halfmonths, Fort-nights) के नाम तैत्तिरीय ब्राह्मण में दिए हैं :[२]

पवित्र, पवयिष्यन्, पूत, मध्य, यशः, यशस्वान् , आयुः , अमृत, जीव, जीविष्यन्, स्वर्ग, लोक, सहस्वान् , सहीयान् , ओजस्वान् , सहमान, जनयन् , अभिजयन्, सुद्रविण, द्रविणोदा, आर्द्र-पवित्र, हरिकेश , मोद, प्रमोद ।

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के दिन और रात्रि के नाम : तैत्तिरीय ब्राह्मण में शुक्लपक्ष के १५ दिनों के ये नाम दिए हैं[३] :

संज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, जानत् , अभिजानत् , संकल्पमान, प्रकल्पमान, उपकल्पमान, उपक्लृप्त, क्लृप्त, श्रेयः, वसीयः, आयत् , संभूत, भूत ।

शुक्लपक्ष की १५ रात्रियों के ये नाम हैं : [४]

दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना, आप्यायमाना, प्यायमाना, प्याया, सूनृता, इरा, आपूर्यमाणा, पूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी ।

इसी प्रकार कृष्णपक्ष के १५ दिनों के ये नाम दिए हैं :[५]

प्रस्तुत, विष्टुत, संस्तुत, कल्याण, विश्वरूप, शुक्र, अमृत, तेजस्वी, तेजः, समृद्ध, अरुण, भानुमत् , मरीचिमत् , अभितपत् , तपस्वत् ।

कृष्णपक्ष की १५ रात्रियों के ये नाम दिए हैं : [६]

सुता, सुन्वती, प्रसूता, सूयमाना, अभिषूयमाणा, प्रीति, प्रपा, संपा, तृप्ति, तर्पयन्ती, कान्ता, काम्या, कामजाता, आयुष्मती, कामदुघा ।

---

१. अरुणोऽरुणरजः पुण्डरीकः० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१०.३
२. पवित्रं पवयिष्यन् पूतो मेध्यः० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१०.१
३. संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानम् । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.१
४. दर्शा दृष्टा दर्शता० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.१
५. प्रस्तुतं विष्टुतं संस्तुतम्० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.२
६. सुता, सुन्वती, प्रसूता० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.२-३

तिथि नाम : वैदिक साहित्य में प्रतिपदा, द्वितीया आदि तिथियों के नाम नहीं मिलते हैं । कुछ नाम ये मिलते हैं : चन्द्रमा के घटने और बढ़ने के आधार पर उसे 'पंचदशः' कहा है, अर्थात् १५ दिन घटता है और १५ दिन बढ़ता है ।[७] एक वर्ष में १२ पूर्णमासी होती हैं, १२ अमावस्या और १२ अष्टका ।[८] कृष्णपक्ष के प्रारम्भ के ८ दिनों को 'एकाष्टका' भी कहते थे ।[९] कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को 'व्यष्टका' भी कहते थे और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को उदृष्टा ।[१०] अमावस्या के लिए अमा, दर्श, सिनीवाली और कुहू शब्द आते हैं । पूर्णिमा के लिए पौर्णमासी, राका और अनुमति शब्द हैं ।[११]

दिन के विभाग : दिन के कई विभागों का वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है । दिन को २,३,४ और ५ भागों में बाँटा गया है :

१. दिन के दो विभाग : पूर्वाह्ण (A.M.) और अपराह्ण (P.M.) ।[१२]

२. दिन के तीन विभाग - पूर्वाह्ण, मध्यन्दिन और अपराह्ण ।

३. दिन के चार विभाग - पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्न ।

४. दिन के पाँच विभाग : प्रातः, संगव, मध्यन्दिन, अपराह्ण और सायम् ।[१३]

मुहूर्तों के नाम : जिस प्रकार एक मास में ३० दिन होते हैं, उसी प्रकार एक दिन (अहोरात्र) में तीस मुहूर्त होते हैं । तैत्तिरीय ब्राह्मण में शुक्ल पक्ष और कृष्णपक्ष के दिन और रात्रि के पृथक्-पृथक् १५-१५ मुहूर्तों के नाम दिए गए हैं । इस प्रकार शुक्लपक्ष दिन के १५ मुहूर्त, शुक्लपक्ष रात्रि के १५ मुहूर्त और कृष्णपक्ष दिन के १५ मुहूर्त तथा कृष्णपक्ष रात्रि के १५ मुहूर्त । इतनी सूक्ष्मता से ये ६० नाम मुहूर्तों के दिए गए हैं ।

---

७. चन्द्रमा वै पंचदशः । तैत्ति० ब्रा० १.५.१०

८. द्वादश पौर्णमास्यः । द्वादशाष्टका । द्वादशामावास्याः । तै०ब्रा० १.५.१२

९. द्वादश- एकाष्टका । तांड्य ब्रा० १०.३.११

१०. व्यष्टकायाम् उत्तरम् । उदृष्ट उत्तरम् । तैत्ति० ब्रा० १.८.१०.२

११. ऐत०ब्रा० ७.११ । निरुक्त ११.३१

१२. पूर्वाह्णः, मध्यन्दिनः, अपराह्णः । शत०ब्रा० २.४.२.८

१३. (क) प्रातः, सायम्, संगवः, मध्यन्दिनः, अपराह्णः । तैत्ति० ब्रा० १.५.३
(ख) उद्यन् , संगवः, मध्यन्दिनः, अपराह्ण, अस्तम् । अ० ९.६.४६

(१) शुक्लपक्ष के दिनों के १५ मुहूर्त :[१४]

चित्र, केतु, प्रभान् , आभान् , संभान्, ज्योतिष्मान् , तेजस्वान् , आतपन्, तपन् , अभितपन् , रोचन, रोचमान , शोभन, शोभमान, कल्याण ।

(२) शुक्लपक्ष रात्रि के १५ मुहूर्त :[१५]

दाता, प्रदाता, आनन्द, मोद, प्रमोद, आवेशन् , निवेशयन् , संवेशन, संशान्त, शान्त, आभवन् , प्रभवन् , संभवन् , संभूत, भूत ।

(३) कृष्णपक्ष दिन के १५ मुहूर्त :[१६]

सविता, प्रसविता, दीप्त, दीपयन् , दीप्यमान, ज्वलन् , ज्वलिता, तपन् , वितपन् , सन्तपन् , रोचन, रोचमान, शुम्भू, शुम्भमान, वाम ।

(४) कृष्णपक्ष रात्रि के १५ मुहूर्त : [१७]

अभिशास्ता, अनुमन्ता, आनन्द, मोद, प्रमोद, आसादयन् , निषादयन् , संसादन, संसन्न, सन्न, आभू, विभू, प्रभू, शंभू, भुवः ।

१५ प्रतिमुहूर्त : तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रत्येक मुहूर्त को फिर १५ भागों में बाँटा गया है । इन्हें प्रतिमुहूर्त कहा गया है । ये मुहूर्त के उप-विभाग हैं । १५ प्रतिमुहूर्त ये हैं :[१८]

इदानीम् , तदानीम् , एतर्हि, क्षिप्र, अजिर, आशु, निमेष, फण, द्रवन् , अतिद्रवन् , त्वरम् , त्वरमाण , आशु, आशीयान् , जव ।

अहोरात्र (२४ घंटे) में ३० मुहूर्त होते हैं, अतः एक मुहूर्त ४८ मिनट का हुआ । ४८ मिनट को भी १५ प्रतिमुहूर्तों में बाँटा, अतः एक प्रतिमुहूर्त ३.२ मिनट या १९२ सेकेंड का हुआ । वैदिक ऋषियों ने काल का इतनी सूक्ष्मता से विभाजन किया है, यह उनकी प्रातिभशक्ति का द्योतक है ।

---

१४. चित्रः केतुः प्रभान्० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.१

१५. दाता प्रदाताऽऽनन्दः० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.१-३

१६. सविता प्रसविता दीप्तः० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.१-३

१७. अभिशास्ताऽनुमन्ता० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.१-३

१८. इदानीं तदानीम् एतर्हि० । तैत्ति० ब्रा० ३.१०.१.४

अध्याय - ९

वृष्टिविज्ञान (Meteorology)

वृष्टिविज्ञान का संबन्ध मेघों की रचना, उनके निर्माण में सहायक तत्त्व, मेघों के विभिन्न रूप, वर्षा के विभिन्न रूप, यज्ञ का वृष्टिविज्ञान में योगदान, वर्षा की उपयोगिता, वर्षा के कृत्रिम उपाय, अतिवृष्टि को रोकना, वर्षा-विषयक भविष्यवाणी आदि विषयों से है। वेदों में इस विषय से संबद्ध पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है, उसका यहाँ संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

मेघ (बादल) कैसे बनते हैं ?

सामान्य प्रक्रिया के अनुसार मेघों का निर्माण इस प्रकार होता है :

सूर्य अपनी किरणों से समुद्र आदि के जल को भाप के रूप में ऊपर आकाश में ले जाता है। वहाँ वह भाप या गैस धूलिकणों के संपर्क से और शीतल वायु के कारण घनीभूत होती है। भाप को मेघ रूप में परिवर्तित होने में पर्याप्त समय लगता है। मेघ के भ्रूण को अपरिपक्व अवस्था से परिपक्व अवस्था में पहुँचने में प्रायः १९५ दिन, अर्थात् साढ़े छह मास लगते हैं। परिपक्व मेघ ही वर्षा के रूप में पृथिवी पर आते हैं।

यज्ञ आदि के द्वारा जो धूम ऊपर उठता है, वह सूर्य-किरणों के प्रभाव से ऊपर जाकर विद्युत्-कण के रूप में परिवर्तित होता है और घनीभूत होकर मेघ बनता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से किसी भी द्रव्य का कण (Particle) यदि थोड़ी सी तडित्शक्ति (Positive या Negative electricity) वहन करते हुए घूमे तो वह Charged particle ही ion (आयन) होता है। किसी भी तरल या वायवीय पदार्थ के कण यदि इसी प्रकार के वाहन बन जायें तो उस तरल या वायवीय पदार्थ को Ionised (तडित्-शक्तियुक्त) कहा जाएगा।[१]

यज्ञ में अग्निशिखाओं में जलकर द्रव्य गैस बनकर ऊपर उठता है तो उसके सूक्ष्म कण (Ions) तडित्-शक्तियुक्त (Charged) हो जाते हैं। आकाश में यदि धूल के कण मिल जाते हैं तो ये (Ion) उनसे मिल जाते हैं। हवन में हुत द्रव्य कुछ अंश में धुआँ बनकर ऊपर उठता है। उस हुत द्रव्य में कुछ अंश गैस बनकर

१. वेद व विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द, पृ० २१८-२१९

अग्निशिखा से निकलते हैं । इनमें तीव्र ताप और रासायनिक संयोग विद्यमान हैं । इसका फल यह होता है कि हुत द्रव्य का गैस तडित्शक्ति-विशिष्ट अर्थात् Ionised हो जाएगा । अग्निशिखा को छोड़कर बहुत दूर जाने पर भी एवं ठंडा हो जाने पर भी यह गैस-कण अपनी तडित्शक्ति को नहीं छोड़ता है । ये Ions धूमकणों या धूलिकणों के साथ मिलकर ऊपर जाते हैं । ये सब Charged particles ऊपर उठकर वायु के जलीय वाष्प को जमाकर मेघ बना देते हैं । धूलिकण आदि भी वाष्प को घनीभूत होने में सहायता करते हैं ।

वैज्ञानिक हेल्महोल्त्स (Helmholtz) और रिचार्ड (Richard) ने अपने परीक्षणों से सिद्ध किया है कि केवल धूलिकण ही नहीं, अपितु Ion (आयन, विद्युत्कण) भी जलीय वाष्प का घनीभाव-केन्द्र बनता है, अर्थात् तडित्शक्ति-विशिष्ट कणों (Charged particles) को केन्द्र बनाकर वाष्प जमकर मेघ बनता है ।

मेघ बनाने के लिए दो व्यवस्थाएँ करनी होती हैं : गैस के आयतन को कुछ बड़ा करके उसे ठंडा होने दिया जाता है और एक भावकेन्द्र (धूणिकण हो या ion हो) जुटा देना होता है । धूलिकण का होना आवश्यक नहीं है । धूलिकणों के अभाव में भी मेघ बनाना होगा तो गैस का आयतन और बढ़ा देंगे ।

प्रो० विल्सन (Wilson) ने परीक्षणों के बाद यह दिखाया है कि गैस यदि फैली हुई हो तो उसके भीतर Ions बिखरे रहने पर मेघ बनने में बहुत सुविधा होती है । यदि गैस अधिक फैली हुई अवस्था में हो तो रंजन-किरणें (Rontgen rays, X-rays) उसमें शीघ्र ही घने मेघ की रचना कर देती हैं । यदि रंजन-किरणें नहीं छोड़ी गयीं हैं तो दो-चार जल-बिन्दु दिखाई पड़ेंगे । ज्यों ही रंजन-किरणें डाली जाती हैं, तत्क्षण अक्षौहिणी सेना की तरह जल-कणिकाएँ दिखाई देने लगती हैं । यूरेनियम आदि Radio-active वस्तुओं से भी जो Ions विकीर्ण होते हैं, उनसे भी इसी प्रकार का जादू दिखाया जा सकता है ।[१]

मनु का मत -

मनु का कथन है कि -

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः । मनु० ३.७६

अग्नि में छोड़ी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है । सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजाएँ ।

---

१. देखो, वेद व विज्ञान पृ० २१९-२२२

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अग्नि में डाली हुई आहुति आदित्यमंडल में कैसे पहुँचती है ? इसका समाधान है कि अग्नि में डाला द्रव्य Ionised (विद्युत्कणीभूत) हो जाता है । उसके कणों में से कुछ 'धन' (Positive) तडित् और कुछ 'ऋण' (Negative) तडित् को वहन करके बाहर निकलते हैं । सूर्य का Charge positive है और उस Charge की मात्रा Voltage भी भयानक है । उसके फलस्वरूप सूर्य Negative तडित्-कणों (Electrons) को अपनी ओर खींचता है । अरहनियस (Arrhenius) आदि आधुनिक वैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं । अत: यह कहा जा सकता है कि आहुत पदार्थों की Negative तडित्-कणावली को आदित्य अपनी ओर खींचता है ।[१]

जल में अग्नि : वेदों के अनेक मंत्रों में यह कहा गया है कि जल के अन्दर अग्नि है । अग्नि जल के अन्दर छिपी हुई है । अग्नि सभी चराचर के अन्दर वर्तमान है । अग्नि को जल का पित्त अर्थात् ऊष्मा या तेज (Lustre, Heat) कहा गया है । ऋग्वेद में कहा गया है कि अन्तर्हित (गुप्त) अग्नि को कौन जानता है ? यह जल का पुत्र है । यह अग्नि जहाँ जल का पुत्र है, वहीं यह जल की रचना भी करता है । अग्नि के कारण ही मेघ बनते हैं और वर्षा होती है । इसलिए ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र कहता है कि अग्नि जल के गर्भ में वास करता है, यह चर और अचर सभी भूतों में गुप्त रूप में विद्यमान है ।

(क) अग्ने पित्तम् अपामसि । अथर्व० १८.३.५

(ख) क इमं वो निण्यमा चिकेत ... गर्भो अपसाम्० । ऋग्० १.९५.४

(ग) गर्भो यो अपां, गर्भो वनानां, गर्भश्च स्थातां, गर्भश्चरथाम् ।
ऋग्० १.७०.२

इससे स्पष्ट होता है कि जल में विद्युत् रूप से रहने वाली यह अग्नि ही बादलों के निर्माण का कारण है ।

---

१. वेद व विज्ञान, पृ० २२२

मेघ की रचना और वृष्टि

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में कुछ महत्त्वपूर्ण मंत्र हैं, जिनसे बादलों की रचना आदि पर विशेष प्रकाश पड़ता है। मंत्र का कथन है कि सूर्य कि किरणें जल को भाप के रूप में अपने आकर्षण से ऊपर ले जाती हैं और फिर इसको वृष्टि के रूप में नीचे लाती हैं, जिससे पृथिवी गीली हो जाती है। एक अन्य मंत्र में जल के चक्र का वर्णन किया गया है। यह एक जल का चक्र है, जो सूर्य की किरणरूपी अग्नि से ऊपर जाता है और अन्तरिक्षि को शक्ति एवं पोषण प्रदान करता है। यही मेघरूप से वृष्टि के द्वारा पृथिवी को शक्ति देता है।

(क) कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा
अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति । ऋग्० १.१६४.४७

(ख) समानमेतदुदकम् उच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ।। ऋग्० १.१६४.५१

यजुर्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि सूर्य के ताप से समुद्री जल भाप के के रूप में वायु (मरुत्) के द्वारा ऊपर ले जाया जाता है और वह वहाँ मेघ के रूप में परिवर्तित होता है, उससे वृष्टि होती है। यजुर्वेद का कथन है कि जल के कण भाप के रूप में संगठित होते हैं और मरुत् (वायु) के द्वारा आकाश में ऊपर जाते हैं। यजुर्वेद का यह भी कथन है पृथिवी (वशा पृश्नि) अपने प्रतिनिधि के रूप में भापरूप होकर ऊपर जाती है और वहाँ से वृष्टि लाती है। अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य के ताप से जल भाप के रूप में मरुत् (वायु) के द्वारा ऊपर आकाश में जाता है और उससे वर्षा होती है।

(क) मरुतां पृषतीर्गच्छ, वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ,
ततो नो वृष्टिमावह । यजु० २.१६

(ख) उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ।। अ० ४.१५.५

मेघ की रचना और वृष्टि में मरुतों (वायु) का बहुत बड़ा योगदान है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसका बहुत विस्तार से वर्णन है। समुद्री जल को भाप के रूप में आकाश में ले जाना मरुतों का काम है। आकाश में बादलों को इधर से उधर ले जाना और उनसे वर्षा कराना भी मरुतों का काम है। इसलिए वृष्टि-प्रक्रिया में मरुतों का बहुत महत्त्व है।

(क) उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः । ऋग्० ५.५५.५
(ख) मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु । अ० ४.१५.७

मेघ के सहायक तत्त्व

अथर्ववेद के एक मंत्र में बादल के बनाने वाले तत्त्वों में जल (भाप), मरुत् (वायु), अग्नि, अभ्र, विद्युत् का उल्लेख किया गया है। तैत्तिरीय संहिता में वर्षा के कारणों में मरुत् (वायु), अग्नि, सोम और सूर्य का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। साथ ही कुछ अन्य देवों का भी उल्लेख है। ये हैं : वसव्य देव (वसुगण), शर्मण्य देव, मित्र, वरुण, अर्यमा (अर्यमन्), सपीति देव, अपांनपात् (अग्नि) और आशुहेमन् (तीव्र गति वाला, अग्नि)। इनमें मित्र (आक्सीजन, Oxygen) और वरुण (हाइड्रोजन, Hydrogen) ये दोनों धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) गैस हैं। इनके मिश्रण से जल बनता है। इसका सूत्र है - H_2O । हाइड्रोजन के दो अणु और आक्सीजन का एक अणु के अनुपात से गैसों को मिलाने पर विद्युत् संचार होते ही जल बनता है। दोनों गैसों के मिश्रण की यह परम्परा आकाश में सदा स्वतः चलती रहती है, अतएव जल तैयार होता रहता है। ऋग्वेद में इन दोनों गैसों के लिए मित्र और वरुण शब्द हैं तथा इनके मिश्रण से जल बनाने का उल्लेख है।

(क) **अपाम् अग्निः० । आपो विद्युद् अभ्रं वर्ष० ।**
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः० । अ० ४.१५.९-१०

(ख) **मारुतमसि० । देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्य ।**
देवाः शर्मण्या मित्रावरुणाऽर्यमन्० । तैत्ति० सं० २.४.७-८

(ग) **मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।**
धियं घृताचीं साधन्ता । ऋग्० १.२.७

शतपथ ब्राह्मण और उपनिषदें : शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् और बृहदारण्यक उपनिषद् में इस विषय पर और विस्तृत सामग्री प्राप्त होती है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि अग्नि से धूम होता है, धूम से अभ्र (मेघ) होता है और अभ्र से वृष्टि होती है। धूम में सोमीय तत्त्व होता है, अतः वह जलीय तत्त्वों को संगठित करके वृष्टि का कारण बनता है। शतपथ में अन्यत्र कहा गया है कि वर्षा के लिए चार सहायकों की आवश्यकता होती है। ये हैं : १. पुरोवात (पूर्वी हवा, Easterlies), २.अभ्र (बादल, Clouds), ३. विद्युत् (Lightning), ४. स्तनयित्नु (गर्जन, Thunder)।

(क) **अग्नेर्वै धूमो जायते, धूमादभ्रम्, अभ्राद् वृष्टिः ।**
शत० ५.३.५.१७

(ख) **देवाः पुरोवातं ससृजिरे, अभ्राणि समप्लावयन्,**
.. विद्युतम्, ... स्तनयित्नुम्, .. प्रावर्षयन्। शत० १.५.२.१८

शतपथ ब्राह्मण में अग्नि के आठ रूपों का वर्णन किया गया है । अग्नि के इन आठ रूपों को रुद्र (शिव) के आठ रूप (अष्टामूर्ति) कहा जाता है । ये हैं - रुद्र, सर्व, पशुपति, उग्र, अशनि, भव , महादेव और ईशान । इनमें से दो (विद्युत् और भव) का साक्षात् संबन्ध वर्षा से है । १. विद्युत् (Lightning) का ही नाम अशनि (वज्र) है, अतएव विद्युत्पात (बिजली गिरना) को अशनिपात (वज्रपात) कहते हैं । विद्युत् अग्नि का उत्कट रूप है । २. भव की व्याख्या में शतपथ का कहना है कि पर्जन्य (बादल, Cloud) को भव कहते हैं, क्योंकि पर्जन्य (मेघ) से ही सब वृक्ष-वनस्पतियों आदि की उत्पत्ति होती है । भव का अर्थ है - प्रभव या उत्पत्तिस्थान, जिससे वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं ।

(क) एतानि - अष्टौ अग्निरूपाणि ।

(ख) विद्युद् वा अशनिः ।

(ग) पर्जन्यो वै भवः । पर्जन्याद् हीदं सर्वं भवति ।

शत० ६.१.३.१० से १८

छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में अग्नि के तीन रूपों का विस्तार से वर्णन किया गया है । ये हैं - १. द्युलोक में आदित्य (सूर्य), २. अन्तरिक्ष में पर्जन्य (मेघ, विद्युत्), ३. पृथिवी पर अग्नि । प्रत्येक की समिधा (Fuel) , धूम (Smoke), अर्चिस् (लपट, Radiance, flame), अंगार, (अंगारा, Burning coal, Cinder), विस्फुलिंग (चिनगारी, Sparks), हव्य (सामग्री, Offering) का उल्लेख किया गया है । दोनों उपनिषदों में संस्कृत मूलपाठ प्रायः एक ही है ।

अन्तरिक्षस्थ अग्नि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पर्जन्य ही अग्नि है, वायु (Wind) इसकी समिधा है, अभ्र (बादल, Cloud) इसका धूम है, विद्युत् (बिजली, Lightning) इसकी अर्चि (Radiance) है, अशनि (वज्र, Thunder) इसका अंगारा है और ह्लादुनि (बादलों का गर्जन, Thundering sound) इसके विस्फुलिंग (चिनगारी) है । इस अग्नि में देवगण सोम (सोमीय द्रव्यों) की आहुति देते हैं । इसके द्वारा वर्षा होती है । इससे ज्ञात होता है कि वर्षा के उपकरण हैं - वायु, अभ्र, विद्युत् , अशनि, घनगर्जन और सोमीय द्रव्य ।

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निः, तस्य वायुरेव समिद् , अभ्रं धूमो, विद्युदर्चिः, अशनिरङ्गाराः, ह्लादुनयो विस्फुलिंगाः ।

छान्दोग्य० ५.४.५ ; बृहदा० ६.२.९

मेघ और वायु का युग्म : ऋग्वेद के कई मंत्रों में पर्जन्य (मेघ) और वायु (मरुत्) के युग्म (जोड़े) का वर्णन है । ये दोनों मिलकर रहते हैं और चलते हैं । ये जल के धारणकर्ता और वृष्टिकर्ता हैं । इनके द्वारा ही बादलों में गर्जन और कड़क है । मरुत् (वायु) के घर्षण से ही विद्युत्, अशनि आदि का निर्माण होता है ।

मरुत् को ही वर्षा का कारण माना गया है ।

(क) **वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।** ऋग्० १०.६६.१०
(ख) **पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणा ।** ऋग्० १०.६५.९
(ग) **मरुतो वै वर्षस्येशते ।** शत० ९.१.२.५

सूर्य और वर्षा का संबन्ध : यजुर्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है कि सूर्य की किरणें वर्षा का कारण हैं । सूर्य की सातों रंग की किरणें आकाश से वृष्टि कराती हैं । शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि अतएव सूर्य की किरण को 'वृष्टिवनि' अर्थात् वृष्टिदाता कहा गया है ।[१]

(क) **सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ।** यजु० ३८.६
(ख) **अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।** अ० ७.१०७.१

वायु के ६ भेद : यजुर्वेद में वायु के ६ भेदों का उल्लेख किया गया है । ये हैं - १. समुद्र के किनारे की वायु (समुद्र), २. झील, नदी आदि के किनारे की वायु (सरिर), ३. झोंके से आने वाली वायु (अनाधृष्य) , ४. तूफानी वायु, जिसको प्रयत्न करके भी न रोक सकें (अप्रतिधृष्य), ५. स्वास्थ्यवर्धक वायु या रोगादि की नाशक एवं पोषक वायु (अवस्यु), ६. शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु (अशिमिद) ।

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा, सरिराय० , अनाधृष्याय०,
अप्रतिधृष्याय०, अवस्यवे०, अशिमिदाय० । यजु० ३८.७

सात प्रकार के बादल : आचार्य सायण ने ऋग्वेद के एक मंत्र 'यः सप्तरश्मिः०' की व्याख्या में तैत्तिरीय आरण्यक का एक वचन उद्धृत किया है कि सात प्रकार के पर्जन्य (मेघ, बादल) होते हैं, ये वर्षा के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करते हैं । ये हैं - १. वराहु, २. स्वतपस् , ३. विद्युन्महस् , ४. धूपि, ५. श्वापि, ६. गृहमेध, ७. अशिमिविद्विष् । ये भेद कम या अधिक वर्षा वाले, सुखद-असुखद, बिजली की कम या अधिक चमक, घने-हल्के आदि भेदों को ध्यान में रखकर किए गए हैं ।

वराहवः, स्वतपसः, विद्युन्महसः, धूपयः, श्वापयः, गृहमेधाः,
अशिमिविद्विषः पर्जन्याः सप्त० । तैत्ति० आर० १.९.४-५

मेघ एवं वर्षा के अनेक रूप : यजुर्वेद के एक मंत्र में वर्षा के विभिन्न रूपों का वर्णन है । इसमें मेघ-निर्माण से लेकर हिमपात और उपलपात (ओला पड़ना) तक की विभिन्न अवस्थाओं का सुन्दर वर्णन है ।

---

१. शतपथ ० १४.२.१.२१

सबसे पहले सूर्य की किरणों से समुद्र आदि का जल भाप (वाष्प) के रूप में ऊपर उठता है । यहाँ से मेघनिर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है । वात (मरुत्) उसे ऊपर ले जाता है । वह भाप धूम (कुहरा) के रूप में परिवर्तित होता है, फिर वह शीत से जमकर छोटे-छोटे बादल के टुकड़े (अभ्र) के रूपमें परिवर्तित होता है, इससे मेघ (बादल) बनते हैं, बादल बनने पर उसमें घर्षण से विद्युत् उत्पन्न होती है, इसको 'विद्योतमान' कहा है । विद्युत् उत्पन्न होने के बाद बादलों में गर्जन प्रारम्भ होती है, इसे 'स्तनयत्' कहा है । इसके बाद कभी-कभी विद्युत्पात (अशनिपात, बिजली गिरना) होता है, इसे 'अवस्फूर्जत् ' अवस्था कहा है । इसके बाद वर्षा की ११ अवस्थाओं का वर्णन है, सामान्य वर्षा (वर्षत्), बहुत कम या हलकी वर्षा (अववर्षत्), तीव्र, धुआँधार या जोरदार वर्षा (उग्रं वर्षत्), शीघ्र वर्षा होना या रुक-रुककर बराबर बरसना (शीघ्रं वर्षत्), वर्षा का बीचबीच में थोड़ा रुक जाना (उद्गृह्णत्) , वर्षा का बहुत देर के लिए रुक जाना (उद्गृहीत), छोटी- छोटी बूँद या झींसी के रूप में वर्षा का होना (प्रुष्णत्), बड़ी -बड़ी बूँद के रूप में वर्षा को होना (शीकायत्), बर्फ या बर्फ - मिश्रित वर्षा का होना (Sleet, snow, प्रुष्वा), ओला पड़ना या ओले के साथ वर्षा होना (ह्रादुनी), कुहरा के रूप में फैलना या हिमपात होना (नीहार) ।

वाताय, धूमाय, अभ्राय, मेघाय .... प्रुष्णते, शीकायते,
प्रुष्वाभ्यः, ह्रादुनीभ्यः, नीहाराय । यजु० २२.२६

अतिवृष्टि को रोकना : ऋग्वेद के एक मंत्र में अतिवृष्टि को रोकने के लिए प्रार्थना की गई है कि हे मेघ, तुम बहुत बरस चुके हो, तुमने भोजन के लिए अन्नादि दिया है, तुमने रेतीली और ऊषर भूमि को भी उर्वर किया है । अब तुम वर्षा को रोक दो और प्रजा की कृतज्ञता स्वीकार करो ।

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभाय० । ऋग्० ५.८३.१०

कारीरी इष्टि या वर्षकाम इष्टि (वर्षा के लिए यज्ञ)

तैत्तिरीय संहिता में वर्षा के लिए किये जाने वाले यज्ञ को कारीरी इष्टि नाम दिया गया है । कारीर शब्द करीर से बना है, इसका अर्थ है - बाँस की कोपल और करीर वृक्ष । करीर को करील भी कहते हैं, यह काँटेदार वृक्ष है, इसमें पत्ते बहुत कम होते हैं और मरुभूमि मे अधिकांश होता है । इसके वर्णन में वर्षा के ८ भेदों का उल्लेख है । उनके नाम और प्रकार ये हैं :

१. **जिन्वरावृत् :** पूर्वी हवा के कारण होने वाली वृष्टि ।

२. **उग्ररावृत् :** तेज हवा के साथ वर्षा ।

३. **भीमरावृत् :** बादलों के गर्जन के साथ-साथ वर्षा ।

४. **त्वेषरावृत् :** बिना बिजली की चमक के या बिजली की चमक के साथ बादलों का गर्जन और बरसना ।

५. **पूर्तिरावृत् :** रात भर बरसना ।

६. **श्रुतरावृत् :** धुँआधार बरसना ।

७. **विराड्आवृत् :** धूप के साथ ही वर्षा का भी होना ।

८. **भूतरावृत् :** बादलों का गरजना, बिजली चमकना और साथ ही वर्षा का का भी होना ।[१]

तैत्तिरीय संहिता में इस कारीरी इष्टि का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है ।[२] इसमें वर्षा के हेतु किए जाने वाले यज्ञ के विषय में कुछ उपयोगी बातें बताई गई है। । वे संक्षेप में ये हैं :

१. वर्षा के कारणरूप ये देव हैं । ये ही बादलों को बनाने और उनके द्वारा वृष्टि करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं । ये हैं : अग्नि, वायु (मरुत्), सूर्य और सोम ।

२. वर्षा पृथिवी की उत्पादन-क्षमता को बढ़ाती है । यह उर्वराशक्ति देती है । इसी के कारण वृक्ष, वनस्पतियों में जीवनी शक्ति आती है और प्राणिमात्र को नवस्फूर्ति प्राप्त होती है ।

३. सूर्य की किरणें समुद्र से जल को भाप के रूप में ऊपर खींचती हैं और वायु (मरुत्) उस भाप (वाष्प) को ऊपर ले जाती है ।

४. समुद्र के जल का वाष्प (भाप) रूप में परिवर्तित होना मेघ का गर्भाधान है । मेघरूपी गर्भ को परिपक्व होने में लगभग साढ़े ६ मास या १९५ दिन लगते हैं । इस प्रकार वह परिपक्व मेघ १९५ दिन बाद वर्षा के रूप में पृथिवी पर बरसता है ।

५. पूर्वी वायु (पुरबिया हवा) मानसून लाती है । उसी से उत्तर और पश्चिम में वर्षा होती है ।

६. वर्षा में सोम या सोमीय तत्त्वों का बहुत महत्त्व है । वायुमण्डल में सोमीय तत्त्व एकत्र होकर वर्षा को मूर्तरूप देते हैं ।

७. करीर के फल और वर्षाहू (पुनर्नवा) ओषधि में सोमीय तत्त्व अधिक हैं । अत: वर्षकाम इष्टि में इनको यज्ञ में विशेष रूप से डाला जाता है । ये बादलों के निर्माण में विशेष सहायक हैं ।

---

१. पुरोवातो वर्षन् जिन्वरावृत् ... वातावद् वर्षन् उग्ररावृत् .. भीमरावृत् .. त्वेषरावृत् ... पूर्तिरावृत् .. श्रुतरावृत् .. विराड्आवृत् .. भूतरावृत् । तैत्ति० सं० २.४.७

२. तैत्ति० सं० २.४.७ से १०

८. मानसून से होने वाली वर्षा को वायु, वृष्टि का परिमाण, बादलों का गरजना, बिजली का चमकना आदि भेदों से ८ प्रकार का बताया गया है और इनको जिन्वरावृत् , उग्ररावृत् आदि नाम दिए गए हैं ।

९. वर्षा के होने में ये तत्त्व सहायक हैं , पुरोवात (पूर्वी हवा), अभ्र (बादल), विद्युत् (बिजली) और स्तनयित्नु (बादलों का गर्जन) ।

१०. वर्षा के होने में वायु (मरुत्) का बहुत बड़ा योगदान है । मरुत् ही वृष्टि के देवता कहे गए हैं । बादलों का बनना, उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना, यथास्थान वर्षा आदि में मरुतों का विशेष योगदान है ।

११. मित्र और वरुण देव वर्षा के स्वामी कहे गए हैं । ये धनात्मक और ऋणात्मक शक्तियाँ हैं । इनके कारण ही भाप से बादलों का निर्माण होता है ।

वृष्टि के लिए आवश्यक तत्त्व

ऋग्वेद के एक मंत्र में उल्लेख किया गया है कि वृष्टि का संबन्ध द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी और समुद्र चारों से है । इन चारों का सहयोग अपेक्षित होता है । समुद्र से जल मिलता है, पृथिवी अग्नि के द्वारा धूम को ऊपर भेजती है, अन्तरिक्ष में वायु के सहयोग से मेघों की रचना होती है और मरुत् वृष्टि के कारण होते हैं । द्युलोक में सूर्य अपनी किरणों से समुद्र, नदी आदि के जल को भाप के रूप में ऊपर ले जाता है और वर्षा का कारण होता है । इस प्रकार वृष्टि के लिए तीनों लोकों का सहयोग अपेक्षित होता है ।

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निः, अयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैः० । ऋग्० १.१६१.१४

मरुत्गण वर्षा के कारण

चारों वेदों में मरुतों का बहुत गुणगान है । मरुत् ही वह साधन हैं, जो पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को एक सूत्र में पिरोते हैं । वही समुद्र के जल को अन्तरिक्ष में ले जाते हैं, मेघों की रचना में सहयोग देते हैं और वर्षा करते हैं । यजुर्वेद का कथन है कि वृष्टि की प्रक्रिया समुद्र से प्रारम्भ होती है । सूर्य की किरणों से समुद्री जल भाप रूप में बदलता है, मरुत् उसे अन्तरिक्ष में ले जाते हैं, मरुतों के कारण भाप मेघ के रूप में परिवर्तित होता है और वृष्टि होती है ।

(क) मरुतां पृषतीर्गच्छ, वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ,
ततो नो वृष्टिमावह । यजु० २.१६

(ख) समुद्रं गच्छ, अन्तरिक्षं गच्छ ... दिवं ते धूमो गच्छतु,
पृथिवीं भस्मनाऽऽपृण । यजु० ६.२१

ऋग्वेद के एक मंत्र में मरुतों का गुणगान करते हुए कहा गया है कि वे अन्तरिक्षस्थ सारे जल को, पृथिवी को और सूर्य को संगठित किए हुए हैं। वे ही वज्र को संगठित करके सुदृढ़ बनाते हैं। इस मंत्र की व्याख्या में सायण ने कहा है कि वायु ही सूत्रात्मा के रूप में सारे संसार को धारण किए हुए हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में भी कहा गया है कि वायु ही वह सूत्र है, जो इस लोक को और सारे जीवों को संगठित किए हुए है। (बृहदा० ३.७२)

(क) समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी सं सूर्यम् ।
सं वज्रं पर्वशो दधुः । ऋग्० ८.७.२२

(ख) सूत्रात्मना वायुना सर्वं जगद् धार्यते । सायण

अथर्ववेद में मरुतों का गुणगान करते हुए कहा गया है कि मरुत् जल के स्वामी हैं।[1] मरुत् ही ओषधियों को रस देते है। वे ही गाय को दूध, अश्व को बल और सबको शक्ति देते हैं।[2] वे समुद्र से जल को ऊपर ले जाते हैं। अन्तरिक्ष में मेघ की रचना करते हैं और जल की वर्षा करते हैं।[3]

अनेक मंत्रों में इस बात का उल्लेख है कि मरुत् ही मेघ के निर्माण के आधार हैं। वे ही समुद्र से जल को भाप के रूप में अन्तरिक्ष में ले जाते हैं, मेघ का निर्माण करते हैं और वर्षा करते हैं।[4]

ऋग्वेद का कथन है कि सूर्य और अग्नि (ऊष्मा, ताप) द्यु, भू और अन्तरिक्ष तीनों जगह व्याप्त हैं। अत: इसे 'त्रिवृत्' (तीन का समूह) कहा जाता है। वायु (मातरिश्वा) इन तीनों का संयोजक है। सूर्य से ऊष्मा मिली। इस प्रकार देवों ने तीनों लोकों की रक्षा के लिए मेघ और वृष्टि की प्रक्रिया उत्पन्न की।

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुः ० । ऋग्० १०.११४.१

ऋग्वेद में वर्णन है कि मरुतों की वृद्धि के ये स्थान हैं, अर्थात् इन स्थानों पर मरुत् (वायु) की प्रक्रिया अधिक होती है। ये स्थान हैं : पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक। पृथिवी पर समुद्र, नदी आदि से जल मिलना, सूर्य की ऊष्मा, अन्तरिक्ष में मेघनिर्माण और वृष्टि।

ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
.. सधस्थे वा महो दिवः । ऋग्० ५.५२.७

---

१. अथर्व० ४.२७.५ २. अ० ४.२७.२-३
३. अ० ४.२७.४-५
४. ऋग्० ५.५३.६ । ५.५५.५ । ८.७.४,१६ । यजु० ३३.६४

मरुत् सदा समूह के रूप में चलते हैं । ये बड़े प्रतापी हैं । अतः इनका गण या व्रात (समूह) प्रसिद्ध है । ये ही वृष्टि के कर्ता-धर्ता हैं ।

व्रातंव्रातं गणंगणं० । अनु प्र यन्ति वृष्टयः । ऋग्० ५.५३.१०-११

यजुर्वेद में मरुतों के कार्यों का रोचक वर्णन किया गया है । इन्हें सान्तपन, गृहमेधी, क्रीडी और स्वतवस् कहा गया है ।[१] १. ये सांतपन हैं, अर्थात् तूफान और विद्युत् के द्वारा ऊष्मा उत्पन्न करते हैं ।[२] ये गृहमेघी हैं, अर्थात् गृह-यज्ञ करते हैं, सारी घरेलू व्यवस्था करते हैं । समुद्र से जल ढोकर लाना, दूध-दही की तरह बादलों को जमाना, उनमें विद्युत् का संचार करके रसोई बनाना और फिर वर्षा करना । ३. क्रीडी, ये अच्छे खिलाड़ी हैं । योद्धा की तरह अस्त्र-शस्त्र लेकर गरजते हुए चलते हैं, तूफानी हवाएँ चलाते हैं, खिलाड़ी की तरह उछल-कूद करते हुए आकाश में घूमते हैं और योद्धा की तरह मरते-कटते और बरसते हैं । ४. स्वतवस्, ये स्वशक्तिसंपन्न हैं । इनकी अपनी विद्युत्-योजना है । ये अपने दम पर सब काम करते हैं और तीनों लोकों का पालन करते हैं ।

मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः, गृहमेधिभ्यः, क्रीडिभ्यः, स्वतवद्भ्यः ।

यजु० २४.१६

मित्र और वरुण वृष्टिकर्ता

मित्र और वरुण का वेदों में बहुत गुणगान है । ये वृष्टि के कर्ता हैं । मित्र प्राणशक्ति है, धनात्मक शक्ति है । यह आकाश में Oxygen (आक्सीजन) के रूप में विद्यमान है । वरुण अपान शक्ति है, यह ऋणात्मक शक्ति है । यह आकाश में Hydrogen (हाइड्रोजन) के रूप में विद्यमान है । दोनों विद्युत् -संचार से जल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं । इसी से वर्षा होती है । यह बात वेदों में अनेक रूप से कही गयी है कि मित्र-वरुण वृष्टिकर्ता हैं । ये जल बरसाते हैं और पृथिवी को तृप्त करते हैं । ये दोनों राजा हैं । ये वृष्टि के द्वारा अन्न-समृद्धि के दाता है । ये वर्षा के द्वारा वृक्ष-वनस्पतियों को जीवनी शक्ति देते हैं । इन दोनों को वायु नियन्त्रित करता है । वरुण जल का स्वामी है, अतः वर्षा पर उसका अधिपत्य माना गया है ।[१]

सूर्य और अग्नि वर्षा के कारण : ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के अनेक मंत्रों में उल्लेख किया गया है कि सूर्य और अग्नि वर्षा के कारण हैं । अथर्ववेद का कथन है कि सूर्य की सात किरणें वर्षा कराती हैं । अतएव सूर्य की किरणों को 'वृष्टिवनि' अर्थात् वृष्टिदाता या वृष्टिकर्ता कहते हैं । सूर्य की किरणें ही जल को भाप के रूप में ऊपर ले जाती हैं और वर्षा कराती हैं ।[२]

१. ऋग्० ५.२४.५ । ५.६२.३ । ७.६४.२ । ७.६४.४ । यजु० १४.२४

२. ऋग्० १०.१२३.१-२ । गोपथ ब्रा० पूर्व० १.३६

(क) **अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।**
आपः समुद्रिया धाराः । अथर्व० ७.१०७.१

(ख) **स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ।** यजु० ३८.६

अग्नि में डाली हुई आहुतियाँ धूम के रूप में ऊपर जाकर मेघ के निर्माण में सहायक होती हैं और वर्षा का कारण बनती हैं । अतएव वेदों में यज्ञ के द्वारा वर्षा का अनेक मंत्रों में उल्लेख है । ऋग्वेद का कथन है कि यज्ञ-प्रक्रिया ही संसार का नाभि (केन्द्र , Nucleus) है । अग्नि द्युलोक को तृप्त करता है और मेघ पृथिवी को । यज्ञ इन्द्र (मेघमंडल) की वृद्धि करता है । सृष्टिक्रम यह एक बृहत् यज्ञ है । वर्षचक्र एवं ऋतुचक्र का आधार यज्ञ है । इसमें वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद् ऋतु हव्य है ।

(क) **अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।** ऋग्० १.१६४.३५

(ख) **भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ।** ऋग्० १.१६४.५१

(ग) **वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः ।** ऋग्० १०.९०.६

(घ) **यज्ञ इन्द्रमवर्धयत् ।** ऋग्० ८.१४.५

ऋतुभेद से मेघ के भेद : यजुर्वेद में ऋतुभेद आदि से होने वाले मेघों के ६ भेदों का उल्लेख किया गया है । ये हैं - १. शारदीय मेघ (वीध्र्य), २. ग्रीष्मकालीन मेघ (आतप्य), ३. वर्षाकालीन मेघ (मेघ्य), ४. विद्युत्-युक्त मेघ (विद्युत्य), ५. बरसने वाले मेघ (वर्ष्य), ६. न बरसने वाले मेघ (अवर्ष्य) ।

वीध्र्याय, आतप्याय, मेघ्याय, विद्युत्याय, वर्ष्याय,
अवर्ष्याय । यजु० १६.३८

समुद्र का महत्त्व : वृष्टिविज्ञान में समुद्र का बहुत महत्त्व है । समुद्र ही वह आधार है , जो मेघों को जन्म देता है । मानसून और वर्षा मूलरूप से समुद्र के ही ऋणी हैं । समुद्र से जो भार्प उठती है, वही परिवर्तित होकर मेघ बनता है, उसी से वर्षा होती है । यजुर्वेद ने इस वाष्प बनने की प्रक्रिया को मधुमय लहर कहा है और वर्षा को अमृत की नाभि अर्थात् जीवनी शक्ति का केन्द्र कहा है । यजुर्वेद ने ही अन्यत्र कहा है कि वर्षा का हृदय (केन्द्र) समुद्र है, मेघ का आधार या जीवन जल है । अथर्ववेद में भी यही बात कही गयी है कि समुद्र ही वर्षा की नाभि (केन्द्र) है ।

(क) **समुद्रादूर्मिर्मधुमान् उदारत् .. अमृतस्य नाभिः ।** यजु० १७.८९

(ख) **समुद्रे ते हृदयम् , अप्सु- आयुः ।** यजु० १८.५५

(ग) **समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ।** अ० १.१३.३

पृथिवी को शक्ति देने वाले तीन पदार्थ (सूर्य, वायु, पर्जन्य)

ऋग्वेद में कहा गया है कि ये तीन पदार्थ हैं, जो पृथिवी को तपाते हैं अर्थात् ऊर्जा या शक्ति देते हैं। ये हैं - सूर्य, वायु और पर्जन्य (मेघ)। इनमें से सूर्य पृथिवी को ऊष्मा देता है, वृक्ष-वनस्पतियों को जीवन प्रदान करता है और समुद्र आदि के जल को भाप के रूप में आकृष्ट करता है। वायु भाप को अन्तरिक्ष में पहुँचाती है, उसे शीतलता प्रदान कर घनीभूत करती है और मेघों को वर्षा के लिए प्रेरित करती है। पर्जन्य (मेघ) पृथ्वी को जल देकर वृक्ष-वनस्पतियों को जीवन प्रदान करता है। इस प्रकार ये तीनों पृथिवी के लिए जीवनदाता हैं।

त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा० । ऋग्० १०.२७.२३

बादलों के घर्षण से विद्युत् : ऋग्वेद के कई मंत्रों में वर्णन किया गया है कि बादलों की रगड़ से विद्युत् उत्पन्न होती है। जल के अन्दर आग्नेय तत्त्व है, वह रगड़ से प्रकट होता है। इसी प्रकार वज्र की उत्पत्ति जल से ही है। जल से मेघ बनते हैं, मेघ से विद्युत् , अतः विद्युत् को जल का पौत्र कहा गया है। सायण ने 'अपां नपात् ' (जल का नाती, पौत्र) की व्याख्या में कहा है कि जल से मेघ, मेघ से विद्युत् , अतः विद्युत् (अग्नि) जल का पौत्र है।

(क) दिवो न विद्युत् स्तनयन्त्यभ्रैः । ऋग्० ९.८७.८

(ख) समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः । ऋग्० ८.१००.९

(ग) भुवो अपां नपात् जातवेदः । ऋग्० १०.८.५

वृक्ष वर्षा में सहायक : यजुर्वेद का कथन है कि वृक्ष मेघों (इन्द्र) की रचना में सहयोगी हैं। वे मेघों की रचना में सहयोग देकर द्युलोक के उपकारक हैं। पृथिवी को दृढ़ बनाते हैं, अतः पृथिवी के उपकारक हैं। वृक्ष मेघों को आकृष्ट करते हैं, अतः घने जंगलों में वृष्टि अधिक होती है।

देवो देवैर्वनस्पतिः ... देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
पृथिवीम् अदृंहीत् । यजु० २८.२०

इन्द्रधनुष की रचना : ऋग्वेद के एक मंत्र में जल-बिन्दुओं पर सूर्य की किरणों के बिखरने से इन्द्रधनुष की रचना का संकेत है। मंत्र में इन्द्रधनुष के लिए आयुध (शस्त्र, धनुष) शब्द का प्रयोग है। सेना के शस्त्रास्त्र के तुल्य यह देवों का धनुष है। 'द्रप्स' शब्द जलबिन्दुओं के लिए है और 'गोविन्दु' शब्द सूर्य की किरणों के संपर्क में आने के लिए है।

चमूषत् ... गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् । ऋग्० ९.९६.१९

वर्षा के लाभ : चारों वेदों में वर्षा से होने वाले लाभों का विस्तृत उल्लेख है। वर्षा के विषय में कहा गया है कि वर्षा पृथिवी को शक्ति देती है, वृक्ष-वनस्पतियों

को जीवन देती है, अत: वर्षा चर और अचर जगत् की आत्मा है ।[१] वर्षा तीनों लोकों का धारक है ।[२] वर्षा वृक्ष-वनस्पतियों को जीवन देती है और बढ़ाती है । वर्षा संसार का अधिपति है ।[३] वर्षा भूमि को परिष्कृत करती है और अन्न की दात्री है ।[४] वर्षा भूमि के नीचे की परतों तक पहुँचती है और उन्हें तोड़कर जलस्रोतों की वृद्धि करती है ।[५] वर्षा वृक्ष-वनस्पतियों को उत्पन्न करके मनुष्य को भोजनसामग्री देती है ।[६] सभी प्रकार की ओषधियाँ वर्षा पर निर्भर हैं ।[७] वर्षा से संसार को अन्न मिलता है और ओषधियों को जीवन मिलता है ।[८] वर्षा ओषधियों में शक्ति डालती है । मनुष्य एवं पशुओं में नवजीवन का संचार करती है ।[९]

यज्ञ से कृत्रिम वर्षा कराना : ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि वर्षा के लिए यज्ञ करें और उसमें ९९ हजार आहुति दें तो शीघ्र वर्षा हो जाती है ।[१०] ऋग्वेद का एक पूरा सूक्त वर्षा कराने के लिए है । इसमें १२ मंत्रों में कृत्रिम वर्षा कराने का विधान है ।[११] यज्ञ से मेघ और मेघ से वर्षा होती है ।[१२] सायण ने ऋग्वेद के एक मंत्र की व्याख्या में उल्लेख किया है कि किस प्रकार से भारी वर्षा करायी जा सकती है ।[१३] तिस्रो वाच:० (ऋग्०७.१०१.१ से ६) इन ६ मंत्रों का भूखे रहकर ५ दिन तक लगातार जप करने से एवं वर्षकाम यज्ञ करने से वर्षा होती है । (ऋग्विधान २.३२६-३२७) । कारीरी इष्टि का विधान भी इसी उद्देश्य से है ।

मेघों का निर्माण (गर्भाधान, पुष्टि और प्रसव)

ऋग्वेद के एक मंत्र में वर्णन है कि सूर्य की किरणें पृथिवी को उर्वराशक्ति देने वाले वर्षा के जल को साढ़े ६ मास रोककर रखती हैं । उतने समय वे आकाश में चारों ओर फैले रहते हैं । बाद में वर्षा के द्वारा पृथिवी को तृप्त करते हैं । इस मंत्र में 'सप्तार्धगर्भा:' में सप्तार्ध शब्द से कुछ विद्वानों ने ६ और आधा (६ +१/२) अर्थ लिया है और बादलों के निर्माण का समय साढ़े छह मास अर्थात् १९५ दिन माना है । परकालीन साहित्य में मेघों के गर्भाधान से लेकर प्रसव तक का समय १९५ दिन बताया गया है ।

---

१. ऋग्० ७.१०१.६
२. ऋग्०७.१०१.४
३. ऋग्० ७.१०१.२
४. ऋग्० ९.३९.२
५. ऋग्० १०.६८.४
६. ऋग्० ५.८३.१०
७. ऋग्० ५.८३.५
८. ऋग्० ५.८३.४
९. ऋग्० ७.१०२.२
१०. ऋग्० १०.९८.१०
११. ऋग्० १०.९८.१ से १२
१२. ऋग्० ८.१४.५
१३. ऋग्० ७.१०१.१

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो
विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि । ऋग्० १.१६४.३६

इस विषय पर विशेष सामग्री वराहमिहिर-रचित बृहत्संहिता में मिलती है । वराहमिहिर का कथन है कि ये पाँच लक्षण हों तो आकाश में गर्भस्थापन या गर्भाधान होता है । ये पाँच लक्षण हैं : १. पवन (वायु, Wind) २. सलिल (हल्की वर्षा, Light rain), ३. विद्युत् (बिजली चमकना, Lightning), ४. गर्जित (बादलों का गर्जन, Thunder), ५. अभ्र (मेघयुक्त आकाश, Cloudy Sky) । ये पाँच लक्षण हों तो गर्भधारण उत्तम माना जाता है और निर्धारित समय पर बहुत वृष्टि होती है । यदि गर्भधारण के समय अधिक वर्षा हो जाती है तो प्रसव के समय वर्षा बहुत कम होगी ।

पवन-सलिल-विद्युद्-गर्जिताऽभ्रान्वितो यः
स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः ।
विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरि
प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ।। बृहत्संहिता २१.३७

वृष्टिविज्ञान - विषयक विवेचन : वृष्टिविज्ञान के विषय में कतिपय आचार्यों का उल्लेख मिलता है । इन आचार्यों का समय लगभग ५०० ई०पूर्व से ५०० ई० तक है । इन्होंने उस समय तक विद्यमान चिन्तन-परंपरा का उल्लेख किया है । इन आचार्यों में जिनके ग्रन्थ विशेष प्रचलित रहे हैं, वे हैं - विष्णु, वसिष्ठ, नारद, मय, गर्ग, पराशर, काश्यप, वज्र, बृहस्पति, देवल, द्रुहिण, सहदेव, ऋषिपुत्र, सिद्धसेन आदि । वराहमिहिर (५०० ई०) ने उल्लेख किया है कि 'बृहत्संहिता' के निर्माण में मैंने जिन आचार्यों के ग्रन्थों का सहयोग लिया है, उनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं : गर्ग, पराशर, काश्यप, वज्र आदि ।[१] इस विषय पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ पाणिनिकृत अष्टाध्यायी (५०० ई०पूर्व) है । इसमें वर्षा, वर्षा के भेद, पूर्व वर्षा, अपर वर्षा, वर्षा की नाप, उसकी विधि, अनावृष्टि (अकाल, सूखा पड़ना), वर्षा से होने वाली फसलों (सस्य) आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है ।[२] कौटिल्य (४०० ई०पू०) ने अपने अर्थशास्त्र में वर्ष-प्रमाण (वर्षा की नाप), वर्षा में बोए जाने वाले अन्नों का विस्तृत विवरण, शुभ वर्षा के लक्षण आदि का वर्णन किया है ।[३] कृषि-विज्ञान से संबद्ध एक ग्रन्थ 'कृषिपराशर' मिलता है । यह प्राचीन आचार्यों के मतों का संकलन करके लगभग १०वीं शती में बना है ।

---

१. बृहत्संहिता २१.२
२. देखो, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल-कृत पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ०२०४-२०६
३. कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २४, सीताध्यक्ष प्रकरण

पुराणों में भी वृष्टि-विज्ञान (Meteorology) से संबद्ध कुछ सामग्री प्राप्त होती है। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं : मत्स्य पुराण[४], वायुपुराण[५] और विष्णुपुराण[६]। इनमें मेघ-निर्माण का प्रारम्भ.बादलों के विभिन्न भेद, वर्षा आदि का वर्णन है। इनमें इस विषय पर भी विचार किया गया है कि वर्षा में सूर्य का भी योगदान है। किस प्रकार और कब सूर्य की किरणें समुद्र आदि से जल वाष्परूप में ऊपर ले जाती हैं। वर्षा पर सूर्य का क्या प्रभाव पड़ता है, किस प्रकार अनुकूल परिस्थितियों में भाप बादल के रूपमें परिवर्तित होता है, कब वर्षा होती है। वायुपुराण में वृष्टिचक्र का भी उल्लेख किया है कि किस प्रकार समुद्र आदि से जल भाप रूप में ऊपर जाता है, फिर वर्षा होती है, फिर वही जल पुन: बादल बनता है। जल-बादल-वर्षा-जल-बादल यह क्रम सदा चलता रहता है। विष्णुपुराण ने मेघों के गर्भाधान का भी वर्णन किया है।

मेघों के गर्भाधान का समय : गर्भ के दिन कब से प्रारम्भ होते हैं, इस विषय में भी प्राचीन आचार्यों में मतभेद रहा है। कुछ आचार्यों का मत था कि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं। तब से वर्षा का समय बताना चाहिए। दूसरा मत आचार्य गर्ग का है। अधिकांश आचार्य इस मत के समर्थक हैं। वराहमिहिर भी आचार्य गर्ग के मत के समर्थक हैं और उनका मत उद्धृत करते हुए लिखा है कि मार्गशीर्ष (अगहन) शुक्ल प्रतिपदा से, जब चन्द्रमा पूर्वाषाढा नक्षत्र में स्थित हो, गर्भधारण का समय होता है।[७] गर्ग के अतिरिक्त काश्यप का भी यही मत है। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से लेकर साढ़े छह मास तक इन पाँच गर्भलक्षणों (१. पवन, २. सलिल, ३. विद्युत् , ४. गर्जित, ५. अभ्र) का अध्ययन किया जाता है और तदनुसार अधिक या कम वर्षा की सूचना दी जाती है।

वराहमिहिर का कथन है कि गर्भस्थापन के दिन से साढ़े छह मास (अर्थात् १८०+१५=१९५ दिन) बाद प्रसव का समय आता है और तब वर्षा होती है। १९५ दिन बाद वही नक्षत्र फिर आता है।[८] सौर मास (सावन मास) के हिसाब से ही १९५ दिन बाद वही नक्षत्र आता है, अत: इस गणना में सौर मास (Solar month)

४. मत्स्यपुराण १२४.२९-३४

५. वायुपुराण ५१.१३-१६

६. विष्णुपुराण २.९.८-१२, गीता प्रेस, गोरखपुर पृ० १७४

७. मार्गशिर:सितपक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढाम्।
पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम्। बृहत्संहिता २१.६

८. यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात्।
पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ॥ बृहत्० २१.७

ही लेना चाहिए । इसमें अमावस्या को मास समाप्त होता है, अतः इसे अमान्त मास कहते हैं ।[९]

वराहमिहिर ने गर्भस्थापन और प्रसव की सारणी इस प्रकार दी है :

	गर्भस्थापन-मास, पक्ष		प्रसव-मास, पक्ष
१.	पौष कृष्ण पक्ष	-	श्रावण शुक्ल पक्ष
२.	माघ शुक्ल पक्ष	-	श्रावण कृष्ण पक्ष
३.	माघ कृष्णपक्ष	-	भाद्रपद शुक्ल पक्ष
४.	फाल्गुन शुक्ल पक्ष	-	भाद्रपद कृष्ण पक्ष
५.	फाल्गुन कृष्णपक्ष	-	आश्विन शुक्ल पक्ष
६.	चैत्र शुक्लपक्ष	-	आश्विन कृष्ण पक्ष
७.	चैत्र कृष्ण पक्ष	-	कार्तिक शुक्ल पक्ष

मेघ-भ्रूण का परिपाक : मेघ-भ्रूण के परिपाक के लिए कुछ लक्षणों का निर्देश किया गया कि प्रतिमास ये घटनाएँ हों तो गर्भस्थ भ्रूण का परिपाक ठीक होता है ।[१०]

१. मार्गशीर्ष मास में हल्की ठंड पड़ना ।

२. पौष मास में सामान्य हिमपात, अधिक हिमपात नहीं ।

३. मार्गशीर्ष और पौष मास में प्रातः और सायं बादलों में लाल परिवेष अर्थात् चारों ओर लाल घेरा पड़ना ।

४. माघ मास में तीव्र हवा का चलना, कुहरे के कारण सूर्य और चन्द्रमा का साफ दिखाई न पड़ना और शीत की वृद्धि ।

५. फाल्गुन मास में तीव्र हवा, बादलों का होना, सूर्य और चन्द्र का परिवेष (चारों ओर घेरा होना), तथा सूर्य का ताम्रवर्ण का दिखाई पड़ना ।

६. चैत्र मास में आकाश में बादलों का होना, वर्षा होना, हवा चलना और सूर्य के चारों ओर घेरा होना (परिवेष) ।

७. वैशाख में हवा चलना, बादलों का गरजना, बिजली चमकना और वर्षा होना ।

यदि ये लक्षण हैं तो मेघ-भ्रूण का परिपाक ठीक होता है । पूर्वोक्त लक्षण शुभ माने गए हैं ।

९. मृगशीर्षाद्या गर्भा मन्दफलाः पौषशुक्लजाताश्च ।
पौषस्य कृष्णपक्षेण, निर्दिशेत् श्रावणस्य सितम् ।
... कार्तिकशुक्लेऽभिवर्षन्ति । बृहत्० २१.९ से १२

१०. पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः । नात्यर्थं मृगशीर्षे शीतं पौषेऽतिहिमपातः।
.. घनपवनसलिलविद्युत् - स्तनितैश्च हिताय वैशाखे ।। बृहत्० २१.१९ से२२

मेघ-भ्रूण-परिपाक में विघ्न : वराहमिहिर एवं पूर्ववर्ती गर्ग, पराशर आदि आचार्यों ने मेघ-भ्रूण के परिपाक में होने वाले विघ्नों का उल्लेख किया है । इन परिस्थितियों में भ्रूण का परिपाक नहीं होता है, अतएव गर्भपात हो जाता है और इसके फलस्वरूप अवृष्टि का योग उपस्थित होता है । विघ्नरूप में होने वाले इन कारणों में मुख्य हैं : गर्भकाल में उल्कापात, अधिक बिजली चमकना या वज्रपात, आँधी का आना, भूकम्प आना, ग्रहों का परस्पर युद्ध होना, इन्द्रधनुष की रचना, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण का होना आदि ।[१]

एक अन्य कारण बताया गया है कि यदि गर्भ के प्रारम्भिक दिनों में अकारण अतिवृष्टि हो जाय तो गर्भस्राव हो जाता है ।[२]

उपलवृष्टि (ओला गिरना) : वराहमिहिर का कथन है कि यदि उचित समय पर वर्षा नहीं होती है तो परिपुष्ट भ्रूण कालातीत होने के कारण कठोर हो जाता है, जैसे अधिक समय तक रखा हुआ दूध । इस प्रकार गर्भ के कठोर हो जाने से वह ओला बन जाता है और उससे उपलमिश्रित (ओलासहित) वर्षा होती है ।[३]

वायु का महत्त्व , वायु-विवेचन

वृष्टिविज्ञान में वायु का बहुत महत्त्व है । वायु ही मेघों को लाने का प्रमुख साधन हैं । सामान्य नियम यह है कि पूर्वी हवा मानसून लाती है, पश्चिमी हवा वर्षा को रोकती है, उत्तरी हवा वर्षा लाती है और दक्षिणी हवा वर्षा रोकती है । इस प्रकार पूर्व और उत्तर से आने वाली हवाएँ शुभ हैं, वृष्टिदायक हैं और कृषि के लिए उत्तम हैं । पश्चिम और दक्षिण की हवाएँ अशुभ हैं । ये वर्षा रोकती हैं या अल्पवृष्टि की सूचक हैं । इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम से आने वाली हवाएँ धूल या आँधी लाती हैं, अतः ये अशुभ समझी जाती हैं ।

वेदोत्तर काल में वायु के तीन भागों का उल्लेख मिलता है । ये हैं : १. भावक, २. स्थापक, ३. ज्ञापक । भावक वायु मेघों की रचना करती है । स्थापक वायु मेघ के भ्रूण को पुष्ट करती है और उसकी रक्षा करती है । ज्ञापक वायु भावी मौसम की सूचना देती है कि आगे ऐसा मौसम होगा ।

---

१. गर्भोपघातलिंगानि० । बृहत्संहिता २१.२५-२६

२. गर्भसमयेऽतिवृष्टिः० । बृहत्० २१.३४

३. (क) गर्भः पुष्टः प्रसवे ... करकामिश्रं ददात्यम्भः ।

(ख) काठिन्यं याति यथा .. सलिलं काठिन्यमुपयाति । बृहत्० २१.३५-३६

वायु के दिशाज्ञान के लिए कुछ विधियाँ अपनाईं गई थीं । वराहमिहिर ने वायु की दिशा के ज्ञान के लिए यह विधि दी है -

बारह हाथ ऊँचा एक बाँस का डंडा गाड़ा जाय और उस पर चिकने काले कपड़े की चार हाथ (दंडप्रमाण) लम्बी पताका बाँधें । जब वायु का प्रवाह तेज हो तब उस झंडी से दिशा का ज्ञान करें ।[१] इससे दिशा का ज्ञान करके भावी वर्षा के विषय में सूचना दें । यह परीक्षा दिन में ३-४ बार करनी होती है तथा विभिन्न नक्षत्रों में यह परीक्षा करके भावी वर्षा के विषय में भविष्यवाणी करे ।

वराहमिहिर ने वायुपरीक्षण के परिणामों का विस्तृत विवरण भी दिया है ।[२]

मेघ और वर्षा

वराहमिहिर ने यह भी निर्देश दिया है कि मेघ गर्भकाल में जिस दिशा में होता है, प्रसव उससे विपरीत दिशा में होता है । जैसे -गर्भकाल में मेघ पूर्व दिशा में होगा तो प्रसव काल में वह पश्चिम दिशा में होगा । इसी प्रकार पश्चिम दिशा में हो तो पूर्व दिशा में , दक्षिण में हो तो उत्तर में, उत्तर में हो तो दक्षिण में, आग्नेय कोण में हो तो वायव्य कोण में, वायव्य कोण में हो तो आग्नेय कोण में, ईशान कोण में हो तो नैर्ऋत्य कोण में, नैर्ऋत्य में हो तो ईशान कोण में मेघ होता है । इसी प्रकार वायु का भी दिग्वैपरीत्य हो जाता है । जैसे गर्भकाल में वायु पूर्व दिशा की होगी तो प्रसव काल में वह पश्चिम दिशा की होगी ।[३]

'कृषि-पराशर' ग्रन्थ में आचार्य पराशर ने बादलों के चार बड़े विभाग बनाये हैं ।[४] ये हैं : १. आवर्त, २. संवर्त, ३. पुष्कर, ४. द्रोण । आवर्त मेघ किसी स्थान-विशेष में ही वर्षा करते हैं । संवर्त मेघ सर्वत्र वर्षा करते हैं । पुष्कर मेघ की स्थिति में वर्षा बहुत कम होगी । इसके विपरीत द्रोण मेघ की उपस्थिति में वर्षा अधिक और बहुत दूर तक होगी ।

---

१. श्लक्ष्णां पताकामसितां विदध्यात् दण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रितां च ।
आदौ कृते दिग्ग्रहणे० । बृहत्० २४.९

२. बृहत्संहिता अ० २४.१०

३. पूर्वोद्भूताः पश्चाद् अपरोत्थाः प्राग् भवन्ति जीमूताः।
शेषास्वपि दिक्ष्वेवं विपर्ययो भवति वायोश्च ॥ बृहत्० २१.१३

४. पराशर - कृत कृषिपराशर, श्लोक २४-२६

आचार्य गर्गकृत मेघमालामंजरी ग्रन्थ में ८० प्रकार के मेघों का उल्लेख किया गया है ।[५] प्रमुख आठ विभागों के दस-दस उपविभाग हैं । आठ प्रमुख विभाग ये हैं - १. मन्दार, २. कैलाश, ३. त्रिकूट, ४. जठर, ५. शृंगवेर, ६. पर्यन्त, ७. हिमवत् , ८. गन्धर्वमादन पर्वत । ये नाम पर्वतशृंगों के नाम पर रखे गए हैं । गर्ग ने इनके दस-दस उपविभागों के नाम भी दिए हैं ।

श्री मधुसूदन ओझा ने अपने ग्रन्थ कादम्बिनी में मेघ के चार भेदों का उल्लेख किया है ।[६] ये हैं : १. अभ्र - निचाई पर फैले हुए बादल, २. वर्दल - (Cumulus) गोलाकार घने सफेद ऊन के ढेर के तुल्य, ३. घन (Altocumulus) - फैले हुए परत वाले गोलाकर दिखाई पड़ने वाले बादल, ४. घट (Stratus Type) - पतली चादर की तरह आकाश में फैले हुए बादल ।

कुछ अन्य आचार्यों ने बादलों को उनके आकार के आधार पर उनके ये नाम दिए हैं : नाग (हाथी), पर्वत (पहाड़), वृषभ (बैल) और अर्बुद (आबू पर्वत) ।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में बादलों के अनेक भेदों का उल्लेख किया है साथ ही यह भी उल्लेख किया है कि वर्षा के अनुपात से ही बीज बोना चाहिए । किस ऋतु में कौन सा अन्न बोना चाहिए, इसका भी विस्तृत विवरण दिया है । मेघ के भेद ये हैं : १. सात दिन लगातार बरसने वाले मेघों के तीन भेद हैं । २. कण, बूंद और झींसी के रूप में बरसने वाले बादलों के अस्सी भेद हैं । ३. वर्षा के साथ ही धूप भी रहे, ऐसे बादलों के साठ भेद हैं ।[७]

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में बादलों के विभिन्न रूपों का १२ श्लोकों में विस्तृत वर्णन किया है । साथ ही उनके शुभ-अशुभ योग का भी निर्देश किया है ।[८] यह भी बताया है कि किस दिशा से आने वाले बादल वर्षा करते हैं, कौन से नहीं । जैसे - पूर्व दिशा से आने वाले मेघों से उत्तम कृषि, दक्षिण दिशा से आने वाले बादलों से कृषि-नाश, पश्चिम दिशा से आने वाले बादलों से सुन्दर वृष्टि, उत्तर दिशा से आने वाले बादलों से पूर्ण वृष्टि । इसी प्रकार आग्नेय, वायव्य आदि कोणों से आने वाले बादलों का भी विभिन्न फल होता है । वराहमिहिर का कथन है कि इसी प्रकार विभिन्न दिशाओं से आने वाली वायु का भी पूर्वोक्त रूप से फल समझना चाहिए ।[९]

५. गर्ग, मेघमालामंजरी
६. कादम्बिनी, पृष्ठ १४२, श्लोक ३९-४०
७. त्रयः साप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः ।
षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिता । कौ०अर्थ० २.२४.९-१०
८. बृहत्संहिता २४.१३ से २४
९. पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिः० । बृहत्० २४.२३-२४

वराहमिहिर ने रोहिणी, स्वाती और अषाढा नक्षत्रों के योग से होने वाली वर्षा का भी विस्तृत विवरण दिया है ।[१०] इसी प्रकार 'वातचक्राध्याय' में आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन विभिन्न दिशाओं से आने वाली वायु के आधार पर वर्षाकाल में कितनी वृष्टि होगी, इसका विस्तृत वर्णन किया गया है ।[११]

वर्ष-प्रमाण (वर्षा का जल नापना, Rain-gauge)

आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में वर्षा का जल नापने की विधि को वर्षप्रमाण कहा है ।[१२] सबसे छोटा नाप 'गोष्पद' था, जिसमें गाय या बैल के खुर के निशान के बराबर जल भर जाए । कौटिल्य ने वर्षा का जल नापने के लिए एक हाथ व्यास वाला अर्थात् डेढ़ फीट व्यास (Diameter) वाला एक कुंड (Rain-gauge) बनाने का उल्लेख किया है । इसके अनुसार विभिन्न स्थानों की वर्षा का परिमाण लिया जाता था ।[१३] विभिन्न प्रकार की भूमि में फसल बोने के लिए कितनी वर्षा होनी चाहिए, इसका उल्लेख किया है । कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि वर्षाजल के नाप का रिकार्ड रखना कृषिविभाग के अध्यक्ष का कर्तव्य है ।

वराहमिहिर ने भी बृहत्संहिता में वर्षप्रमाण के लिए लिखा है कि १ हाथ व्यास वाला और १ हाथ गहरा कुंड बनावें और इससे वर्षा के जल का नाप लें । इसका अभिप्राय यह है कि १८ इंच व्यास और १८ इंच गहराई वाला गोलाकार कुंड (Rain-gauge) बनावे । यह पूरा भर जाता है तो एक आढक (अर्थात् ५० पल) जल हुआ । ५० पल का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है ।[१४]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पल, आढक और द्रोण को आधुनिक व्यवहार के हिसाब से इस प्रकार समझाया है ।[१५]

१ पल	=	४ तोला	=	लगभग ५० ग्राम ।
५० पल	=	२०० तोला	=	२५०० ग्राम (ढाई किलो)
५० पल	=	१ आढक	=	२५०० ग्राम (ढाई किलो)
४ आढक	=	१ द्रोण	=	१०,००० ग्राम (१० किलो)
१ द्रोण	=	८०० तोला	=	१०,००० ग्राम (१० किलो)

१०. बृहत्संहिता, अध्याय २४ से २६

११. बृहत्संहिता २७.१-९

१२. वर्षप्रमाणे० , अष्टा० ३.४.३२

१३. षोडशद्रोणं जांगलानां वर्षप्रमाणम्० । कौ०अर्थ० २.२४.५

१४. हस्तविशालं कुण्डकम् अधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः ।
पञ्चाशत्पलमाढकम् अनेन मिनुयाज्जलं पतितम् । बृहत्० २३.२

१५. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ २४४

श्री मधुसूदन ओझा ने उपर्युक्त द्रोण के विषय में कहा है कि एक द्रोण वर्षा का अर्थ समझना चाहिए कि ढ़ाई इंच (दो और आधा इंच) वर्षा हुई ।[१] इससे कौटिल्य का यह कथन ठीक सिद्ध होता है कि जांगल (जंगली क्षेत्र) में १६ द्रोण (अर्थात् ४० इंच) वर्ष भर में वर्षा होती है । अनूप स्थान (जलप्राय या नमी वाले स्थान) में २४ द्रोण (अर्थात् ६० इंच) और हिमालय आदि क्षेत्रों में यथासमय पर्याप्त वर्षा होती है ।[२]

वराहमिहिर ने प्रवर्षणाध्याय (अध्याय २३) में विभिन्न नक्षत्रों में प्रवर्षणकाल में कितनी वृष्टि होती है, इसका विस्तृत विवरण दिया है । जैसे -कृत्तिका में दस द्रोण, अश्विनी में बारह द्रोण, आर्द्रा में अठारह द्रोण आदि ।[३]

कौटिल्य का कथन है कि यदि पूरे वर्ष की वर्षा का एक तिहाई भाग श्रावण और कार्तिक में बरसे तथा दो-तिहाई भाग भाद्रपद और आश्विन में बरसे तो ऐसी वर्षा फसल के लिए लाभदायी होती है ।[४]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि कौटिल्य के समय से लेकर वराहमिहिर के समय तक अर्थात् तीसरी शती ई०पूर्व से लेकर षष्ठ शती ईसवीय तक वर्षा नापने की यह पद्धति प्रचलित थी ।

शीघ्र वर्षा के लक्षण

कौटिल्य और वराहमिहिर ने वर्षा शीघ्र होने के कुछ लक्षण दिए हैं ।[५] इन अवस्थाओं में वर्षा शीघ्र होती है ।

१. बृहस्पति जब मेष राशि से वृष राशि पर संक्रमण करता है ।

२. मार्गशीर्ष, पौष आदि ६ मासों में कोहरा, बादल आदि दिखाई दे ।

३. सूर्य के चारों ओर परिवेष (घेरा) दिखाई दे ।

४. वर्षा ऋतु में प्रातःकाल सूर्य की किरणें अत्यन्त तीक्ष्ण हों ।

५. वर्षा ऋतु में मध्याह्न में सूर्य की करणें अतितीक्ष्ण हों ।

६. वर्षा ऋतु में हवा बिलकुल रुकी हुई हो ।

७. अकारण चीटियाँ अपने अंडे दूसरी जगह जे जा रही हों ।

---

१. कादम्बिनी, पृ० २७४

२. कौटिल्य अर्थ० २.२४.५, पृष्ठ २३९

३. बृहत्संहिता, अ० २३ श्लोक ६ से १०

४. वर्षत्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोः० । कौ०अर्थ० २.२४.६, पृष्ठ २३९

५. कौ०अर्थशास्त्र २.२४.७ । बृहत्संहिता अध्याय २८ श्लोक १ से २८

८. गाय आदि पशु बिना कारण उछलें, कान और पाँव हिलावें ।

९. ईशान कोण (पूर्व और उत्तर के बीच का कोण) में बिजली चमके ।

१०. रात्रि में बादल गरजें, दिन में बिजली गिरे और पूर्व दिशा से ठंडी हवा चले ।

११. यदि बादल बहुत घनें हो और बिजली चमक रही हो, बादल पहाड़ की सी आकृति लिए हुए हों ।

१२. यदि काले-काले बादल पूर्व से पश्चिम की ओर या पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर जा रहे हों ।

१३. यदि सूर्योदय या सूर्यास्त के समय इन्द्रधनुष दिखाई पड़े, या सूर्य-चन्द्र का परिवेष (घेरा) दिखाई पड़े ।

१४. यदि सूर्य की करणें बहुत तीव्र हों और बादल पृथ्वी के बहुत निकट आकर गरजें तो अच्छी वर्षा होती है ।

१५. यदि वर्षा ऋतु में इन्द्रधनुष बहुत साफ दिखाई पड़े तो उसी दिन वर्षा होती है । [६]

१६. यदि वर्षाकाल में सूर्य शिरीष के फूल के तुल्य बहुत आभावाला दिखाई दे तो उसी दिन वर्षा होती है ।[७]

ओला, तुषार, हिम आदि

घना कुहरा यदि तापमान (Temperature) बहुत कम हो जाता है तो वह ओस (Dew) बन जाता है । घने कुहरे (Fog) के लिए धूम, धूमिक, कुज्झटि, कुज्झटी या कुज्झटिका शब्द हैं । ओस के लिए अवश्याय शब्द है । भारी हिमपात के लिए तुषार शब्द है । पुरानी जमी हुई बर्फ के लिए प्रालेय शब्द है । ओले के लिए उपल, करक और करका शब्द हैं । ओला पड़ना के लिए उपलपात और उपलवृष्टि शब्द आते हैं । ग्लेशियर (Glacier, भारी जमी हिम की चट्टानें जो धीरे-धीरे पिघलती हैं) के लिए हिमानी शब्द है ।

---

६. बृहत्० ३.२७

७. बृहत्० ३.२८

उल्का (Meteor) के पाँच भेद

वराहमिहिर ने उल्का (आकाश से गिरने वाला प्रकाशपुंज) के पाँच भेदों का वर्णन किया है ।[१] ये हैं - **१. अशनि :** जो बहुत तेज शब्द करती हुई, चक्र की तरह घूमती हुई, मनुष्य या वृक्ष आदि पर गिरती है । **२. विद्युत् :** तीव्र ध्वनि वाली, तट-तट या तर-तर शब्द करने वाली, टेढ़ी और विशाल आकृति वाली , मनुष्य या काष्ठ आदि पर गिरती है । **३. घिष्ण्या :** पतली और छोटी पूँछ वाली, जलती हुई मशाल की तरह दीखने वाली, दो हाथ लंबी, अग्निशिखा होती है । **४. तारा :** एक हाथ लंबी, कमलतन्तु की तरह बहुत सूक्ष्म, तिरछी नीचे गिरती है । **५. उल्का :** पुरुष की तरह साढ़े तीन हाथ लंबी और विशाल सिर वाली अग्निशिखा होती है । यह जितना नीचे आती है, उतना ही इसका आकार बढ़ता जाता है ।[२]

इन्द्रधनुष (Rain-bow) की रचना

वराहमिहिर ने इन्द्रधनुष कैसे बनता है, इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि मेघयुक्त आकाश में जब अनेक रंग वाली सूर्य की किरणें वायु से टकराती हैं, तब विविध कणों से युक्त जो धनुषाकार आकृति दिखाई पड़ती है , उसे इन्द्रधनुष कहते हैं ।

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे ।
वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः । बृहत्० ३५.१

स्पष्ट इन्द्रधनुष के टूटे हिस्सों को 'रोहित' कहते हैं और सीधे लंबे इन्द्रधनुष को 'ऐरावत' कहते हैं । (बृहत्० ४७.२०)

परिवेष, परिधि (सूर्य-चन्द्र के चारों ओर घेरा)

वराहमिहिर ने परिवेष का लक्षण दिया है कि वायु के द्वारा मंडलीभूत सूर्य और चन्द्रमा की किरणें जब हलके मेघयुक्त आकाश में प्रतिबिम्बित होती हैं, तब अनेक वर्णों वाली होकर घेरे के रूप में दिखाई पड़ती हैं, उसी को परिवेष कहते हैं । इसके लिए परिधि शब्द भी प्रयुक्त होता है । यह परिवेष लाल, नीला, सफेद, काला, हरा और चितकबरा होता है ।

संमूर्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः ।
नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ।। बृहत्० ३४.१

---

१. घिष्ण्योल्काशनि-विद्युत्तारा इति पंचधा भिन्नाः । बृहत्० ३३.१

२. बृहत्संहिता ३३.१ से ८

अध्याय - १०

पर्यावरण (Environment, Ecology)

पर्यावरण और वैज्ञानिक चिन्तन

पर्यावरण का अर्थ : पर्यावरण शब्द परि + आवरण से बना है । इसका अर्थ है - हमारे चारों तरफ का वातावरण जिससे हम ढके हुए हैं । पर्यावरण वह परिवृति है जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है तथा उसके जीवन और क्रियाओं पर प्रभाव डालती है । इसमें मनुष्य के बाहर के समस्त घटक, वस्तुएँ, स्थितियाँ तथा दशाएँ सम्मिलित हैं, जो मानव के जीवन को प्रभावित करती हैं ।

पर्यावरण में वायुमंडल, स्थलमंडल और जलमंडल के सभी भौतिक तथा रासायनिक तत्त्वों को शामिल किया गया है । इस प्रकार पर्यावरण भौतिक तथा जैविक दोनों तत्त्वों से मिलकर बना है । जैविक पर्यावरण में समस्त जीव-जगत् और सभी प्रकार के पौधे सम्मिलित हैं । भौतिक पर्यावरण में मृदा (मिट्टी), जल, वायु, प्रकाश और ताप हैं । इनसे स्थलमंडल, जलमंडल और वायुमंडल निर्मित होता है ।

स्थलमंडल में चट्टानें, मिट्टी, रेत और धात्वीय परत मुख्य हैं । जल-मंडल में नदियाँ, तालाब, झरने, समुद्र और सभी जलीय स्त्रोतों का समावेश है । वायुमंडल की सीमा नहीं है । पृथ्वी पर उपस्थित सभी गैसें २०० मील ऊपर तक मिलती हैं । वायुमंडल में मुख्यरूप से नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन डाइ-आक्साइड तथा अन्य गैसें मिलती हैं ।

सभी प्राणी स्थलमंडल से भोजन, जलमंडल से जल और वायुमंडल से प्राणवायु प्राप्त करते हैं ।

पर्यावरण-प्रदूषण

मनुष्य के क्रियाकलापों से उत्पन्न अवशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों और ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं । यह मनुष्य द्वारा पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न करने से होता है ।

मुख्य प्रदूषण ये हैं : - (१) वायु-प्रदूषण, (२) जल-प्रदूषण, (३) भूमि-प्रदूषण, (४) ध्वनि-प्रदूषण, (५) रेडियोधर्मी-प्रदूषण ।

(१) वायु-प्रदूषण : वायुमंडल में विभिन्न प्रकार की गैसें जीवधारियों की अनेक क्रियाओं द्वारा एक विशेष अनुपात में उपस्थित रहती हैं । ये जीव- धारियों के लिए जीवनदायिनी का कार्य करती हैं । जीवधारियों द्वारा ही आक्सीजन (O_2) और कार्बन डाइ-आक्साइड (CO_2) चक्र वायुमंडल में सन्तुलित होता है । भारी गैसें पृथ्वी-पटल के समीप और हल्की गैसें पृथ्वी-पटल के कुछ ऊँचाई पर पायी जाती हैं । आक्सीजन मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी है । औद्योगिकीकरण एवं विभिन्न साधनों से उत्पन्न गैसें वायुमंडल में प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली गैसों के प्रतिशत में परिवर्तन कर देते हैं । इससे वायु-प्रदूषण उत्पन्न होता है ।

वायुमंडल में विभिन्न गैसों का प्रतिशत इस प्रकार है :

नाइट्रोजन (Nitrogen, N_2)	७८.०८
आक्सीजन (Oxygen, O_2)	२०.९५
आर्गन (Argon, Ar)	०.९३
कार्बन डाइ-आक्साइड (Carbon dioxide, CO_2)	०.०३

शेष में ये गैसें हैं : नियान (Neon, Ne), हीलियम (Helium, He), क्रिप्टान (Krypton, Kr), ज़ीनान (Xenon, Xe), ओजोन (Ozone, O_3), हाईड्रोजन (Hydrogen, H_2) ।

वायुमंडल जीवन के लिए आवश्यक गैसें प्रदान करता है । यह दिन और रात्रि के तापमान के अन्तर को बनाये रखता है और ध्वनि-तरंगों के लिए माध्यम प्रदान करता है ।

वायु-प्रदूषण के कारण : (क) दहन - रेल, मोटर, ट्रक आदि में कोयला, डीजल और पेट्रोल के जलने से धुआँ तथा विभिन्न प्रकार की विषैली गैसें, कार्बन मोनोआक्साइड, कार्बन-डाइ-आक्साइड आदि गैसें उत्पन्न होती हैं । ये वातावरण को दूषित करती हैं । **(ख) रासायनिक कारखाने** - पेट्रोल साफ करने के कारखाने, उर्वरक, सीमेंट आदि के कारखानों से विषैली गैसें और दूषित धूल आदि निकलती हैं, जो वायु में मिल जाती हैं । **(ग) रेडियोधर्मी पदार्थ** - परमाणु-विस्फोट से रेडियो-धर्मी पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है ।

वायुप्रदूषण का प्रभाव : १. मानव-स्वास्थ्य पर प्रभाव : कार्बन मोनो-आक्साइड मनुष्य की चिन्तन शक्ति को कम करता है । सल्फर डाइ-आक्साइड फेफड़ों को प्रभावित करती है, जिससे खांसी आदि रोग होते हैं । वायु में पाए जाने वाले ये विषैली गैसों के सूक्ष्म कण आँखों में जलन, छींक, कैंसर, फेफड़े के रोग, बेहोशी और दम घुटने जैसे रोग उत्पन्न करते हैं । रेडियोधर्मी पदार्थों के कण ऊतकों (Tissues) को मृत बना देते हैं और आनुवंशिक विकार उत्पन्न करते हैं ।

२. जैविक समुदाय पर प्रभाव : ओजोन की कमी होने पर पराबैंगनी किरणों के पृथ्वी पर आने से वनस्पतियों और जीवों के लिए खतरा उत्पन्न हो जाएगा । इससे खाद्यान्न का संकट उत्पन्न हो सकता है । हरितगृह प्रभाव से तापमान में वृद्धि होने से मृत्यु हो सकती है या विकृति आ सकती है ।

३. मौसम और जलवायु पर प्रभाव : वायुप्रदूषण का मौसम और जलवायु पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । इससे प्रतिरक्षक ओजोन की परत को क्षति पहुँचना, पृथ्वी के वातावरण के तापमान में वृद्धि होना, अम्ल की वर्षा होना, वायुमंडल में धूल एवं कुहरा छा जाना आदि स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । इससे पृथ्वी के मौसम और जलवायु पर प्रभाव पड़ता है ।

(क) ओजोन (Ozone) की परत का क्षय : पृथ्वी की सतह पर २५ से ४० किमी० की ऊँचाई पर ओजोन गैस की एक परत पाई जाती है । यह समतापी परत और ओजोन मंडल से मिलकर बनी है । समतापी परत २५ किमी० की ऊँचाई तक है । इसका तापमान समान रहता है । ओजोन मंडल ओजोन की अधिकता वाली परत है । यह २५ किमी० से ४० किमी० के बीच फैली हुई है । यह ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली लघु पराबैंगनी किरणों का ९९ प्रतिशत भाग अवशोषण करके गर्म परत का निर्माण करती है तथा धरातल के पेड़-पौधों एवं जीव-जन्तुओं को भस्म होने से बचाती है । अत: ओजोन परत रक्षक-परत का निर्माण करती है । ओजोन परत (Ozone- layer) को क्षति पहुंचाने की मुख्य भूमिका क्लोरो- प्लोरो-कार्बन (C.F.C.) की है । यह क्लोरीन फ्लोरीन और कार्बन (Chlorine,Flourine, Carbon) का संयुक्त यौगिक है । वातानुकूलनों (Air-conditioners) तथा रेफ्रीजरेटरों (Refrigerators) आदि में शीतलता हेतु इसका उपयोग बहुत अधिक होता है । ये गैसें बिना विकृत हुए वायुमंडल में २ सौ से ४ सौ वर्षों तक बनी रहती हैं । इनकी विनाशकता का अनुमान इस बात से लग सकता है कि क्लोरीन गैस का एक अणु ओजोन के एक लाख परमाणुओं को नष्ट कर सकता है ।

प्रकृति में ओजोन आक्सीजन से बनता है । इन दोनों गैसों के बीच एक संतुलन बना रहता है । सी०एफ०सी० के क्लोरीन गैस द्वारा उत्पन्न प्रदूषण से यह संतुलन बिगड़ने लगा है । इससे धरती पर कैंसरं रोग, त्वचा रोग आदि उत्पन्न हो रहे हैं । वृक्ष-वनस्पति तथा अन्य जीवों के लिए विनाशक स्थिति उत्पन्न हो रही है ।

(ख) हरितगृह-प्रभाव (Green-house effect) : वायु-प्रदूषण का एक परिणाम हरितगृह प्रभाव भी है । सूर्य की ऊष्मा से गर्म होने के बाद जब पृथ्वी ठंडी होने लगती है, तब ऊष्मा पृथ्वी से बाहर की ओर विकिरित होती है । परन्तु कार्बन डाइ-आक्साइड, नाइट्रिक आक्साइड तथा मीथेन (शूँफ्हा) आदि गैसें इस ऊष्मा का कुछ भाग अवशोषित कर लेती हैं तथा पुन: धरातल को वापस कर देती हैं । इस प्रक्रिया में निचले वायुमंडल में अतिरिक्त ऊष्मा एकत्र हो जाती है । वायुमंडल में ऊष्मावरोधी गैसों की मात्रा बढ़ जाने के कारण वायुमंडल के तापमान में वृद्धि हो रही है ।

वैज्ञानिकों का मानना है कि कार्बन डाइ-आक्साइड की अधिकता जहाँ एक ओर तापीय विकिरण को अवशोषित कर वायुमंडल में ताप की वृद्धि करती है, वहाँ दूसरी ओर वह सूर्य से आने वाली किरणों को पृथ्वी पर जाने से रोकती है, जिससे अपेक्षाकृत ठंडा प्रभाव (Cooling effect) भी प्रारम्भ हो जाता है । हरितगृह प्रभाव को कम करने के लिए वृक्षारोपण सबसे अधिक प्रभावकारी कार्ययोजना है ।

(ग) अम्लीय वर्षा : वायुमंडल में जब सल्फर डाइ-आक्साइड और नाइट्रोजन के विभिन्न आक्साइड वायुमंडल की आर्द्रता से मिलते हैं तो अम्लीय वर्षा (Acid rain) होती है । यह एक प्रकार का बर्फण (बर्फ, हिम, ओला) है, इसमें सल्फ्यूरिक या नाइट्रिक अम्लों की उच्च मात्रा होती है । इससे पीने का पानी दूषित हो जाता है । यह वनस्पतियों तथा जलीय-जीवन को भी हानि पहुँचाती है ।

वायु-प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

(१) रासायनिक कारखानों की चिमनियों को ऊँचाई पर लगाना और उन पर फिल्टर लगाना ।

(२) अधिक धुआँ छोड़ने वाले वाहनों के प्रयोग को कम करना तथा उन पर समुचित नियन्त्रण विधि (Mechanical devices) का प्रयोग करना ।

(३) वृक्षों की कटाई पर रोक लगाना तथा वृक्षारोपण प्रचुरता से कराना ।

(४) कारखानों को आबादी से दूर लगाना ।

(५) रेडियोधर्मी विकिरण से बचने के लिए परमाणु-विस्फोट पर रोक लगाना ।

(६) वायुप्रदूषण के प्रभावों के प्रति जनता को जागरूक करना तथा कम हानिकारक उपकरणों के प्रयोग पर बल देना ।

(७) प्राणघातक प्रदूषण करने वाली सामग्रियों और तत्त्वों के उपभोग में कमी लाना और सी०एफ०सी० के उत्पादन में भारी कटौती करना ।

(२) जल-प्रदूषण : प्राकृतिक या अन्य स्रोतों से उत्पन्न अवांछित बाहरी पदार्थों के कारण जल दूषित हो जाता है, वह विषाक्तता एवं सामान्य स्तर से कम आक्सीजन के कारण जीवों के लिए हानिकारक हो जाता है तथा संक्रामक रोगों को फैलाने में सहायक होता है ।

जल जीवन का प्रमुख साधन है । यह पृथ्वी का लगभग ७१ प्रतिशत भाग घेरे हुए है । पृथ्वी का अधिकतर जल समुद्री है, जो खारा होने के कारण पीने लायक नहीं है । पृथ्वी पर जितना पानी है, उसका केवल ३ प्रतिशत ही शुद्ध है,जिस पर सारा संसार निर्भर है ।

जल-प्रदूषण के प्रमुख कारण

(१) वाहित मल : औद्योगिक कारखानों और घरों में गोशाला आदि की गन्दगी मिलने से गन्दा जल वाहित मल है । यह वाहित मल नदियों में छोड़ा जा रहा है, जिससे जल दूषित होता है ।

(२) कारखानों के कचरे में पारे तथा शीशे के कार्बनिक यौगिक हैं । प्लास्टिक कारखाने के बहिःस्राव में भी पारा विद्यमान रहता है । यह जल को दूषित करता है ।

(३) कृषि में प्रयुक्त कीटनाशक पदार्थ (डी०डी०टी०) आदि और रासायनिक खाद (नाइट्रेट तथा फास्फेट) वर्षा के जल के साथ बहकर नदियों और तालाबों में मिल जाते है ।

(४) अपशिष्ट पदार्थों के रूप में घरेलू गंदगियों को नाली में बहा देने से प्रदूषण फैलता है । ये बहिःस्राव जलस्रोतों से मिल जाते हैं और जल को दूषित करते हैं ।

(५) रेडियो-एक्टिव अपशिष्ट के द्वारा रेडियोधर्मी पदार्थों का भूमि से जल में पहुँचना तथा प्रदूषित जल के द्वारा प्राणियों के भोजन में इन तत्त्वों के अपशिष्ट होने से हानिकारक प्रभाव उत्पन्न होते हैं ।

जलप्रदूषण का प्रभाव

(१) प्रदूषित जल पीने से अनेक बैक्टीरियाजनित तथा वाइरसजनित रोग टाइफाइड, पेचिश, पीलिया आदि रोग होते हैं ।

(२) प्रदूषित जल में काई अधिक होने से सूर्य का प्रकाश गहराई तक नहीं पहुँचता । इससे जलीय पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । डी०डी०टी० एवं अन्य

कीटनाशक दवाओं द्वारा पौधों में प्रकाश-संश्लेषण तथा वृद्धि की क्रिया में बाधा पहुँचती है । जल प्रदूषित होने से जलीय जन्तुओं को पर्याप्त आक्सीजन नहीं मिलती, अत: मछलियाँ एवं अन्य छोटे जीव मरने लगते हैं । प्रदूषित जल पीने से पालतू जानवर गाय, भैंस आदि भी मर जाते हैं ।

जल-प्रदूषण-नियन्त्रण के उपाय

१. बस्ती के वाहित मल के निष्कासन हेतु सीवेज की ठीक व्यवस्था हो ।

२. कीटनाशक रसायनों का प्रयोग कम किया जाय ।

३. रेडियोधर्मी विकिरणों के प्रभाव से बचने के लिए परमाणु-विस्फोटों पर प्रतिबन्ध लगाया जाय ।

४. मृत जन्तुओं को जल में न फेंका जाय, अपितु उन्हें जमीन में गाड़ा जाय ।

(३) भूमि-प्रदूषण : भूमि एक अत्यन्त परिवर्तनशील कारक है । मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ने के कारण भूमि से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है । इस प्रयास में कृषि की उपज बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाता है । इससे भूमि की उर्वराशक्ति धीरे-धीरे कम हो रही है । साथ ही कृषि को विभिन्न रोगों से बचाने के लिए विभिन्न रसायनों, कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाता है । रासायनिक खाद भूमि में क्षारीयता को बढ़ाती है । इससे भूमि की उर्वराशक्ति कम होती है और अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं ।

कीटनाशक रसायन धूल के कण के साथ शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और विभिन्न रोग उत्पन्न करते हैं । जैसे - पेचिश, दमा, हृदय रोग, कैंसर, पागलपन, अंधापन, बाँझपन आदि ।

भूमि-प्रदूषण के स्रोत : १. औद्योगिक कचरे जल के साथ मिलकर आसपास के क्षेत्र की भूमि को बंजर बना देते हैं । २. अम्ल वर्षा का जल भूमि में पहुँचकर मृदा को प्रदूषित करता है । ३. खेतों के अपशिष्ट और घरेलू अपशिष्ट मिट्टी में सड़न उत्पन्न करते हैं । इससे मिट्टी में खनिजों और रसायनों की स्थिति में विकार उत्पन्न होते हैं । ४. वृक्षों और वनों की कटाई से मृदा-क्षरण में वृद्धि होती है ।

भूमि-प्रदूषण- नियन्त्रण के उपाय : १. कीटनाशक, अपतृणनाशक एवं कवकनाशक रसायनों का प्रयोग बहुत सीमित रूप से किया जाय । २. कृषि एवं घरेलू अपशिष्ट पदार्थों के संग्रहण (Collection), निष्कासन (Removal) तथा निस्तारण (Disposal) की उचित व्यवस्था होनी चाहिए । ३. वनों की कटाई रोकने पर बल दिया जाना चाहिए । वृक्षारोपण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाय । ४. शोधित जल से ही सिंचाई की व्यवस्था की जाय । ५. अपशिष्टों और कूड़ा-करकट को कम्पोस्ट खाद के रूप में बनाया जाय ।

(४) ध्वनि-प्रदूषण : ध्वनि जीवन का एक सामान्य लक्षण है। यह विचारों के आदान-प्रदान का एक महत्त्वपूर्ण साधन है । सामान्य ध्वनि स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त है । यही उच्च ध्वनि होने पर शोर का रूप लेती है । शोर अवांछनीय ध्वनि है । यह अदृश्य होते हए भी प्रदूषण का अत्यन्त घातक माध्यम है । ध्वनि नापने के यंत्र साउन्ड-मीटर की इकाई को 'डेसिबल' (Decibel) कहते हैं । हमारे कान ६० से ७० डेसिबल तक शोर आसानी से सहन कर सकते हैं। इससे अधिक शोर हानिकारक है। कुछ ध्वनियों का नाप इस प्रकार है : सामान्य बातचीत २० से ३० डेसिबल, धीमा रेडियो - ३० से ४० डेसिबल, तेज वार्तालाप - ५० से ६० डेसि०, मोटर साइकिल, ९० डेसि०, बिजली की कड़क १२० डेसि०, जेट विमान उड़ते समय १५० डेसि० । ८५ डेसि० से ऊपर की ध्वनि वाले सभी साधन ध्वनि-प्रदूषण के स्रोत हैं ।

ध्वनि-प्रदूषण से होने वाली बीमारियाँ : रक्तचाप में वृद्धि, आहारनली में गड़बड़ी, मांसपेशियों में तनाव, अनिद्रा, बहरापन, अल्सर, दमा, सिरदर्द, गर्भपात आदि । एक जर्मन प्रोफेसर के अनुसार विश्व में होने वाली मौतों में लगभग ५० प्रतिशत मौतों का कारण शोर ही है ।

ध्वनि-प्रदूषण के नियन्त्रण के उपाय : १. शोर उत्पन्न करने वाली मशीनों के स्थान पर ऐसी मशीनों का प्रयोग किया जाए, जिनसे कम ध्वनि उत्पन्न होती हो । २. मोटर आदि वाहनों में तीव्र ध्वनि वाले हार्न बजाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाय । ३. कारखानों में कार्य करने वाले कर्मचारी वर्ग के कानों की सुरक्षा हेतु कानों में रूई लगावें । ४. हवाई अड्डों पर शोर-अवशोषक का प्रयोग होना चाहिए । ५. लाउडस्पीकर पर प्रतिबन्ध लगना चाहिए ।

(५) रेडियोधर्मी प्रदूषण : रेडियोधर्मी प्रदूषण का स्रोत परमाणु-परीक्षण है। रेडियोधर्मी प्रदूषण के ये कुप्रभाव हैं : १. रेडियोधर्मी पदार्थ जल, वायु और मृदा को प्रदूषित करते हैं । २. इससे मनुष्य में रक्त के कैंसर होने की आशंका रहती है । ३. ये जीन्स में विकार उत्पन्न कर देते हैं, जो आनुवंशिक होता हैं ।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के नियन्त्रण के उपाय : १. रेडियोधर्मी पदार्थों के कारखानों में विकिरण-निरोधी जैकेट पहनकर कार्य करना चाहिए । २. परमाणु-परीक्षण पर रोक लगानी चाहिए । ३. गैर परम्परागत ऊर्जा-स्रोतों का प्रयोग नहीं करना चाहिए । ४. रेडियोधर्मी पदार्थों के कचरे को समुद्र में ऐसे स्थान पर डाला जाय जहाँ जीवन की उपस्थिति कम हो ।

पर्यावरण और वैदिक चिन्तन

वेदों में पर्यावरण-संरक्षण विषय पर पर्याप्त सामग्री मिलती है। पृथ्वी, जल, वायु और आकाश की शुद्धि और इनको प्रदूषण से बचाने का अनेक मंत्रों में निर्देश है। पर्यावरण के संघटक तत्त्व कौन से हैं , विश्व के रक्षक कौन से तत्त्व हैं, पर्यावरण की शुद्धि किस प्रकार हो सकती है तथा पर्यावरण संरक्षण की क्या विधियाँ हैं आदि विषयों पर जो संदर्भ प्राप्त होते हैं, उनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

पर्यावरण के संघटक तत्त्व : अथर्ववेद में वर्णन है कि पर्यावरण के संघटक तत्त्व तीन हैं : जल, वायु और ओषधियाँ। ये भूमि को घेरे हुए हैं और मानवमात्र को प्रसन्नता देते हैं, अतः इन्हें 'छन्दस्' (छन्द) कहा गया है। इनके नाम और रूप अनेक हैं, अत; इन्हें 'पुरुरूपम्' कहा गया है। प्रत्येक लोक को ये तत्त्व जीवन-रक्षा के लिए दिए गए हैं।

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे
पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयः
तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ।। अ० १८.१.१७

साधारणतया यह समझा जाता था कि जल और वायु ही पर्यावरण के प्रमुख घटक हैं, परन्तु इस मंत्र में स्पष्ट रूप से ओषधियों को भी पर्यावरण का एक प्रमुख घटक माना गया है। जिस प्रकार जल और वायु के बिना जीवन असंभव है, उसी प्रकार वृक्ष-वनस्पतियों के बिना भी जीवन का अस्तित्व संभव नहीं है। सर्वप्रथम वनस्पतियों के महत्त्व पर प्रकाश डालने का श्रेय वेदों को है।

पर्यावरण - प्रदूषण

वेदों और स्मृतियों आदि में पर्यावरण-प्रदूषण के इन कारणों का उल्लेख है : (क) वायु-प्रदूषण, (ख) जल-प्रदूषण, (ग) भूमि-प्रदूषण, (घ) यान्त्रिक उपकरणों से उत्पन्न प्रदूषण। इन प्रदूषणों के प्रति सावधानी बरतने और इनसे बचने का भी निर्देश दिया गया है।

वायु-संरक्षण

वायु का महत्त्वः वायु मानवजीवन का आधार है। इसलिए जीवन- रक्षा हेतु वायु-प्रदूषण के सभी तत्त्वों का नियन्त्रण आवश्यक है। अथर्ववेद में 'आपो वाता ओषधयः०' कहकर यह निर्देश दिया गया है कि पर्यावरण की रक्षा-हेतु वायु की शुद्धि पर ध्यान देना अनिवार्य है। अथर्ववेद में ही वायु और सूर्य के महत्त्व का

वर्णन करते हुए कहा गया है कि तुम दोनों संसार के रक्षक हो । तुम अन्तरिक्ष में व्याप्त हो । तुम ही सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करते हो । अथर्व० ४.२५.१ से ७ ।

युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः । अ० ४.२५.३

वायु के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वायु में दो गुण हैं : प्राणवायु के द्वारा मनुष्य में जीवनशक्ति का संचार करना और अपान वायु के द्वारा सभी दोषों को शरीर से बाहर करना । इसलिए वायु को विश्वभेषज कहा गया है, क्योंकि यह सभी रोगों और दोषों को नष्ट करता है ।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे । अ० ४.१३.३

वायु में अमृत : वायु के महत्त्व पर ऋग्वेद में कहा गया है कि हे वायु, तुम्हारे पास अमृत का खजाना है । तुम ही जीवनशक्ति के दाता हो । तुम संसार के पिता, भाई और मित्र हो । तुम सब रोगों की ओषधि हो । (ऋग्० १०.१८५.१ से ३) ।

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः ।
तेन नो देहि जीवसे । ऋग्० १०.१८६.३

वायु-प्रदूषण को रोकें : ऋग्वेद के एक महत्त्वपूर्ण मंत्र में निर्देश है कि वायु में अमृत अर्थात् आक्सीजन (Oxygen) है । उसे नष्ट न होने दें । इसका अभिप्राय यह है कि ऐसा कोई कार्य न करें, जिससे वायु में आक्सीजन की कमी हो ।

नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् । ऋग्० ६.३७.३

पर्यावरणशोधक : अथर्ववेद में कतिपय पर्यावरणशोधक तत्त्वों का उल्लेख है । ये प्रदूषण को नष्ट करते हैं । मंत्र में प्रदूषण कारक के लिए क्रव्याद् (मनुष्य को सुखाकर निर्जीव करने वाला) शब्द दिया गया है ।

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आपः० ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् । अ० ३.२१.१०

पर्यावरण को शुद्ध करने वाले तत्त्व ये हैं : पर्वत, जल, वायु , वर्षा और अग्नि । ये प्रदूषण को नष्ट करते हैं और पर्यावरण को शुद्ध करते हैं ।

कुछ अन्य मंत्रों में पर्यावरण के शोधक तत्त्वों के रूप में इन तत्त्वों का उल्लेख है :- द्यावापृथिवी, जल, ओषधियाँ, वायु, मेघ, नदी, वन, पर्वत, सूर्य, उषा और अग्नि । इन मंत्रों में उल्लेख है कि रक्षा के लिए हम इनका आह्वान करते हैं ।

(क) दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे, सिन्धून् पर्वतान्०
सूर्यम् उषासम् ईमहे । ऋग्० १०.३५.२
(ख) द्यावा ... आप ओषधीर्वनिनानि० । ऋग्० १०.६६.९
(ग) धर्तारो दिवः .... वाताः पर्जन्या०
आप ओषधीः प्र तिरन्तु० ।। ऋग्० १०.६६.१०
(घ) त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो
वनस्पतीन् पर्वतान् अग्निमूतये । ऋग्० १०.६४.८

एक अन्य महत्त्वपूर्ण मंत्र में कहा गया है कि परमात्मा ने मनुष्य को बहुत उपहार दिए हैं । उनमें से एक पृथिवी है । इसमें अक्षय धन का भंडार है । इस अक्षय भंडार की रक्षा द्युलोक, वृक्ष-वनस्पतियाँ, जल, नदियाँ, वन और जल के स्रोत करते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि पृथिवी के अन्दर जो रत्न, मणि, खनिज, पेट्रोल, कोयला, तेल आदि पदार्थ हैं, उनकी सुरक्षा के लिए ये वृक्ष-वनस्पतियाँ आदि पदार्थ हैं । यदि हम इन रक्षक तत्त्वों को नष्ट करते हैं तो भूमि के अन्दर विद्यमान खनिजों आदि पर कुप्रभाव पड़ेगा ।

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु
पूरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो
रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि । । ऋग्० ३.५१.५

पर्यावरण की शुद्धि का महत्त्व : एक मंत्र में पर्यावरण की शुद्धि का महत्त्व वर्णन करते हुए कहा गया है कि जहाँ पर्यावरण शुद्ध रहता है, वहाँ मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी सुखपूर्वक जीवित रहते हैं । मंत्र में पर्यावरण के लिए परिधि शब्द और पूर्ण शुद्धि के लिए ब्रह्म शब्द हैं ।

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ।। अथर्व० ८.२.२५

ओजोन परत (Ozone-layer)

ऋग्वेद और अथर्ववेद में भूमि के चारों ओर विद्यमान ओजोन (Ozone) की परत का उल्लेख है । ऋग्वेद में ओजोन की परत के लिए 'महत् उल्ब' शब्द आया है और उसे स्थविर अर्थात् स्थूल या मोटी परत कहा है । अथर्ववेद में इस ओजोन की परत का रंग हिरण्यय अर्थात् सुनहरी बताया गया है । उल्ब शब्द गर्भस्थ शिशु के ऊपर ढकी हुई झिल्ली (Membrane) के लिए आता है । यहाँ पर पृथ्वी को एक गर्भस्थ शिशु मानते हुए उसकी रक्षा के लिए विद्यमान ओजोन की परत

को महान् और स्थूल उल्ब कहा गया है । मंत्रों से स्पष्ट है कि ओजोन की परत पृथ्वी की रक्षा करती है । इसको हानि पहुँचाना उसी प्रकार संकटकारी है, जैसे गर्भस्थ बालक की झिल्ली से छेड़-छाड़ करना ।

महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीद् ,
येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः । ऋग्० १०.५१.१
तस्योत जायमानस्य-उल्ब आसीद् हिरण्ययः । अ० ४.२.८

यह ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली लघु पराबैंगनी किरणों का ९९ प्रतिशत अवशोषण कर लेती है और पृथ्वी के पेड़-पौधों तथा जीव-जन्तुओं को भस्म होने से बचाती है । अत: इस ओज़ोन की परत का मानव जीवन एवं प्रकृति की रक्षा के लिए बहुत महत्त्व है । सारा विश्व ओजोन की परत में होने वाले छिद्र से अत्यन्त चिन्तित है ।

द्यावापृथिवी (द्यु, भू) का संरक्षण

वेदों में वायुमंडल की शुद्धि के लिए द्यावापृथिवी के संरक्षण पर विशेष बल दिया है । द्यावापृथिवी में सूर्य आदि लोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी तीनों का समावेश है । द्यावापृथिवी परस्पर संबद्ध हैं । इनमें पोष्य-पोषक संबन्ध है । सूर्य ऊर्जा का स्रोत है, अन्तरिक्ष वृष्टि का कारक है और पृथ्वी ऊर्जा और वृष्टि आदि का उपयोग कर अन्नादि की समृद्धि से मानवजीवन को संचालित करती है । ये तीनों परस्पर अनुस्यूत हैं । वायुमंडल प्राण ऊर्जा (Oxygen) देकर मानवमात्र को जीवित रखे हुए है । वृक्ष-वनस्पति आक्सीजन देकर मानव को शक्ति प्रदान करते हैं । वृक्ष-वनस्पतियों का जीवन वर्षा पर निर्भर है, अत: वृष्टि-चक्र को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए यज्ञ आदि की उपयोगिता पर बल दिया गया है । पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये समन्वित रूप से मानव-जीवन का संचालन कर रहे हैं । यह सन्तुलन जब बिगड़ता है, तब विनाश की प्रक्रिया शुरू होती है । इस सन्तुलन को बिगाड़ने के कारण प्रदूषण हैं । इन प्रदूषणों को रोकने के लिए वेदों में ये उपाय बताए गए हैं :-

१. वृक्षों को अधिकाधिक लगाना ।
२. वृक्षों को काटने पर प्रतिबन्ध लगाना ।
३. वनों की सुरक्षा पर ध्यान देना ।
४. यज्ञ के द्वारा वायुमंडल को शुद्ध करना ।
५. प्रदूषण के निवारण के लिए सौर ऊर्जा का उपयोग ।
६. ध्वनितरंगों (Electro-magnetic Waves) का प्रयोग ।
७. प्रदूषण-नाशक ओषधियों और वृक्षों को लगाना

८. अग्नि और सोमीय तत्त्वों का सन्तुलन बनाए रखना ।

९. जल और भूमि को प्रदूषित न करना ।

वेदों में द्यावापृथिवी की उपयोगिता, महत्त्व, उनके संरक्षण की आवश्यकता और उनको प्रदूषण से मुक्त रखने के लिए कतिपय उपयोगी विचार प्रस्तुत किए गए हैं । उनका ही यहाँ संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जा रहा है ।

द्यु-भू माता-पिता : वेदों के अनेक मंत्रों में द्युलोक को पिता और पृथिवी को माता कहा गया है । यदि द्युलोक या अन्तरिक्ष प्रदूषित होता है तो ऊर्जा के स्रोतों को हानि पहुँचती है और यदि भूमि प्रदूषित होती है तो मानवजीवन संकटापन्न होता है । इसलिए दोनों के संरक्षण पर बल दिया गया है । अथर्ववेद का कथन है कि- पृथिवी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं । यजुर्वेद में कहा गया है कि पृथिवी माता है और द्युलोक पिता है । अथर्ववेद में वर्णन है कि पृथिवी माता है, अन्तरिक्ष भाई है और द्युलोक पिता है । जिस प्रकार माता-पिता की सेवा करना, उनको कष्ट से बचाना और उनकी रक्षा करना पुत्र का कर्तव्य है,उसी प्रकार प्रकृति की रक्षा करना, उसको प्रदूषण से बचाना और उनके उपहारों का सदुपयोग करना हमारा कर्तव्य है ।

(क) माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । अ० १२.१.१२
(ख) भूमिर्माता, भ्रातान्तरिक्षम्, द्यौर्नः पिता । अ० ६.१२०.२
(ग) पृथिवी माता, द्यौष्पिता । यजु० २.१०-११
(घ) द्यावा पृथिवी .. पिता माता । ऋग्० ५.४३.२

द्यु-भू की उपयोगिता : अथर्ववेद में द्यु-भू की उपयोगिता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भूमि हमें हरियाली और सस्य-सम्पदा देती है । अग्नि लौहतत्त्व देता है । वृक्ष और वनस्पतियाँ सूर्य की किरणों का सहयोग लेकर कल्याणकारी शक्ति प्रदान करती हैं । यह शक्ति आक्सीजन (प्राणवायु) के रूप में प्राप्त होती है ।

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृद्
अग्निः पिपर्तु-अयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं
दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ।। अ० ५.२८.५

यजुर्वेद के एक मन्त्र में वर्णन किया गया है कि द्युलोक और पृथ्वी ऊर्जा (Energy) प्रदान करते हैं । वनस्पतियाँ शक्ति प्रदान करती हैं और जल ओज (बल,वीर्य) प्रदान करता है । इस प्रकार द्यु-भू, वनस्पतियाँ और जल विभिन्न प्रकार की ऊर्जा के स्रोत हैं ।

दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतम् ,
वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ,
अपाम् ओज्मानम्० । यजु० २९.५३

इसी प्रकार यजुर्वेद में कहा गया है कि द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी और ओषधियाँ रस और शक्ति के स्रोत हैं । इनमें जल है, स्निग्धता है तथा ऊर्जा और शक्तिवर्धक तत्त्व हैं ।

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु
पयो दिवि- अन्तरिक्षे पयो धाः । यजु० १८.३६

ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि पृथ्वी माता हमें मधुर दूध एवं अन्न-जल देती है । द्युलोक अमृत देता है । यह अमृत दो रूपों में है -सूर्य से ऊर्जा एवं प्रकाश तथा बादलों से पवित्र जल । अथर्ववेद में कहा गया है कि द्युलोक, अन्तरिक्ष, ओषधियाँ और जल ये सभी हमें मधुरता प्रदान करें, अर्थात् ये प्रदूषण से मुक्त होकर जीवन को सुखमय बनाने में साधक हों ।

(क) येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते स्वः ।
पीयूषं द्यौः० । ऋग्० १०.६३.३

(ख) मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो
मधुमन्नो भवतु-अन्तरिक्षम् । अ० २०.१४३.८

द्यु-भू को प्रदूषण-मुक्त रखें : वेदों में अनेक स्थानों पर द्यु-भू को प्रदूषण से मुक्त रखने का निर्देश दिया गया है । यह भी आदेश दिया गया है कि ऐसा कोई कार्य न करें, जिससे द्यु-भू को हानि पहुँचे । ऋग्वेद के एक मंत्र में चेतावनी दी गई है कि द्यु-भू चेतन तत्त्व हैं, ये हमारे रक्षक हैं । यदि इनको प्रदूषित किया जाता है तो विनाश, विपत्ति और संकट (निर्ऋति) उपस्थित होंगे । यजुर्वेद के एक प्रसिद्ध मंत्र में द्यु-भू, अन्तरिक्ष, जल, ओषधियों और वनस्पतियों से प्रार्थना की गई है कि वे प्रदूषण-मुक्त होकर हमारे लिए सुख-शान्ति प्रदान करें ।

(क) द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतसः ... रक्षताम् ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत । ऋग्० १०.३६.२.

(ख) द्यौः शान्तिः, अन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः,
आपः शान्तिः, ओषधयः शान्तिः, वनस्पतयः शान्तिः ।। यजु० ३६.१७

एक मंत्र में बहुत सुन्दर बात कही गयी है कि द्यु-भू के साथ हमारा बराबरी का संबन्ध है । यदि हम द्यु-भू की रक्षा करेंगे, तो वे भी तुम्हारी रक्षा करेंगे । इसको अभिप्राय यह है कि यदि हम प्रकृति का सहयोग करते हुए द्यु-भू को प्रसन्न रखेंगे तो वे भी हमें सुखी रखेंगे । यदि हम उनको कष्ट देंगे तो वे भी हमें दुःख या विपत्ति देंगे ।

इसीलिए यजुर्वेद में कहा गया है कि तुम द्यु-भू, अन्तरिक्ष और वनस्पतियों को हानि न पहुँचाओ ।

(क) **अवतां त्वा द्यावापृथिवी,**
अव त्वं द्यावापृथिवी । यजु० २.९

(ख) **मा द्यावापृथिवी अभि शोचीः,**
मा-अन्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ।। यजु० ११.४५

यही भाव यजुर्वेद के अनेक मंत्रों में दिया गया है । द्युलोक को हानि न पहुँचाओ, अन्तरिक्ष को प्रदूषित न करो, पृथिवी का सहयोग करते हुए रहो । अन्तरिक्ष को प्रदूषण-मुक्त करके सुदृढ़ करो, अन्तरिक्ष को कोई हानि न पहुँचावो । द्युलोक को दृढ़ करो, द्युलोक को प्रदूषण-मुक्त रखते हुए पुष्ट करो । पृथिवी को प्रदूषण से मुक्त रखो ।

(क) **द्यां मा लेखीः, अन्तरिक्षं मा हिंसीः,**
पृथिव्या संभव । यजु० ५.४३

(ख) **अन्तरिक्षं दृंह, अन्तरिक्षं मा हिंसीः ।** यजु० १४.१२

(ग) **दिवं दृंह, दिवं मा हिंसीः ।** यजु० १५.६४

(घ) **उद् दिवं स्तभान, अन्तरिक्षं पृण ।** यजु० ५.२७

(ङ) **दिवं जिन्व, अन्तरिक्षं जिन्व ।** यजु० १५.६

(च) **पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा हिंसीः ।** यजु० १३.१८

पृथिवी को क्षति न पहुँचावें : अथर्ववेद के एक महत्त्वपूर्ण मंत्र में उल्लेख किया गया है कि हम पृथिवी के जिस भाग को खोदते हैं, उसे फिर पूरा करें । किसी भी अवस्था में पृथिवी के हृदय और मर्मस्थलों को क्षति न पहुँचावें । इसका अभिप्राय यह है कि हम पृथिवी से रत्न, कोयला, गैस, पेट्रोल आदि जो भी पदार्थ निकालते हैं, उससे रिक्त हुए स्थान को फिर पूर्ण करें , अन्यथा भू-संतुलन बिगड़ता है और भूकम्प, भूभाग का दब जाना , जलादि के स्रोतों का सूख जाना आदि संकट उत्पन्न होते हैं । इस मंत्र को पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने विश्वप्रदूषण-निवारण संमेलन में उद्घृत किया था ।

यत्ते भूमे विखनामि, क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि, मा ते हृदयमर्पिपम् ।। अ० १२.१.३५

पृथिवी के मर्मस्थानों को क्षति पहुँचाने से जल के स्रोत आदि नष्ट हो जाते हैं और भूस्खलन, भूकम्प आदि की संभावना बढ़ जाती है ।

ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में भी यही भाव प्रकट किया गया है कि पृथिवी माता की क्रोधदृष्टि हम पर न हो । पृथिवी यदि प्रदूषण आदि के द्वारा रुष्ट हो जाती

है तो प्राकृतिक आपदायें प्रारम्भ हो जाती हैं, जैसे - अकाल पड़ना, खेती का सूख जाना, ऊर्जा के स्रोतों का नाश, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ।

मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् । ऋग्० ५.४३.१५

यजुर्वेद के एक मंत्र में इसी प्रकार की प्राकृतिक विपत्ति का उल्लेख है कि यदि प्रदूषण आदि के द्वारा पृथिवी को हानि पहुँचती है तो समुद्र का जल बढ़ जाएगा और वह पृथिवी के विभिन्न भागों को जलमग्न कर देगा । मंत्रार्थ है कि - हे पृथिवी, समुद्र तेरा वध न करे ।

ध्रुवासि... मा त्वा समुद्र उद्वधीत् । यजु० १३.१६

यजुर्वेद के एक अन्य मंत्र में भी यही भाव प्रकट किया गया है । राज्याभिषेक के समय राजा पृथिवी को संबोधन करते हुए कहता है कि - हे पृथिवी माता, तुम हमें हानि न पहुँचाना और न हम तुम्हें हानि पहुँचाएंगे । इसका अभिप्राय यह है कि राजा का उत्तरदायित्व है कि वह भूमि-प्रदूषण के सभी कारणों को बन्द करे, तभी पृथ्वी सस्य-संपदा देगी और सुख-शान्ति संभव होगी, अन्यथा अकाल आदि संभावित होगा ।

पृथिवि मातर्मा मा हिंसीः , मो अहं त्वाम् । यजु० १०.२३

अथर्ववेद (१२.१.७) में कहा गया है कि देवगण (प्राकृतिक शक्तियाँ) पृथिवी की सदा रक्षा करते हैं । वे इसकी रक्षा में कभी प्रमाद नहीं करते हैं । पृथिवी का माता के रूप में वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह आनन्द के साधनों को धारण करती है । वह हमें शक्ति दे । (ऋग्० ५.४१.१५)

यजुर्वेद के एक मंत्र में पृथिवी को पुष्ट करने का उपदेश देते हुए कहा गया है कि पृथिवी को यज्ञ की राख और प्राकृतिक खाद आदि से पुष्ट करें । इससे उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ेगी ।

पृथिवीं भस्मना - आपृण । यजु० ६.२१

जल-संरक्षण

जल की उपयोगिता : वेदों में जल की उपयोगिता और महत्त्व पर बहुत प्रकाश डाला गया है । जल जीवन है, अमृत है, भेषज है, रोगनाशक है और आयुवर्धक है । जल को दूषित करना पाप माना गया है । जल की उपयोगिता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जल में ओषधियों के तत्त्व विद्यमान हैं । अतः जल सारे रोगों का इलाज है । जल अमृत है । यह मनुष्य को जीवनी-शक्ति प्रदान करता है । जल शक्तिवर्धक और रोगनाशक है । जल में सोम आदि का रस मिलाकर सेवन करने से मनुष्य दीर्घायु होता है ।

(क) अप्सु .. अन्तर्विश्वानि भेषजा ।
आपश्च विश्वभेषजीः । ऋग्० १.२३.२०

(ख) अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् । ऋग्० १.२३.१९

(ग) आपः पृणीत भेषजम् । ऋग्० १.२३.२१

(घ) आपो .. रसेन समगस्महि । ऋग्० १.२३.२३

जल के विषय में यहाँ तक कहा गया है कि जल से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, यहाँ तक कि इससे आनुवंशिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं । जल को सर्वोत्तम वैद्य बताया गया है और कहा गया है कि यह आँख, पैर आदि के सभी प्रकार के दर्द को दूर करता है । यह हृद्य के रोगों का भी इलाज है ।

(क) आपो विश्वस्य भेषजीः, तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् । अ० ३.७.५

(ख) आपः .... भिषजां सुभिषक्तमाः । अ० ६.२४.२

(ग) आपो .... हृद्द्योतभेषजम् । अ० ६.२४.१

एक मंत्र में हिमालय से निकलने वाली नदियों के जल को विशेष लाभकारी बताया गया है । इनका हृदय के रोगों में भी प्रयोग करना चाहिए, (अथर्व० ६.२४.१) । बहता हुआ जल शुद्ध और गुणकारी होता है । यह मनुष्य को शक्ति देता है । कर्मठता के लिए जल और ओषधियों का सेवन करना चाहिए । (अ० ६.२३.१-३)

वर्षा के जल को सबसे उत्कृष्ट और अमृत बताया गया है । इससे सभी रोग दूर होते हैं और दीर्घायु प्राप्त होती है, (अ० ३.३१.११) । जल को मानव के जीवन का आधार बताया गया है । यह जीवन के लिए ओषधि का काम करता है, (अ० १.५.४) ।

ऋग्वेद का कथन है कि जल और वनस्पतियों का मनुष्य पर बहुत उपकार है । इनकी बड़ी महिमा है । जल और वनस्पतियाँ हमें प्राप्त हों । जल और वायु का घनिष्ठ संबन्ध है । वायु गन्धर्व है तो जल अप्सरा । जल ऊर्जा का स्रोत है । जल और ओषधियों से हम तादात्म्य स्थापित करें । जल और वनस्पतियाँ हमारे मित्र के तुल्य हैं ।

(क) निष्षिध्वरीः ओषधीरापः ० । ऋग्० ८.५९.२

(ख) आपश्च मे वीरुधश्च मे । यजु० १८.१४

(ग) वातो गन्धर्वः, तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम । यजु० १८.४१

(घ) सं मा सृजामि - अद्भिरोषधीभिः । यजु० १८.३५

(ङ) सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । यजु० ३६.२३

समुद्र और नदियाँ : वेदों में नदियों और समुद्र को मनुष्य का सुख-साधक बताते हुए कहा गया है कि नदियाँ मनुष्य को सुख-सुविधा प्रदान करती हैं, (ऋग्० ७.४७.४)। नदियाँ घृत के तुल्य पुष्टिकारक एवं मधुर जल देती हैं, (ऋग्० १०.६४.९)। सरस्वती और सिन्धु आदि नदियाँ हमें इसी प्रकार सुखी बनावें, जैसे वर्षा ओषधियों को, (ऋग्० ६.५२.६)। नदियाँ जल से पूर्ण हों और हमें किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाती हुई मधुर जल दें, (ऋग्० ५.४३.१)।

समुद्र का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि समुद्र रत्न आदि धन का दाता है, (ऋग्० ९.९७.४४)। समुंद्र वर्षा का आधार है। यह विद्युत् का केन्द्र है।

समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः । अथर्व० १.१३.३

जल और वनस्पतियाँ मानव के रक्षक : वेदों में कहा गया है कि जल, वनस्पतियाँ और ओषधियाँ मानव की रक्षक हैं। ये हमारी रक्षा करें, (अ० २०.१३९.५)। जल, ओषधियाँ और अन्तरिक्ष ये हमारे लिए सुखद हों, (अ० २०.१४३.८)। एक मंत्र में कहा गया है कि जल, ओषधि और वनस्पतियों में भेषज के गुण हैं। ये हमारे रक्षक हैं, (ऋग्०८.९.५)। एक अन्य मंत्र में मानव के रक्षक पदार्थों में जल, ओषधि, वन, वृक्ष, पर्वत और द्युलोक का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि इन पदार्थों को हानि पहुँचाना, अपनी रक्षा को संकट में डालना है।

आप ओषधीरुत नोऽवन्तु,
द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः । ऋग्० ५.४१.११

एक अन्य मंत्र में जल, नदी, समुद्र और अन्तरिक्ष को रक्षक के रूप में प्रस्तुत करते हुए इनके कल्याणकारी होने का वर्णन किया गया है, (यजु० ३५.९)।

जल को प्रदूषण से बचावें

यजुर्वेद में कहा गया है कि जल को दूषित न करो और वृक्ष-वनस्पतियों को हानि न पहुँचावो। इसी प्रकार एक अन्य मंत्र में भी कहा गया है कि जल को शुद्ध रखो, पौष्टिक गुणों से युक्त करो और ओषधियों को जल से सींचकर सुरक्षित रखो।

माऽपो हिंसीः, मा-ओषधीर्हिंसीः । यजु० ६.२२
अपः पिन्व, ओषधीर्जिन्व । यजु० १४.८

ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि हे परमात्मन्, हमें प्रदूषण-रहित जल, ओषधियाँ और वन दो। मंत्र में अविष या निर्विष शब्द प्रदूषण-रहित के लिए है। प्रदूषण-रहित जल ही स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है, (ऋग्० ६.३९.५)। ऋग्वेद

के एक मंत्र में कहा गया है कि नदियों आदि के जल को प्रदूषण-मुक्त रखने का उपाय है - यज्ञ। यज्ञ की सुगन्धित वायु जल के प्रदूषण को नष्ट करती है।

अपो देवीः ... सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः । ऋग्० १.२३.१८

पुराणों आदि में प्रदूषण-निवारण : आश्चर्य की बात है कि आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व भारतीय मनीषियों ने प्रदूषण की समस्या पर ध्यान दिया था। पद्मपुराण के क्रियायोगसार खंड के अध्याय ८ में श्लोक ८ से १३ तक तीर्थयात्रा से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण नियम दिए गए हैं। इनमें कहा गया है कि गंगा के जल में थूकना, मूत्र करना, कूड़ा-करकट डालना, गंदा जल डालना तथा गंगा के किनारे शौच आदि करना महापाप है। ऐसा करने वाला नरक में जाता है और उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है।

मूत्रं वाऽथ पुरीषं वा गंगातीरे करोति यः ।
न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कल्पकोटिशतैरपि ।।
श्लेष्माणं वापि निष्ठीवं दूषितांब्वश्रु वा मलम् ।
उच्छिष्टं कफकं चैव गंगागर्भे च यस्त्यजेत् ।
स याति नरकं घोरं ब्रह्महत्यां च विन्दति ।।

पद्मपुराण क्रियायोग० ८.८ से १०

मनुस्मृति ने बड़े कारखानों को प्रदूषण का कारण मानते हुए इन्हें लगाना पाप माना है। इनसे वायु-प्रदूषण के साथ ही जल-प्रदूषण भी होता है। कारखानों का गन्दा पानी नदी और तालाबों आदि को दूषित करता है और प्रदूषण फैलाता है।

महायन्त्रप्रवर्तनम् ।.... उपपातकम् । मनु० ११.६३-६६

वृक्ष-वनस्पति-संरक्षण

वृक्ष-वनस्पतियों का महत्त्व : वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में वृक्ष-वनस्पतियों का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पतियों में सभी देवों की शक्तियाँ विद्यमान हैं। ये मनुष्य को जीवन-शक्ति देती हैं और उसकी रक्षक हैं। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि ओषधियाँ प्रदूषण को नष्ट करती हैं। इसलिए इन्हें 'विषदूषणी' कहा गया है।

(क) वीरुधो वैश्वदेवीः उग्राः पुरुषजीवनीः । अ० ८.७.४
(ख) उग्रा या विषदूषणीः .... ओषधीः । अ० ८.७.१०

वृक्ष संसार की रक्षा करते हैं और उसे प्राणवायु (आक्सीजन) रूपी दूध पिलाते हैं। अतः उन्हें माता कहा गया है। वृक्ष मनुष्य को जीवित रखते हैं,

अतः उन्हें मानवमात्र का रक्षक कहा गया है। वृक्षों को प्रदूषण का नाशक बताया गया है। वे वायुमंडल के दोषों को समाप्त करते हैं।

(क) **ओषधीरिति मातरः** । यजु० १२.७८ । ऋग्० १०.९७.४
(ख) **वीरुधः पारयिष्णवः** । यजु० १२.७७ । ऋग्० १०.९७.३
(ग) **वनस्पतिः शमिता** । यजु०२९.३५

मत्स्य पुराण में एक सुन्दर बात कही गयी है कि 'दशपुत्रसमो द्रुमः' अर्थात् एक वृक्ष जनहित की दृष्टि से दस पुत्रों के बराबर है। इसका अभिप्राय यह है कि दस पुत्र अपने जीवनकाल में जितना उपकार कर सकते हैं, उतना उपकार एक वृक्ष करता है।

ऋग्वेद में वृक्ष-वनस्पतियों के लिए कहा गया है कि ये प्राणवायु (आक्सीजन) रूपी अमृत के दाता हैं। ये बुद्धि को शक्ति प्रदान करते हैं, अतः इनकी सदा स्तुति की जानी चाहिए, अर्थात् इनकी रक्षा की जानी चाहिए। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि परमात्मा ने वन और वनस्पतियों में बहुमूल्य उपयोगी तत्त्व रखे हैं।

(क) **नित्यस्तोत्रो वनस्पतिः ,**
धीनामन्तः सबर्दुघः । ऋग्० ९.१२.७
(ख) **वने न वा यो न्यधायि चाकम् ।** अथर्व० २०.७६.१

ऋग्वेद में कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति मानवमात्र के लिए शक्ति के स्रोत हैं। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति, ओषधियाँ और वन, ये परमात्मा के द्वारा दिए गए वरदान हैं। यदि ये न होते तो मनुष्य का जीवित रहना कठिन हो जाता।

(क) **वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।** ऋग्०६.४७.२७
(ख) **ओषधीर्वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वतान् अपः ।**
... व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि । ऋग्० १०.६५.११

अथर्ववेद में कहा गया है कि वृक्षों में देवों का निवास है। वे प्रदूषण- रूपी राक्षसों को नष्ट करते हैं। वृक्ष हमारे मित्र हैं। यजुर्वेद में भी कहा गया है कि जल और ओषधियाँ हमारे मित्र हों। (यजु० ३५.१२)

(क) **वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् ,**
रक्षः पिशाचान् अपबाधमानः । अ० १२.३.१५
(ख) **वनस्पते ... अस्मत्सखा ।** अ० ६.१२५.१

ब्राह्मणग्रन्थों में वृक्ष-वनस्पति : ऐतरेय ब्राह्मण और कौषीतकि ब्राह्मण में वृक्ष-वनस्पति को प्राण कहा गया है, क्योंकि ये मानवमात्र को प्राणवायु (आक्सीजन) देते हैं।

प्राणो वै वनस्पतिः । ऐत० २.४ । कौषी० १२.७

ओषधियाँ ओष अर्थात् दोषों एवं प्रदूषण को समाप्त करती हैं, अत: इन्हें ओषधि कहा जाता है । परमात्मा का जो उग्र रूप या रुद्र रूप है, उससे इन वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई है, इस उग्र रूप के कारण ही ये वनस्पतियाँ दोषों एवं प्रदूषण को नष्ट करती हैं । वनस्पतियाँ संसार को आनन्द देती हैं, अत: इनका नाम 'मुदः' है । वृक्ष-वनस्पति मानव-जीवन में हर्ष और प्रसन्नता के स्रोत हैं ।

(क) **ओषं धयेति तत ओषधयः समभवन् ।** शत०ब्रा० २.२.४.५
(ख) **यद् उग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन ।** कौषी० ब्रा० ६.५
(ग) **ओषधयो मुदः ।** शत०ब्रा० ९.४.१.७

वृक्ष शिव के रूप हैं : शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति (ओषधियाँ) पशुपति अर्थात् शिव के रूप हैं । यजुर्वेद के रुद्राध्याय (अध्याय १६) में शिव को वृक्ष, वनस्पति, वन, ओषधि, लता-गुल्म और कृषि एवं क्षेत्र (खेत आदि) का स्वामी बताया गया है । भगवान् शिव का शिवत्व यही है कि वे विष को पीते हैं और अमृत प्रदान करते हैं । वृक्ष-वनस्पति शिव के रूप हैं । ये कार्बन डाइ-आक्साइड (CO_2) रूपी विष को पीते हैं और आक्सीजन (O_2) रूपी अमृत (प्राणवायु) को छोड़ते हैं । यह इनका शिवरूप है । शिव का दूसरा रूप रुद्र है । यह संसार का नाशक है । यदि वृक्षों को काटा जाता है और प्रदूषण का नियन्त्रण नहीं होता है तो विश्व का संहार या विनाश अवश्यंभावी है । यह है शिव का रुद्रत्व या रौद्र रूप ।

(क) **ओषधयो वै पशुपतिः ।** शत० ब्रा० ६.१.३.१२
(ख) **नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः । क्षेत्राणां पतये नमः ।**
वनानां पतये नमः । वृक्षाणां पतये नमः ।
ओषधीनां पतये नमः । कक्षाणां पतये नमः । यजु० १६.१७. से १९

रुद्र के विषय में कहा गया है कि रुद्र पृथिवी, समुद्र , अन्तरिक्ष और द्युलोक में सर्वत्र विद्यमान हैं । रुद्रों की संख्या अनन्त है । इसका अभिप्राय यह है कि वृक्ष-वनस्पतियों की संख्या अनन्त है, अत: रुद्र भी अनन्त हैं । वृक्ष-वनस्पति पृथिवी, समुद्र, जल आदि में सर्वत्र विद्यमान हैं, अत: रुद्र भी सर्वत्र विद्यमान हैं । भू-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, अन्तरिक्ष-प्रदूषण आदि शिव के रुद्ररूप हैं । ये सृष्टि के संहारक हैं ।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।
अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि ।
दिवं रुद्रा उपश्रिताः । यजु० १६.५४ से ५६

वृक्षों से लाभ : यजुर्वेद में वृक्षों के लाभ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वृक्ष मधुर फल देते हैं। ये वर्षा करने वाले बादलों को आकृष्ट करते हैं और पृथिवी को दृढ़ बनाते हैं। अच्छी वृष्टि के लिए वृक्षों की अत्यन्त उपयोगिता है।

वनस्पतिः देवमिन्द्रम् अवर्धयत् ।
पृथिवीम् अदृंहीत् । यजु० २८.२०

वृक्षों को मानवमात्र का रक्षक बताया गया है। इन रक्षकों में वन, ओषधियाँ, पर्वत और सूर्य की गणना है। ऋग्वेद में यह भी कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पति रक्षक हैं। ये हमारा साथ न छोड़ें। इनसे हमारे घरों का कल्याण है। इनको छोड़ने से विनाश है। ऋग्० ५.४१.११; ६.२१.९

अयमस्मान् वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसै० । ऋग्० ३.५३.२०

वृक्षों को लगावें : ऋग्वेद का कथन है कि वृक्षों को लगावो। इनकी सुरक्षा करो। ये जल के स्रोतों की रक्षा करते हैं। अन्य मंत्रों में कहा गया है कि वृक्ष फूलें-फलें, वे बढ़ें और हमारी भी वृद्धि हो, (ऋग्० ३.८.११)। वृक्ष हमारे मित्र हैं, उनकी रक्षा करें और उनको ठीक ढंग से बढ़ने दें, (ऋग्० ६.४७.२६)। हम वनों की उपेक्षा न करें, (ऋग्० ८.१.१३)।

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं
नि षू दधिध्वम् अखनन्त उत्सम् । ऋग्० १०.१०१.११

वृक्ष काटना दंडनीय अपराध : ऋग्वेद में कहा गया है कि वृक्ष प्रदूषण को नष्ट करते हैं, अतः उन्हें न काटो।

मा काकम्वीरम् उद्वृहो वनस्पतिम्
अशस्तीर्वि हि नीनशः । ऋग्० ६.४८.१७

यजुर्वेद का भी कथन है कि वृक्ष-वनस्पतियों को न काटें और न उन्हें हानि पहुँचावें।

ओषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषम् । यजु० १.२५

मनुस्मृति का कथन है कि हरे वृक्षों को ईंधन के लिए काटना या कटवाना पाप है। हरे वृक्षों को काटना हिंसा है और इसके लिए अपराधी को यथायोग्य दण्ड देना चाहिए। विष्णुस्मृति ने किस प्रकार के वृक्ष काटने वाले को कितना दंड देना चाहिए, इसका भी विवरण दिया है। फल के काम में आने वाले वृक्ष को काटने पर १ हजार रुपया, फूल वाले वृक्ष को काटने पर पाँच सौ रुपया और लता-झाड़ी आदि काटने पर सौ रुपया दंड दिया जाय। पण शब्द रुपए के अर्थ में है। इन अपराधों

को क्रमशः उत्तम (बड़ा), मध्यम (मध्यम) और सामान्य साहस (अपराध) बताया गया है ।

इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ।
हिंसौषधीनाम् ,... उपपातकम् ।। मनु० ११.६३ से ६६
वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ।
तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ।। मनु० ८.२८५
फलद्रुमच्छेदी उत्तमसाहसं दण्ड्यः । पुष्पद्रुमच्छेदी मध्यमम् ।
वल्लीगुल्मलताछेदी कार्षापणशतम् । विष्णुस्मृति अध्याय ५

प्रदूषण-रोधक वृक्ष और ओषधियाँ: वेदों में कतिपय वृक्षों और ओषधियों का वर्णन है, जो प्रदूषण को रोकते हैं । इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं - अश्वत्थ (पीपल), कुष्ठ (कूठ), भद्र और चीपुद्रु (देवदार और चीड़), प्लक्ष (पिलखन, पाकर), न्यग्रोध (बड़), खदिर (खैर), धव (इससे गोंद निकलती है), वरण (वरुण), उदुम्बर (गूलर), लाक्षा (लाख), रोहणी, जंगिड (अर्जुन), पलाश (ढाक), अपामार्ग (चिरचिटा,लटजीरा), गुग्गुलु (गूगल), सोम (सोमलता), आंजन (अंजन का वृक्ष) मदुघ (मुलहठी), नलद (खसखस, उशीर) । (अथर्व० ५.४.३ ; ५.५.५ ; ६.१०२.३ ; ८.७.२०)

अश्वत्थ (पीपल) का वेदों में बहुत गुणगान है । इसमें देवों का निवास माना गया है । पीपल कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा अधिक खींचता है, अतः आक्सीजन की मात्रा अधिक छोड़ता है और प्रदूषण दूर करता है, अतः इसका बहुत महत्त्व है । संभवतः इसीलिए इसकी पूजा की जाती है । इसी प्रकार के वृक्षों में निम्ब (नीम) है, परन्तु वेदों में नीम का उल्लेख नहीं है । तुलसी के पौधे को भी आक्सीजन की मात्रा अधिक छोड़ने के कारण पूज्य माना जाता है । इसके पत्ते, बीज आदि सभी रोगनाशक और प्रदूषण-रोधक हैं ।

अश्वत्थो देवसदनः । अथर्व० ५.४.३

वेदों में अपामार्ग (चिरचिटा) और गूगल का भी बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है । अपामार्ग के विषय में कहा गया है कि जहाँ अपामार्ग है, वहाँ किसी प्रकार का भय, रोग और प्रदूषण नहीं आ सकता । इसी प्रकार गूगल की प्रशंसा में कहा गया है कि जहाँ तक गूगल की सुगन्ध जाती है, वहाँ तक कोई बीमारी और प्रदूषण नहीं रह सकता है ।

(क) अपामार्ग .. न तत्र भयमस्ति, यत्र प्राप्नोष्योषधे ।
अथर्व० ४.१९.२

(ख) न तं यक्ष्मा अरुन्धते० ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते । अ० १९.३८.१

अथर्ववेद में कुछ अन्य ओषधियों को भी कृमिनाशक और प्रदूषण-नाशक बताया गया है । ये हैं - अजशृंगी (मेषशृंगी या मेढ़ासिंगी), पीला (सुगन्धित ओषधि), नलदी, औक्षगन्धि और प्रमन्दनी (ये सभी सुगन्धित ओषधियाँ हैं), (अथर्व० ४.३७.१ से ३) । बज और पिंग (सफेद और पीली सरसों) को भी कृमिनाशक और वायुशोधक बताया गया है ।

अरायान् ... बजः पिंगो अनीनशत् । अथर्व० ८.६.६

यज्ञ, प्रदूषण-समस्या का सर्वोत्तम समाधान

यज्ञ का महत्त्व : चारों वेदों में यज्ञ का बहुत अधिक महत्त्व वर्णन किया गया है । इसका मुख्य कारण यह है कि यज्ञ ही वह विधि है, जिसके द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है । यज्ञ के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमंडल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा रोग-निवारण के कारण दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है । यज्ञ के द्वारा भू-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायुप्रदूषण और ध्वनि-प्रदूषण को दूर किया जा सकता है । इसलिए वेदों में यज्ञ पर इतना बल दिया गया है ।

यज्ञ या अग्निहोत्र वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वायुमंडल में आक्सीजन (O_2) और कार्बन डाई-आक्साइड (CO_2) का सन्तुलन बना रहता है । प्रकृति में एक चक्र (Circle) की व्यवस्था है, जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ अपने मूल स्थान पर पहुँचता है । इसी के आधार पर ऋतुचक्र, वर्षचक्र, अहोरात्रचक्र, सौरचक्र, चान्द्रचक्र आदि प्रवर्तित होते हैं । इस प्राकृतिक चक्र को ही पारिभाषिक शब्दावली में यज्ञ कहा जाता है । यह प्राकृतिक यज्ञ विश्व में प्रतिक्षण चल रहा है । ऋग्वेद और यजुर्वेद में इस प्राकृतिक यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वर्षचक्ररूपी यज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद् ऋतु हव्य । वसन्त के बाद ग्रीष्म ऋतु, ग्रीष्म के बाद वर्षा और वर्षा के बाद शरद् ऋतु और शरद् के बाद वसन्त । इस प्रकार यह वर्षचक्र पूरा होता है ।

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः ।।
ऋग्० १०.९०.६ ; यजु० ३१.१४

यह प्रक्रिया अणु, परमाणु से लेकर सूर्य, चन्द्र आदि तक सर्वत्र चल रही है, इसका ही नाम यज्ञ-प्रक्रिया है । इसके द्वारा ही सृष्टि के प्रत्येक कण में नित्य

परिवर्तन हो रहा है और सृष्टि-चक्र चल रहा है । अतएव यजुर्वेद में कहा गया है कि यह यज्ञ सृष्टिचक्र का केन्द्र (Nucleus) है ।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । यजु० २३.६२

इसी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा द्युलोक को प्रसन्न किया जाता है और द्युलोक वर्षा के द्वारा पृथिवी को तृप्त करता है । यज्ञ से मेघ और मेघ से वर्षा होती है ।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति, दिवं जिन्वन्त्यग्नयः । ऋग्० १.१६४.५१

इसी बात को गीता में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा देवों को प्रसन्न करो और देवता वर्षा के द्वारा तुम्हें प्रसन्न करें । इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान से तुम्हारी श्रीवृद्धि हो ।

देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः , श्रेयः परमवाप्स्यथ ।। गीता ३.११

यजुर्वेद में उत्तम कृषि के लिए यज्ञ को आवश्यक बताया गया है । यज्ञ से बादल, बादल से वर्षा और वर्षा से उत्तम कृषि का वर्णन है ।

कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे .. यज्ञेन कल्पन्ताम् । यजु० १८.९

यजुर्वेद में यज्ञ का इतना अधिक महत्त्व वर्णन किया गया है कि यज्ञ से सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं । यज्ञ से पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के सभी दोष या प्रदूषण दूर होते हैं । यज्ञ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का साधन है । यजुर्वेद के अध्याय १८ के १ से २९ मंत्रों में यज्ञ से सभी प्रकार की कृषि, वर्षा, ऊर्जा, दीर्घायुष्य, वृक्ष-वनस्पतियों की समृद्धि, अन्नसमृद्धि, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति, शारीरिक पुष्टि, नीरोगता, प्रदूषण-नाशन के द्वारा सुख-शान्ति की प्राप्ति का उल्लेख है। (यजु० ९.२१;१८.१ से २९; २२.३३)

छान्दोग्य उपनिषद् में यज्ञ को पर्यावरण-प्रदूषण के निराकरण का सर्वोत्तम साधन बताया गया है । यज्ञ के विषय में कहा गया है कि यह सब अशुद्धियों, दोषों या प्रदूषण को दूर करके पवित्र बनाता है, अतः इसको यज्ञ कहा जाता है ।

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवते,
इदं सर्वं पुनाति, तस्मादेष एव यज्ञः ।छान्दो० उप० ४.१६.१

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का महत्त्व : ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का बहुत विस्तार से महत्त्व वर्णन किया गया है । यज्ञ को सृष्टि का केन्द्र बताया गया है । यज्ञ सारे जीवों का रक्षक है, इसलिए इसको भुज्यु कहा गया है । यज्ञ जीवन को सुरक्षा प्रदान करता है । ऋतुसंधियों पर होने वाले संक्रामक रोगों को दूर करने के लिए भैषज्य

यज्ञों का विधान है । भैषज्य यज्ञ रोगों के साथ ही विविध प्रदूषणों को दूर करते हैं । यज्ञ प्रदूषण दूर करके पवित्रता प्रदान करता है ।

यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः । तैत्ति० ब्रा० ३.९.५.५
यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति । शतपथ ब्रा० ९.४.१.११
भुज्युः सुपर्णो यज्ञः । यजु० १८.४२
यज्ञो वा अवति । तांड्य ब्रा० ६.४.५
भैषज्ययज्ञा वा एते, ऋतुसंधिषु प्रयुज्यन्ते,
ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते । गोपथ ब्रा०उ० १.१९
अयं वै यज्ञो योऽयं पवते । ऐतरेय ब्रा० ५.३३

यज्ञ में प्रयुक्त द्रव्य : यज्ञ में समिधा, घृत, सामग्री और स्थालीपाक का प्रयोग होता है । इनके लिए कुछ विशेष नियम हैं, उनका पालन आवश्यक है । जितना बड़ा या छोटा यज्ञ करना होता है, उसी अनुपात से यज्ञकुण्ड बड़ा या छोटा होता है । शुल्बसूत्र ग्रन्थों में यज्ञकुण्डों के बनाने की वैज्ञानिक विधि दी गई है । ज्यामिति (Geometry) की दृष्टि से शुल्बसूत्रों का बहुत वैज्ञानिक महत्त्व है ।

(क) समिधा : समिधा के लिए ऐसे वृक्षों का चयन किया गया है, जिनसे कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा बहुत कम निकलती है और जो शीघ्र जल जाते हैं । इनका कोयला नहीं बनता, अपितु राख ही बनती है । इनसे धुआँ भी बहुत कम बनता है । CO_2 कम बनने से इनसे हानि की संभावना नहीं रहती । अतएव समिधा के लिए आम, गूलर, पीपल, शमी, पलाश (ढाक), बड़, बिल्व (बेल) आदि का ही विधान है । ठोस लकड़ियाँ शीशम आदि निषिद्ध हैं ।

(ख) घृत - घृत (घी) में भी गाय का घी सर्वोत्तम माना गया है । घी यज्ञ का प्रधान द्रव्य है । यह शरीर को तेज और बल देता है । यज्ञ में डाला हुआ घी रोग-निरोधक है और वायुमंडल को शुद्ध करता है । यह विषनाशक भी है, अतः साँप के काटे हुए को घी पिलाया जाता है । पुराने घी को सुँघाने से उन्माद रोग दूर होता है । यज्ञ में घी का प्रयोग वायु-प्रदूषण को दूर करने का उत्तम साधन है । (अथर्व० ६.३२.१)

(ग) सामग्री - यज्ञ में डाली जाने वाली हव्य वस्तुओं को सामग्री कहते हैं । हव्य वस्तुएँ चार प्रकार की हैं : **(१) सुगन्धित :** कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, चन्दन, जायफल, इलायची, जावित्री आदि । ये सभी अग्नि में पड़कर सुगन्धित वायु देते हैं और वायुमंडल को शुद्ध करते हैं । **(२) पुष्टिकारक :** इनमें घृत के अतिरिक्त दूध, फल, मूल, कन्द, गेहूँ, चावल, उड़द, तिल आदि पदार्थ हैं । यज्ञ में प्रयुक्त ये पदार्थ मनुष्यमात्र के शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाते हैं ।

(३) रोगनाशक : सोमलता, गिलोय, गूगल, अपामार्ग (चिरचिटा) आदि ओषधियाँ। ये रोगनाशक पदार्थ यज्ञ में प्रयुक्त होकर विभिन्न रोगों को दूर करते हैं। यज्ञ-चिकित्सा (यज्ञोपैथी) में अलग-अलग रोगों में अलग-अलग ओषधियों को यज्ञ में डालने का विधान है। **(४) मिष्ट पदार्थ :** मीठी चीजें, जैसे गुड़, शक्कर, चीनी, किशमिश, छुहारा, द्राक्षा (दाख, अंगूर) आदि। मिष्ट पदार्थों में वायु-मंडल को शुद्ध करने की असाधारण शक्ति होती है।

(घ) स्थालीपाक : विशेष आहुतियों के लिए स्थालीपाक का उपयोग होता है। स्थालीपाक में लड्डू, खीर, मोहनभोग, मीठा चावल, बिना नमक की खिचड़ी, हलुआ, अपूप (पूआ) आदि हैं। चावल, खिचड़ी आदि में भी घी डालकर ही आहुति देने का विधान है। महर्षि दयानन्द ने संस्कारविधि (पृष्ठ २६) में मोहनभोग बनाने की यह विधि दी है - सेर भर घी के मोहनभोग में रत्तीभर कस्तूरी, माशाभर केसर, दो माशा जायफल और जावित्री, सेर भर मीठा डालना। स्थालीपाक की सभी वस्तुएँ रोगनाशक और वायुशोधक हैं।

ये चारों होम-द्रव्य जब अग्नि में डाले जाते हैं तो अग्नि के द्वारा उनका विघटन होता है और वे अत्यन्त सूक्ष्म अणुरूप में हो जाते हैं। जिस प्रकार अणुबम अत्यन्त प्रभावशाली होता है, उसी प्रकार ये चारों होम-द्रव्य सूक्ष्मरूप होकर वायुमंडल को शुद्ध करते हैं। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि जो पदार्थ जितना सूक्ष्म होता जाएगा, उतनी ही उसकी शक्ति (Potency) बढ़ जाती है। होम्योपैथी और बायोकेमिक ओषधियों में यही पद्धति काम करती है। विज्ञान यह मानता है कि कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता, अपितु उसका केवल रूप-परिर्वर्तन होता है।

यज्ञ में प्रयुक्त हव्य-पदार्थ अग्नि में पड़कर हलका हो जाता है। वह वायु की सहायता से सर्वत्र फैल जाता है। जहाँ तक यज्ञ की सुगन्धित वायु पहुँचती है, वहाँ तक दूषित वायु नष्ट होती है और प्रदूषण का निवारण होता है। यज्ञ में प्रयुक्त थोड़ी सी मात्रा वाले घी, शक्कर और केसर-कस्तूरी आदि से भी लाखों लोगों को लाभ पहुँचता है।

यज्ञ की उपयोगिता : वेदों में यज्ञ की उपयोगिता पर बहुत प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में यज्ञ की उपयोगिता के विषय में यह कहा जा सकता है कि -

(१) यज्ञ प्रकृति के सन्तुलन को बनाए रखता है। इससे स्वच्छ और स्वस्थ प्राणवायु प्राप्त होती है। यह पर्यावरण में प्रदूषण की मात्रा को कम करता है।

(२) पर्यावरण-प्रदूषण से न केवल शारीरिक हानि होती है, अपितु मानसिक प्रदूषण भी होता है। इससे प्रज्ञापराध अर्थात् मानसिक निर्बलता, कुविचारों का आना, दुर्व्यसनों में प्रवृत्ति, आत्महत्या जैसे दुर्विचारों की ओर प्रवृत्ति, मानसिक

तनाव आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यज्ञ ही एक प्रकार है जो सभी प्रकार के मानसिक और बौद्धिक रोगों को दूर करके शिवसंकल्प, सद्भाव, शान्ति और नीरोगता प्रदान करता है। यह आत्मशक्ति और इच्छाशक्ति को प्रबुद्ध करके मानसिक विकास करता है।

(३) विविध वैज्ञानिक अनुसंधानों से सिद्ध हो चुका है कि अग्निहोत्र से कुछ ऐसी गैसें निकलती हैं, जो वातावरण को शुद्ध करती हैं और प्रदूषण को दूर करती हैं। इनमें से कुछ गैसें ये हैं :- Ethylene Oxide, Propylene, Acytylene. एक जर्मन वैज्ञानिक का कथन है कि 'मैनें स्वयं अग्निहोत्र का परीक्षण किया है और पाया है कि भारतीयों के हाथ में यह एक आश्चर्यजनक शस्त्र है'। इसका प्रदूषण-निवारण के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

(४) न्यू जर्सी अमेरिका में 'अग्निहोत्र' नामक एक संस्था है, जो अमेरिका में प्रदूषण-निवारण के लिए अग्निहोत्र का बड़े पैमाने पर प्रयोग और प्रचार कर रही है। इसको वहाँ की जनता ने बहुत पसन्द किया है। न्यूयार्क में १९९३ में इसके एक आयोजन में मैंने स्वयं (डॉ० कपिलदेव द्विवेदी) भाग लिया था और अमेरिकन लोगों में इसकी लोकप्रियता देखी थी।

(५) प्रसिद्ध रसायनशास्त्री डा० स्वामी सत्यप्रकाश ने अपनी पुस्तक 'Agnihotra' (अग्निहोत्र) में सामग्री का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि इसमें कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जिनसे फार्मेल्डीहाइड (Formaldihyde) गैस उत्पन्न होती है। यह बिना परिवर्तन हुए वायुमंडल में फैल जाती है। कुछ अंश तक कार्बन डाइ-आक्साइड गैस भी फार्मेल्डीहाइड में परिवर्तित हो जाती है। यह एक शक्तिशाली कीटाणुनाशक तत्त्व है, (पृष्ठ १५३)। Formaldihyde का प्रभाव तभी होता है, जब यह पानी के बाष्प के साथ हो, अन्यथा इसका कीटाणुनाशक प्रभाव नहीं होता। इसी अभिप्राय से यज्ञकुण्ड के चारों ओर जल-सेचन होता है।

(६) यज्ञ के समय मंत्रों का सस्वर पाठ ध्वनि-प्रदूषण की समस्या का उत्तम हल है। सस्वर मंत्रपाठ से होने वाली ध्वनि-तरंगें ध्वनि-प्रदूषण को बहुत अंश तक नष्ट करती हैं।

(७) फ्रांस के एक वैज्ञानिक ट्रिलबर्ट का कथन है कि सामग्री में प्रयुक्त शक्कर आदि मिष्ट पदार्थों में वायु को शुद्ध करने की असाधारण शक्ति है। इसके धूएँ में क्षय, चेचक, हैजा आदि बीमारियों के कीटाणु नष्ट करने की क्षमता है।

(८) फ्रांस के एक अन्य वैज्ञानिक डा० हैफकिन का कथन है कि घी को जलाने से रोगाणुओं का नाश हो जाता है।

(९) ऋग्वेद और अथर्ववेद में नदी, तालाबों आदि के जल को शुद्ध करने के लिए यज्ञ को आवश्यक बताया गया है । यज्ञ की वायुशोधक प्रक्रिया से जल भी शुद्ध होता है ।

सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः । अथर्व० १.४.३
सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवत् जुहोत । ऋग्० ७.४७.३

भैषज्य यज्ञ : ऋतु-परिवर्तन के समय प्रकृति में कतिपय दूषित तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं । इनके कारण वायुमंडल प्रदूषित हो जाता है और अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । इस वायु-प्रदूषण और विभिन्न रोगों के निवारण के लिए गोपथ ब्राह्मण और कौषीतकि ब्राह्मण में भैषज्य यज्ञों का विधान किया गया है ।

भैषज्ययज्ञा वा एते यत् चातुर्मास्यानि, तस्माद् ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते । ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते ।

गोपथ ब्रा० उत्तर० १.१९ । कौषी० ५.१

भैषज्य यज्ञों से अनेक रोगों की चिकित्सा भी की जाती है । एक फ्रेंच विद्वान् डा० डेमोसी (Demoussy) ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू मैसेज' में यज्ञ से क्षय रोग को दूर करने की विधि दी है । (देखो डा० रामप्रकाशकृत हवनयज्ञ-प्रदीपिका पृष्ठ ६७) । मद्रास के एक सेनिटरी-कमिश्नर डा० कर्नल किंग का कथन है कि घी और चावल में केसर मिलाकर जलाने से रोगाणु नष्ट हो जाते हैं । (विष्णुदत्त शर्मा, पर्यावरणीय प्रदूषण, पृष्ठ २५)

पाश्चात्त्य वैज्ञानिक हाले, पामर और बुगे ने अपना शोध-निष्कर्ष दिया है कि यज्ञीय अग्नि से गैस के रूप में अनेक पदार्थ निकलते हैं । ये वायु में मिलकर सुगन्ध पैदा करते हैं । जिससे वायु-प्रदूषण दूर होता है और रोगों का निवारण होता है । (डा० रामप्रकाश, हवन यज्ञ और विज्ञान, पृष्ठ ५२)

यज्ञ के द्वारा एक स्थान पर वायु पुंजीभूत रूप में गर्म होने से हलकी हो जाती है और वह ऊपर उठती है । उसका स्थान दूसरे स्थान की वायु आकर ले लेती है । इस प्रकार दूरस्थ शुद्ध वायु के आने से वायु-प्रदूषण दूर होता है ।

अग्नि प्रदूषण-निवारक

वेदों में पर्यावरण-शुद्धि के लिए अग्नि का बहुत उल्लेख है । अग्नि का गुण है - दाहकता । वह जहाँ भी अशुद्धि है, प्रदूषण है या घातक कीटाणु हैं, उनको सदा नष्ट करता है । चाहे यज्ञ की अग्नि हो, घरेलू अग्नि हो, वन की अग्नि हो या समुद्री अग्नि हो, वह सर्वत्र ही प्रदूषणकारी तत्त्वों को नष्ट करती है । इसलिए वेदों में अग्नि का दोषनाशक के रूप में बहुत गुणगान है । अग्नि को सारे प्रदूषणकारी तत्त्वों को नष्ट

करने वाला कहा गया है। प्रदूषणकारी तत्त्वों को वृत्र, रक्षस्, अत्रिन्, असुर आदि कहा गया है।

(क) अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद् विश्वं न्यत्रिणम् ।

ऋग्० ६.१६.२८ । यजु० १७.१६

(ख) अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् । यजु० ३३.९

(ग) अग्नी रक्षांसि सेधति । ऋग्० ७.१५.१०

अग्नि को विश्वशुच् अर्थात् संसार को पवित्र करने वाला कहा गया है। वह पर्यावरण को शुद्ध करता है, अतः उसे पावक कहते हैं। अग्नि को रक्षोनाशक, वृत्रहा, असुरहन्ता आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है।

प्राग्नये विश्वशुचे .. असुरघ्ने । ऋग्० ७.१३.१

अग्नी रक्षांसि सेधति । अ० ८.३.२६

उदग्निर्वृत्रहाऽजनि । ऋग्० १.७४.३

सूर्य प्रदूषण-नाशक

वेदों में पर्यावरण-प्रदूषण को नष्ट करने के लिए सौर ऊर्जा को अमोघ अस्त्र बताया गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद का कथन है कि उदय होता हुआ सूर्य दिखाई पड़ने वाले और न दिखाई पड़ने वाले सभी प्रकार के प्रदूषण को नष्ट करता है। प्रदूषण फैलाने वाले कीटाणुओं को वेद में कृमि, यातुधान और रक्षस् नाम दिया गया है।

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टान् च घ्नन् अदृष्टान् च, सर्वान् च प्रमृणन् क्रिमीन् ।

ऋग्० १.१९१.८ । अथर्व० ५.२३.६ ; ६.५२.१

यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य अपनी पवित्र किरणों से वायुमंडल के प्रदूषण को नष्ट करता है।

सविता पुनातु-अछिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।

यजु० ४.४ । १०.६

अथर्ववेद में एक सूक्त के ६ मंत्रों में कहा गया है कि उदय होता हुआ और अस्त होता हुआ सूर्य सभी प्रकार के प्रदूषणकारी कीटाणुओं को नष्ट करता है, (अथर्व० २.३२.१ से ६)। ऋग्वेद और तैत्तिरीय संहिता में भी यही भाव दिया गया है कि उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से सभी प्रकार के प्रदूषणकारी तत्त्वों को नष्ट करता है, (ऋग्० ८.१२.९ । तैत्ति० सं० २.६.६.३)।

ऋग्वेद के एक पूरे सूक्त में सूर्य को सभी प्रकार के विष और प्रदूषण को नष्ट करने वाला बताया गया है। (ऋग्० ९.१९१.१ से १६)

सूर्ये विषमा सजामि । ऋग्० १.१९१.१०

अथर्ववेद में एक सूक्त के २२ मंत्रों में उदय होते हुए सूर्य की किरणों का इतना अधिक महत्त्व वर्णन किया गया है कि यह सारे रोगों की अचूक ओषधि है। इस सूक्त में सिर से पैर तक के सभी रोगों की लम्बी सूची दी गई है। (अथर्व० ९.८.१ से २२)।

ध्वनिप्रदूषण-निवारक शब्दशक्ति (Sound-waves)

वेदों में वाक्तत्त्व या शब्दशक्ति का बहुत महत्त्व वर्णन दिया गया है। शब्द (Speech) को विश्वव्यापी महान् शक्ति बताया गया है। शब्द के लिए कहा गया है कि जिस प्रकार ब्रह्म सारे संसार में व्याप्त है, उसी प्रकार वाक् या शब्द भी सारे ब्रह्मांड में व्याप्त है।

यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ।
यावद् द्यावापृथिवी तावदित् तत् । ऋग्० १०.११४.८

ऋग्वेद का कथन है कि यह सारा संसार ही शब्द-स्फोट (शब्दशक्ति का विस्फोट, Explosion of the sound) से बना है। शब्दशक्ति का ही सूक्ष्मरूप विद्युत्-तरंग (Electro-magnetic waves) हैं। ये मन से भी सूक्ष्मतर हैं।

(क) अहमेव वात इव प्र वामि -
आरभमाणा भुवनानि विश्वा । ऋग्० १०.१२५.८
(ख) वाग् वै मनसो हृसीयसी । शत० ब्रा० १.४.४.७
(ग) शब्दस्य परिणामोऽयम् इत्याम्नायविदो विदुः । वाक्यपदीय १.१२१

अथर्ववेद का कथन है कि शब्दशक्ति (Sound-waves) शुभ और अशुभ दोनों हैं। शोर, हल्ला आदि के रूप में जहाँ यह घोर, हानिकारक और भयंकर प्रदूषण है, वहीं इसका सदुपयोग किया जाय तो यह शुभ और शान्ति को करने वाली है।

इयं या .. वाग् देवी ....
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः । अथर्व० १९.९.३

ध्वनिप्रदूषण के नियन्त्रण के उपाय : लाउडस्पीकर आदि पर प्रतिबन्ध, शोर-अवशोषक (Silencer) यंत्रों का प्रयोग आदि। वैदिक विधि के अनुसार वेद-मंत्रों आदि का सस्वर मधुर ध्वनि से पाठ, भजन, कीर्तन, संगीत आदि का आयोजन, स्थान-स्थान पर मधुर ध्वनि से धार्मिक ग्रन्थों का पाठ, सुभाषितों का पाठ आदि। यदि मधुर ध्वनि या श्रवण-सुखद ध्वनि से मंत्रों, श्लोकों, भजनों आदि का प्रसार होता है तो ध्वनिप्रदूषण की समस्या का काफी अंश तक हल हो सकेगा।

ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में भी इसी बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में कहा गया है कि वाणी वज्र है। इसका प्रभाव बहुत भयंकर होता है। शब्द ही सारे रोगों और समस्याओं का हल है, ओषधि है। वाणी या शब्द एक महान् शस्त्र है। इसका सदुपयोग करना सीखें।

वाग् हि वज्रः । ऐत० ब्रा० ४.१

वाग् उ सर्वं भेषजम् । शत० ब्रा० ७.२.४.२८

वाग् हि शस्त्रम् । ऐत० ब्रा० ३.४४

पर्वत प्रदूषण-नाशक

वेदों में पर्वतों का बहुत महत्त्व वर्णन किया गया है। पर्वत खनिज के बहुमूल्य स्रोत हैं। पर्वतों से नदियाँ निकलकर देश की समृद्धि को बढ़ाती हैं। हिमालय जैसे पर्वत देश के रक्षक हैं। पर्वत वन आदि के द्वारा वातावरण के शोधक हैं। पर्वत पृथ्वी का सन्तुलन बनाए हुए हैं। पर्वत शुद्ध वायु प्रदान कर नीरोगता और रोग-निवारण के आधार हैं। पर्वत प्रदूषण के नाशक हैं, अतः पर्यावरण की दृष्टि से इनका बहुत महत्त्व है।

ऋग्वेद का कथन है कि पर्वत शुद्ध वायु देकर मृत्यु से रक्षा करते हैं। अतएव पर्वतों से रक्षा की प्रार्थना की गई है। (ऋग्० ५.४६.६)

अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन । ऋग्० १०.१८.४

अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासः । ऋग्० ६.५२.४

पर्वत संसार के पालक और पोषक हैं, अतः उन्हें 'पुरुभोजस्' कहा गया है। एक मंत्र में जल, वायु, पर्वत और वनस्पतियों को सुखदाता मानकर उनसे सुख-शान्ति की प्रार्थना की गई है।

गिरिं न पुरुभोजसम् । ऋग्० ८.८८.२

आपो वातः पर्वतासो .. शृणोतु हवम् । ऋग्० ८.५४.४

पर्वतों पर देवदार, चीड़ आदि के पेड़ पर्यावरण-शोधक, रोगनाशक और स्वास्थ्यवर्धक होते हैं, अतः पर्वतों को मधुवर्षक, सुखवर्धक और स्वास्थ्यवर्धक बताते हुए उनसे सुख की प्रार्थना की गई है। (ऋग्० ६.४९.१४; ८.५३.३; ८.१८.१६)

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे । ऋग्० ८.३१.१०

एक मंत्र में शुद्ध वातावरण और स्वास्थ्यलाभ के लिए बाल-बच्चों सहित पर्वतों (Hill-stations) पर जाने का वर्णन है।

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवः । ऋग्० ५.४१.९

अध्याय - ११

भूगर्भ-विज्ञान (GEOLOGY)

वेदों में भूगर्भ-विज्ञान से संबद्ध कुछ सामग्री प्राप्त होती है । उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

पृथिवी की ७ परतें (Strata) : ऋग्वेद में वर्णन है कि पृथिवी की ७ परतें हैं । विष्णु इनके अन्दर गतिरूप में विद्यमान है और इन परतों में अपनी गति से परिवर्तन करता है ।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः । ऋग्० १.२२.१६

मंत्र में सप्त धामभिः के द्वारा ७ परतों का निर्देश है । विष्णु का विक्रमण ही परमाणुओं की गतिशीलता है, जिससे पृथिवी के अन्दर परिवर्तन होते हैं ।

पृथिवी की ३ परतें ठोस : ऋग्वेद में वर्णन है कि वरुण सातों परतों का स्वामी है । उसकी श्वेत किरणें तीन परतों को विस्तृत करती हैं ।

यस्य श्वेता विचक्षणा, तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।
त्रिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य ध्रुवं सदः
स सप्तानामिरज्यति । ऋग्० ८.४१.९

'तिस्रो भूमीः' के द्वारा तीन परतों का संकेत है । वरुण इनका विस्तार करता है । 'सप्तानाम् इरज्यति' से संकेत है कि वरुण सातों परतों का स्वामी है । इनमें से तीन ठोस हैं और उनको जलीय ऊष्मा पुष्ट करती हैं । तीन को ठोस बताने से ज्ञात होता है कि शेष परतें गैस के रूप में अन्दर विद्यमान हैं ।

तीन परतों के ६ खण्ड : भूमि की ठोस ३ परतों के भी ६ उपविभाग (स्तर) हैं । इन स्तरों को 'विधान' शब्द के द्वारा बताया गया है । ऋग्वेद का कथन है कि -

तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः । ऋग्० ७.८७.५

पृथिवी के केन्द्र में अग्नि : पृथिवी के केन्द्र में अग्नि है और यह तेजोरूप वस्त्र धारण करता है ।

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि
वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।। ऋग्० १०.१.६

तेजोमय वस्त्र का अभिप्राय यह है कि केन्द्रीय अग्नि से स्फुलिंग (चिनगारियाँ, Electrons) निरन्तर निकलते रहते हैं। ये चिनगारियाँ ही उस अग्नि के तेजोमय वस्त्र हैं।

यही भाव वेदों में अनेक मन्त्रों में वर्णित है। यजुर्वेद का कथन है कि जिस अग्नि का जन्म द्युलोक से हुआ है, अन्तरिक्ष में जिसकी नाभि (स्पन्दन) है, उस अग्नि का आधार स्थान पृथिवी है।

दिवि ते जन्म परमम् , अन्तरिक्षे तव नाभिः ,
पृथिव्यामधि योनिरित् ।। यजु० ११.१२

पृथिवी में अग्नि की योनि है अर्थात् केन्द्र है। इस भूगर्भीय अग्नि से ही पृथिवी में गति है।

अथर्ववेद का कथन है कि पृथिवी में अग्नि है, अतः उसे अग्निवासस् कहा गया है। जिस प्रकार वस्त्र शरीर पर चारों ओर लिपटा हुआ होता है, उसी प्रकार पृथिवी के अन्दर-बाहर सब ओर अग्नि व्याप्त है।

अग्निवासाः पृथिवी । अ० १२.१.२१

अथर्ववेद में ही अन्यत्र वर्णन है कि पृथिवी के अन्दर अग्नि है। वह वनस्पतियों में, जल में, पत्थरों में , मनुष्यों के शरीर में तथा अन्य पशुओं आदि में व्याप्त है। इससे ज्ञात होता है कि अग्नि पृथिवी के अन्दर ही नहीं है, अपितु सर्वत्र व्याप्त है।

अग्निर्भूम्यामोषधीषु - अग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ।। अ० १२.१.१९

यजुर्वेद के कई मंत्रों में उल्लेख है कि पृथिवी के अन्दर अग्नि है। मातारूपी पृथिवी की गोद में यह अग्नि विद्यमान है। यह पृथिवी के अन्दर अत्यन्त तेजोमय होकर प्रकाशित हो रही है।

सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे .... अग्ने .....।
अन्तरस्यां शुक्रज्योतिर्वि भाहि ।। यजु० १२.१५

शुक्रज्योति शब्द में संकेत है कि यह अग्नि अत्यन्त प्रबल और अत्यन्त ऊष्मा वाली है।

एक अन्य मंत्र में भी इसी प्रकार का भाव प्रकट किया गया है कि पृथिवी अपने अन्दर अत्यन्त तेजोमय अग्नि को सदा धारण करती है।

संवसाथां स्वर्विदा समीची उरसा त्मना ।
अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्त्रमित् । यजु० ११.३१

मंत्र में 'उरसा त्मना' से संकेत है कि पृथिवी के हृदय में आग भरी हुई है। उस अग्नि के लिए कहा गया है कि वह अग्नि ज्योतिष्मान् अर्थात् अत्यन्त तेजोमय है। 'अजस्रम्' (सदा) शब्द से संकेत है कि वह अग्नि स्थायी रूप से वहाँ विद्यमान है।

शतपथ ब्राह्मण में भी उल्लेख है कि पृथिवी के अन्दर अग्नि है।

अग्निगर्भा पृथिवी । शत० १४.९.४.२१

सा (अदिति:पृथिवी) अग्निं गर्भे बिभर्तु ।। शत० ६.५.१.११

बृहदारण्यक उपनिषद् में भी उल्लेख है कि पृथिवी के अन्दर अग्नि है, इसीलिए पृथिवी को अग्निगर्भा कहा गया है।

यथाऽग्निगर्भा पृथिवी, द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी । बृह०उप० ६.४.२२

नदियों और समुद्रों के जल में अग्नि : ऋग्वेद का कथन है कि अग्नि सारे मनुष्यों के हृदयों में व्याप्त है। वही अग्नि सभी नदियों एवं समुद्रों के जल में व्याप्त है।

यो अग्निः सप्तमानुषः, श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु । ऋग्० ८.३९.८

मंत्र में सिन्धु शब्द नदी और समुद्र दोनों के अर्थ का द्योतक है। नदियों आदि के जल में अग्नि है, अत: उनके मन्थन से विद्युत् (Electricity) प्राप्त होती है।

भूगर्भ और Radio-activity **(तडित्-रेणु-विकिरण शक्ति) :** प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता प्रो० प्रमथनाथ मुख्योपाध्याय (स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती) ने 'वेद व विज्ञान' ग्रन्थ में इस विषय पर विस्तृत विवेचन किया है और पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मन्तव्यों की समीक्षा की है। उनका कथन है कि :

हमारी पृथिवी की भीतरी सतहें क्रमश: नीचे-नीचे अधिक गरम हो गयी हैं। इससे अनुमान होता है कि पृथिवी किसी समय भीतर-बाहर खूब गरम थी, अब क्रमश: बाहर ठंडी हो गयी है, पर भीतर की ज्वाला अभी भी नहीं बुझी है। ताप-विकिरण (Radiation) की धारा के अनुसार इस प्रकार बाहर ठंडा व भीतर गरम रहने में कितने करोड़ वर्ष लगे हैं, उसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक लार्ड केल्विन (Lord Kelvin) ने गिना है।

पृथिवी के गर्भ में Radio - activity नामक यज्ञाग्नि निरन्तर जल रही है। यह पृथिवी के भीतर ताप के उत्पादन का एक मुख्य कारण है।

गहरे कुएँ के जल में सचमुच Radio - activity पकड़ी गई है। पृथिवी के स्तरों में Radio-active पदार्थ प्रचुर परिमाण में हैं, वही पृथिवी के अन्तर्दाह (Plutonic-energy) का एक मुख्य कारण है।

लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक Sir J.J. Thomson अपने ' Electricity and Matter ' नामक ग्रन्थ में कहते हैं :

' These radio-active substances are not confined to rare minerals. I have lately found that many specimens of water from deep well contain a radio-active gas. Elastea and Geitel have found that a similar gas is contained in the soil.'

अर्थात् कुछ-एक पदार्थों में ही रेडियो क्रिया सीमित होकर आबद्ध है, ऐसा नहीं है । मैंने स्वयं कई प्रकार के जल में यह रेडियो-एक्टिव गैस पाई है । एलास्टिया और गाइटेल ने भूमि में भी यह गैस पाई है ।

प्रो० रुदरफोर्ड (Rutherford) इस अभिनव विज्ञान के एक प्रधान ऋषि हैं । उन्होंने अपने 'Radio-activity' नामक ग्रन्थ में (पृष्ठ ५११) सर जे.जे. थाम्सन की उक्त परीक्षा का उल्लेख करते हुए लिखा है :

'This led to an examination of waters from deep wells in various parts of England and J.J. Thomson found that in some cases, large amount of emanation could be obtained from the well-water.'

अर्थात् प्रो० थाम्सन ने इंग्लेंड के विभिन्न स्थानों पर गहरे कुओं का परीक्षण किया और पाया कि कुछ स्थानों पर रेडियो-धर्मी तत्त्व इन कुओं में पाए गए । प्रो० रुदरफोर्ड साहब ने परीक्षण का फल यह निकाला है :

Thus it is probable that the well-water in addition to the emanation mixed with it, has also a slight amount of a permanent radio-active substance dissolved in it.

अर्थात् यह संभव है कि इन कुओं के जल में रेडियो-धर्मी तत्त्व के मिश्रण के साथ ही स्थायी रूप से रेडियो-एक्टिव पदार्थ विद्यमान हों ।

इससे ज्ञात होता है कि गहरे कुओं के जल में कहीं-कहीं पर सक्रिय रेडियो धर्मी तत्त्व प्राप्त होते हैं । ऐसे ही तत्त्व भूमि में भी मिलते हैं ।

जिस पदार्थ के भीतर से अणु से भी सूक्ष्मतर अणुओं के दाने जैसे तडित्-कण प्रबल वेग से छिटक कर बाहर आते हैं, उसी पदार्थ को आधुनिक विज्ञान की भाषा में Radio-active कहा जाता है । रेडियो-एक्टिव पदार्थ अक्षय ताप के भंडार होते हैं, इसे परीक्षण के द्वारा देखा गया है । रेडियम का एक छोटा टुकड़ा इतना ताप छिटका सकता है, जिसे सोचने पर विस्मय होता है । (वेद व विज्ञान, पृष्ठ ४४ से ४६) ।

पृथिवी में प्राकृतिक गैस (Gas) : यजुर्वेद के अनेक मंत्रों में प्राकृतिक गैस का उल्लेख है और उसे पृथिवी से खोदकर निकालने का वर्णन है। यजुर्वेद में भूगर्भीय गैस के लिए ' पुरीष्य अग्नि ' शब्द का प्रयोग है। एक मंत्र में कहा गया है कि हम पृथिवी से खोदकर पुरीष्य अग्नि को निकालते हैं। यह तेजोमय है और इसमें आग्नेय तत्त्व विद्यमान हैं।

पृथिव्याः सधस्थाद् अग्निं पुरीष्यम् अंगिरस्वत् खनामि।
ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकम् अजस्रेण भानुना दीद्यतम्॥

यजु० ११.२८

मंत्र में अंगिरस्वत् शब्द अतिज्वलनशील आग्नेय तत्त्व का बोधक है। ज्योतिष्मत् शब्द तेजोमय का बोधक है और भानु शब्द शाश्वत ऊष्मा का द्योतक है।

इस प्राकृतिक गैस के लिए यजुर्वेद का कथन है कि जिस प्रकार माता अपने पुत्र को गोद में रखती है, उसी प्रकार पृथिवी पुरीष्य अग्नि को अपने अन्दर धारण करती है।

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निं
स्वे योनावभारुखा। यजु० १२.६१

यजुर्वेद के अन्य कई मंत्रों में इसी प्रकार पृथिवी से पुरीष्य अग्नि (प्राकृतिक गैस) को खोदकर निकालने का उल्लेख है।

पृथिव्याः सधस्थाद् अग्निं पुरीष्यम् अंगिरस्वदाभर।

यजु० ११.१६

ततः खनेम सुप्रतीकमग्निम्०। यजु० ११.२२

भूगर्भीय गैस का आविष्कारक अथर्वा ऋषि : यजुर्वेद का कथन है कि पुरीष्य अग्नि (भूगर्भीय गैस) का प्रथम आविष्कारक अथर्वा (अथर्वन्) ऋषि है। उसने ही मन्थन के द्वारा इसका पता लगाया। यह गैस लोकोपकारक है। इसको मंत्र में 'विश्वभरा ' कहा है, अर्थात् यह जनहितकारी और पोषक है।

पुरीष्योऽसि विश्वभरा, अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।

यजु० ११.३२

पुरीष्य अग्नि जल में भी : यजुर्वेद का कथन है कि प्राकृतिक गैस पृथिवी में ही नहीं, अपितु जल में भी है। मंत्र में 'प्रावण' शब्द जलीय अग्नि (गैस) का सूचक है।

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः। यजु० १२.५०

समुद्र में भी गैस : पुरीष्य अग्नि (गैस) के विषय में उल्लेख है कि यह जल के पृष्ठभाग में विद्यमान है। यह प्रज्वलनशील है, अत: अग्नि का कारण है। यह समुद्र में चारों ओर व्याप्त है। 'समुद्रम् अभित: पिन्वमानम्' से संकेत है कि यह गैस समुद्र में किसी एक स्थान पर नहीं, अपितु अनेक स्थानों पर फैली हुई है।

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः, समुद्रमभितः पिन्वमानम्। यजु० ११.२९

ऋग्वेद के एक मंत्र में भी समुद्र में गैस का उल्लेख है और इसे समुद्रवासस् अग्नि कहा है अर्थात् समुद्र में छिपी हुई अग्नि (गैस)।

अग्निं समुद्रवाससम्। ऋग्० ८.१०२.४

पृथिवी में अग्नि के कारण गति और कंपन : अथर्ववेद का कथन है कि पृथिवी के अन्दर अग्नि है, अत: पृथिवी में गति और कंपन है। मंत्र में 'विजमाना' शब्द है, जिसका अर्थ है - हिलना, काँपना और क़ाँपते हुए चलना।

याऽप सर्पं विजमाना विमृग्वरी
यस्यामासन् अग्नयो ये अप्स्वन्तः ।। अ० १२.१.३७

मंत्र का कथन है कि जिस प्रकार पृथिवी के अन्दर अग्नि है, उसी प्रकार जल के अन्दर भी अग्नि है।

पृथिवी के अन्दर भी शिराएँ (Veins) : बृहत्संहिता में वराहमिहिर ने उल्लेख किया है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में नाड़ियाँ हैं, उसी प्रकार भूमि में भी ऊँची-नीची शिराएँ हैं। इन शिराओं के ज्ञान से यह ज्ञात होता है कि पृथिवी में कहाँ पर जल है। पृथिवी के अन्दर के जल का पता चलाने के लिए इन शिराओं का ज्ञान आवश्यक है। ये शिराएँ ऐन्द्री, आग्नेयी आदि आठ हैं। इन आठ शिराओं के मध्य में महाशिरा नामक नवमी शिरा है। इन शिराओं से सैंकड़ों शिराएँ निकली हैं।

दकार्गलं येन जलोपलब्धिः ।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ।
दिक्पतिसंज्ञा च शिरा, नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी ।
एताभ्योऽन्याः शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः ।।

बृहत्संहिता, दकार्गलाध्याय १,४

सुश्रुत का कथन है कि जैसे नालियों से बगीचे को सींचते हैं, उसी प्रकार शिराओं से यह शरीर पोषित होता है। इसी प्रकार पृथिवी के अन्दर विद्यमान इन शिराओं से भूमण्डल के सभी वृक्ष-वनस्पतियों का पालन-पोषण होता है।

पृथिवी के अन्दर मित्र-वरुण शक्तियाँ : ऋग्वेद का कथन है कि पृथिवी के अन्दर मित्र (Positive) और वरुण (Negative) शक्तियाँ काम करती हैं और पृथिवी की रक्षा करती हैं ।

उर्वी --- रक्षमाणा ।
मित्रासाथे वरुणेडास्वन्तः । ऋग्० ५.६२.५

समुद्र में विविध ओषधियाँ : ऋग्वेद का कथन है कि समुद्र , पर्वत और नदियों में ओषधियाँ प्राप्त होती हैं ।

यत् सिन्धौ यदसिक्न्यां यत् समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत् पर्वतेषु भेषजम् । ऋग्० ८.२०.२५

हे मरुतो, सिन्धु और चेनाब (असिक्नी) नदी, समुद्र और पर्वतों में जो जो ओषधियाँ हैं, वे तुम्हें ज्ञात हैं ।

इससे ज्ञात होता है कि समुद्र में, पर्वतों में और नदियों में ओषधियाँ प्राप्त होती हैं ।

अथर्ववेद में समुद्री मिट्टी को रक्त-प्रवाह की चिकित्सा बताया गया है । कहा गया है कि दीमक समुद्र से ओषधि निकालती हैं । उनके द्वारा निकाली गई यह मिट्टी रक्त-प्रवाह की चिकित्सा है । यह रोगों (ज्वर आदि) को भी शान्त करती है ।

उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं, तदु रोगमशीशमत् । । अ० २.३.५

एक अन्य मंत्र में पृथिवी के अन्दर से निकाली गयी मिट्टी से घाव भरने वाले मरहम को बनाने का उल्लेख है । इसके लिए कहा गया है कि यह मिट्टी पृथिवी के अन्दर से निकाली गयी है ।

अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् । अ० २.३.५

अथर्ववेद का एक पूरा सूक्त (४.१०.१ से ७) समुद्र से निकलने वाले शंख पर दिया गया है । इसके लिए कहा गया है कि यह समुद्र से उत्पन्न हुआ है । यह देवों की हड्डी है । यह एक मणि है, अतः इसे शंखमणि कहते हैं । यह मणि के तुल्य बाँधी जाती है । यह दीर्घायु, तेज और बल देने वाली है । इसको सर्वरोगनाशक कहा गया है । यह रोगों और रोग-कीटाणुओं को नष्ट करता है ।

समुद्राज्जातो मणिः । अ० ४.१०.५
शंखो नो विश्वभेषजः । अ० ४.१०.३
देवानामस्थि कृशनं बभूव । अ० ४.१०.७

आयुर्वेद में शंख से बनी भस्म (शंखभस्म) का अनेक रोगों की चिकित्सा में उपयोग होता है ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में समुद्रफेन का भी उपयोग बताया गया है । इसके द्वारा बनाए गए वज्र से इन्द्र ने वृत्र का सिर काटा ।

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । अ० २०.२९.३

भरते फेनमुदन् । ऋग्० १.१०४.३

कोयले आदि की खान (Mine) : अथर्ववेद के एक सूक्त (१६.१.१ से १३) में खनि शब्द से एक खान (संभवत: कोयले की खान) का विस्तृत वर्णन है । इसमें खान की भयंकरता और वहाँ होने वाली कठिनाइयों आदि का वर्णन है ।

खान मे अग्नि अर्थात् भयंकर ताप है । यह घातक है । इसमें शरीर दूषित हो जाता है । यह भयंकर है । इसमें दम घुटता है और जलन होती है । इसमें मृत्यु और नाश का संकट बना रहता है ।

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ।
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ।
म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ।
यद् वो घोरं तदेतत् । अथर्व० १६.१.२ से ८

इसमें खन और खनि शब्दों के द्वारा खनन का उल्लेख है । रुजन् और मृणन् शब्दों द्वारा निर्देश है कि इसमें हमेशा जांन को खतरा रहता है । म्रोक घातक अग्नि के लिए है । मनोहा से दम घुटने का संकेत है । निर्दाह से खान के अन्दर की भयंकर गर्मी का संकेत है । आत्मदूषि संकेत करता है कि इसमें आत्मा पीडित हो जाती है । तनूदूषि से संकेत है कि शरीर बहुत गन्दा हो जाता है । घोर शब्द खान की भयंकरता का बोधक है ।

पृथिवी में धातु और खनिज : अनेक मंत्रों में विविध धातुओं और खनिजों का उल्लेख है । यजुर्वेद के एक मंत्र में हिरण्य (सोना), अयस् (लोहा या काँसा), श्याम (ताँबा), लोह (लोहा), सीस (सीसा) और त्रपु (बंग, राँगा या टिन) का वर्णन है ।

हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे
सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । यजु० १८.१३

अथर्ववेद के एक मंत्र में सोना (हरित), चाँदी (रजत) और लोहा (अयस्), इन तीन धातुओं का उल्लेख है ।

हरिते त्रीणि, रजते त्रीणि, अयसि त्रीणि । अ० ५.२८.१

भूगर्भ में रत्न आदि : अथर्ववेद में वर्णन है कि पृथिवी के अन्दर धन का खजाना है । इसमें मणि और सुवर्ण आदि हैं ।

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु
मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे । अ० १२.१.४४

अथर्ववेद के एक अन्य मंत्र में वर्णन है कि पृथिवी के गर्भ में हिरण्य (सोना) है ।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः । अ० १२.१.२६

ऋग्वेद में भी वर्णन है कि पृथिवी के अन्दर रयि (धन, खजाना) है ।

रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति । ऋग्० ३.५५.२२
पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।। ऋग्० ३.५१.५

ऋग्वेद के एक मंत्र में धन के प्राकृतिक संसाधन ये बताए गए हैं : -भूगर्भ, सूर्य आदि ग्रह, वनस्पतियाँ, नदी और समुद्र, जल स्रोत, झरने आदि तथा वन ।

इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो
रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि । ऋग्० ३.५१.५

अथर्ववेद के एक मंत्र में पृथिवी को विश्वगर्भा कहा है । इसका अभिप्राय है कि पृथिवी के गर्भ में सभी धातुएँ और रत्न आदि खनिज पदार्थ हैं ।

पृथिवीं विश्वगर्भाम्० । अथर्व० १२.१.४३

ऋग्वेद में वर्णन है कि पृथिवी के अन्दर छिपा हुआ धन है । 'गुहा वसूनि' के द्वारा गुप्त धन की सूचना दी गई है । मंत्र में कहा गया है कि इन्द्र प्रकट और गुप्त सभी धनों का स्वामी है ।

त्वं विश्वा दधिषे केवलानि
यान्याविर्या च गुहा वसूनि । ऋग्० १०.५४.५

ऋग्वेद के एक मंत्र में वर्णन है कि पृथिवी में हजारों प्रकार का धन है । पुरुषार्थी व्यक्ति ही इस धन को प्राप्त करते हैं । मंत्र में पृथिवी को 'सहस्रधारा' कहा है, इसका अभिप्राय है कि पृथिवी में हजारों प्रकार का धन है ।

ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् । ऋग्० १०.७४.४

ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में वर्णन है कि परमात्मा (सोम) ने द्युलोक और पृथिवी में गुप्त रूप से रत्न आदि धन रखा है । मंत्र में 'स्वधयो:' शब्द द्यावापृथिवी के लिए है । 'अपीच्यम्' शब्द गुप्त रूप से रखे हुए धन, रत्न आदि के लिए है ।

दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यम् । ऋग्० ९.८६.१०

समुद्र में खजाना : यजुर्वेद का कथन है कि समुद्र एक महान् कोषागार है । अतएव मंत्र में उदधि (समुद्र) को एक निधि (खजाना) कहा गया है ।

साथ ही यह भी कहा गया है कि समुद्र को सूर्य से ऊर्जा प्राप्त होती है ।

सं सूर्येण दिद्युतद् उदधिर्निधिः । यजु० ३८.२२

ऋग्वेद में भी समुद्रों में धन होने का उल्लेख है । मंत्र का कथन है कि चारों समुद्रों में धन अर्थात् रत्न आदि सामग्री है ।

चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् । ऋग्० १०.४७.२

एक अन्य मंत्र में भी समुद्रों में रत्न होने का उल्लेख है ।

सिन्धुभी रत्नधेभिः । ऋग्० ४.३४.८

सिन्धु नदी में सोना : ऋग्वेद के एक मंत्र में वर्णन है कि सिन्धु नदी की तली में सोना है । हिरण्यवर्तनि शब्द का अर्थ है - जिसकी तली में सोना है ।

वाहिष्ठा वां नदीनाम् । सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः । ऋग्० ८.२६.१८

समुद्र में वनस्पतियाँ और अन्न : ऋग्वेद में वर्णन है कि समुद्र में अनेक वनस्पतियाँ और अन्न होते हैं । अन्धस् शब्द का अर्थ वनस्पति और भोज्य अन्न है ।

यद् वा समुद्रे अन्धसः । ऋग्० ८.६५.२

पर्वतों में भी धन : ऋग्वेद के एक मंत्र में पर्वतों को वसुमत् अर्थात् धन-संपत्ति वाला कहा गया है । पर्वतों से प्राप्त होने वाले खनिज आदि धन-संपत्ति हैं । पर्वतों में धन के भंडार का उल्लेख है ।

वसुमन्तं वि पर्वतम् । ऋग्० २.२४.२

गुहा निधिं - परिवीतम् अश्मनि-अनन्ते । ऋग्० १.१३०.३

जल-स्रोतों का पता लगाना : अथर्ववेद के दो मंत्रों में उपजीका (दीमक) का उल्लेख है और उनकी यह विशेषता बताई गई है कि वे समुद्र से और जल-स्रोत से अपनी बमी (दीमक द्वारा बनाए गए मिट्टी के टीले) तक जल लाती हैं । दीमक अपने टीले में एक विशेष प्रकार की आर्द्रता (नमी) बनाए रखती हैं । इसके लिए उन्हें जल-स्रोत का मार्ग ढूँढ़ना पड़ता है ।

अथर्ववेद का कथन है कि दीमक रेगिस्तान में भी अपने टीले को जल से सींचती है ।

यद् वो देवा उपजीका आसिंचन् धन्वन्युदकम् । अ० ६.१००.२

अन्य मंत्र में कहा गया है कि दीमक समुद्र से ओषधियाँ आदि लेकर आती हैं ।

उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि-भेषजम् । अ० २.३.४

वराहमिहिर : जल-स्रोतों का पता लगाने के लिए दीमकों के मार्ग का पता लगाना अत्युत्तम साधन है ।

वराहमिहिर (५०५ से ५८७ ई०) ने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता के दकार्गलाध्याय में जलस्रोतों का पता लगाने के लिए कई उपाय बताए हैं । वराहमिहिर का कथन है कि पृथिवी के अन्दर शिराएँ (Veins) हैं । जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में नाडियाँ हैं और उनके माध्यम से शरीर में रक्त-प्रवाह होता है, उसी प्रकार पृथिवी में इन शिराओं के माध्यम से जल-स्रोतों का जाल बिछा हुआ है । ये शिराएँ कहीं ऊपर हैं, कहीं नीचे । अतएव भूगर्भ में जल विभिन्न निचाई पर मिलता है ।

दकार्गलं येन जलोपलब्धिः ।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ।।

बृहत्संहिता, दकार्गलाध्याय १

वराहमिहिर ने दकार्गलाध्याय के १२५ श्लोकों में वल्मीक (दीमक का टीला), विभिन्न प्रकार के वृक्ष, विविध प्रकार की मिट्टी, दूब, घास आदि के आधार पर भूगर्भीय जल-स्रोतों को पता लगाने के प्रकार दिए हैं । दीमक का टीला सर्वोत्तम उपाय है । उसके आसपास अवश्य जल-स्रोत होता है । इस प्रकरण में गहराई की नाप के लिए पुरुष शब्द का प्रयोग हुआ है । डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कौटिल्य अर्थशास्त्र (२.२०) के आधार पर ५ फुट ४ इंच का एक पुरुष या पौरुष नाप माना है । (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ २४९) । इसी आधार पर पुरुष (पुरसा) नाम की गणना करें । यहाँ कुछ साधनों का विवरण दिया जा रहा है ।

(१) वेतस (वेदमजनूं) के वृक्ष से जल का ज्ञान : यदि जलरहित देश में वेदमजनूं का वृक्ष हो तो उससे ३ हाथ पश्चिम में डेढ़ पुरुष (८ फीट) नीचे जल बताना चाहिए । (श्लोक ६,७)

(२) जामुन के वृक्ष से जल का ज्ञान : यदि जलरहित देश में जामुन का वृक्ष हो तो उससे ३ हाथ उत्तर दिशा में दो पुरुष (१० फीट ८ इंच) नीचे जल होता है । यदि जामुन के वृक्ष से पूर्व की ओर दीमका का टीला हो तो उससे ३ हाथ दक्षिण की दिशा में २ पुरुष (१० फीट ८ इंच) नीचे मीठा जल निकलता है । यदि इस खुदाई में नीले रंग की मिट्टी निकलती है तो बहुत बड़ा जल का स्रोत समझना चाहिए । (श्लोक ८ से १०) ।

(३) गूलर के वृक्ष से जल का ज्ञान : यदि जलरहित देश में गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में ढाई पुरुष (१३ फीट ४ इंच) नीचे जल मिलता है । (श्लोक ११)

(४) बेर के वृक्ष से जल का ज्ञान : यदि बेर के वृक्ष से पूर्व की ओर बमी हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम की दिशा में तीन पुरुष (१६ फीट) नीचे जल का स्रोत होता है । (श्लोक १६) ।

(५) बहेड़े के वृक्ष से जल का ज्ञान : विभीतक (बहेड़ा) वृक्ष के समीप दक्षिण दिशा में वल्मीक (बमी) दिखायी दे तो उस वृक्ष से दो हाथ पहले डेढ़ पुरुष (८फीट) नीचे जल का स्रोत होता है । (श्लोक २४)

(६) महुए के वृक्ष से जल का ज्ञान : मधूक (महुआ) वृक्ष के उत्तर वल्मीक (बमी) हो तो उस वृक्ष से पाँच हाथ पश्चिम दिशा में आठ पुरुष (४३ फीट ८ इंच) नीचे जल का स्रोत होता है । (श्लोक ३५) ।

(७) कदम्ब के वृक्ष से जल का ज्ञान : कदम्ब के वृक्ष के पश्चिम में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ दक्षिण पौने ६ पुरुष (३०फीट ८ इंच) नीचे जल का स्रोत होता है । (श्लोक ३८) ।

(८) ताड़ या नारियल के वृक्ष से जल का ज्ञान : यदि ताल (ताड़) या नारियल के वृक्ष के पास वल्मीक हो तो उस वृक्ष से ६ हाथ पश्चिम दिशा में ४ पुरुष (२१ फीट ४ इंच) नीचे जल का स्रोत होता है । (श्लोक ४०) ।



निर्देशिका (Index)

(सूचना - अंक पृष्ठबोधक हैं ।)

अ, आ

ई, उ, ऊ, ऋ

ब, भ

म

य, र, ल, व

